कुस्ती मे अपने से दूने पहलवान ढाता था,
ताल ठोक कर वडे-वडे योधाओ को डरपाता था ॥
वेधि देहुँ था कठिन निशाना लेकर तीर कमाती को ॥हाय०४॥
मेरे थप्पड से दुश्मन का निकल जवाडा आता था,
मेरे सर से सर दुश्मन का नरियल सा फटि जाना था ।
मेरा कुहनी से दुश्मन का चूर चूर हो जाता था,
मेरी टेटी नजर देखि दुश्मन का दिल थर्राता था ॥
मुक्के से सीधा करता था वडे वडे अभिमान को ॥हाय०५॥
भरा जवाडा था मुह मे वत्तीसो दांत चमकते थे,
कश्मीरी सेवो के सदृश कल्ले सुर्ख दमकते थे ।
उन्नत मस्तक गोल चाद सा नयना दिव्य ज्योति वाले,
घू घर वाले केश सिर पर नागिन से काले काले ॥
तनी हुई मूछे मुह पर जतलाती थी मर्दानी को ॥हाय०॥
हृष्ट पुष्ट था वदन गठीला सुन्दर सुदृढ सजीला था,
गज की सू डी समान भुजाये हृदयस्थल जोशीला था ।
सिह समान पराक्रम था सव अग अग फुर्तीला था,
थम समान पुष्ट जंघाये कोई अग न ढाला था ॥
देता था निकलि पृथ्वी से लात मारकर पानी को ॥हाय०७॥
दूरि दूरि के पहलवान भी मुझे देखने आते थे,
गुजराती पजावी सिन्धी सरहद्दी शरमाते थे ।
वाह वाह करते थे मेरी देखि सलौनी मूरत को,
रचि विधाता ने आकर क्या ऐसी सुन्दर मूरत को ॥
नीची अचकन चुस्त पजामा साफे रग के धानी को ॥हाय ८॥
जैसा था मैं वली साहसी वैसा ही था व्योपारी,
पुरुपारथ से धन सचय करि भरि देता था अलमारी ।
नारि सुता सुत पोता पोती आज्ञा मे थे घर वाले,
नाते रिश्तेदार करे थे स्वागत पर जीजा शाले ॥
सवको राखि प्रसन्न किया करता अपनी मनमानी को ॥हाय० ९॥

जोश जवानी का रग फीका पडने लगा पचासा मे,
साठि वरष का शठ कहलाया इस जीवन की आशा मे ।
सत्तर मे सब कहने लगे हत्तेरे की धुत्तेरे की,
वेही करने लगे बदी जिनके सग मे थी नेकी ॥
अपने हुये बिगाने अब तो करिक खैचातानी को ॥हाय० १०॥
सत्तर के लगभग अब तन पर सही बुढापा छाया है,
किधो काल ने मुझे पकडने को यमदूत पठाया है ।
पग खूटा दो हालन लागे चरखा हुआ पुराना है,
बिगडि गई पेट की आतडिया होता हज्म न खाना है ॥
सभी रोग आये करने मुझे बूढे की मिजमानी को ॥हाय० ११॥
शीश भया सब श्वेत मुरादाबादी जेम पतीली है,
वैठि गये है गाल बदन की खाल भई सब ढीली है ।
रौनक जाती रही भई चेहरे की रगत पीली है,
टप टप टपकै नाक सिनक से मूछे रहती गीली है ॥
हसते है सब आख देखि अँधी चुन्दो धुधलानी को ॥हाय० १२॥
टूटि गये सव दाँत वना मुह साँपो का भट्ट सा है,
वोला जाता नही ऐंठि करि जीभ बनी ज्यो लठ्ठा है ।
खासत खासत घडक उठा दिल बलगम हुआ इकट्ठा है,
अग अग मे वायु भरी सब चीखत रग रग पट्ठा है ॥
अरे करू कैसे मै सीधी अव इस कमर कमानी को ॥हाय० १३॥
जो करते थे प्यार वही अव टेडी आख दिखाते है,
नारि यार परिवार सुता सुत भाई पास न आते है ॥
खाना पीना औषधादि भी नही समय पर मिलती है,
हाथ पाव असमर्थ हुये कमबख्त नाकाया हिलती है ॥
पडा खाट पर काट रहा इस मौति सदृश जिन्दगानी को ॥हाय०॥
जो धन माल पास था मेरे सबने मिलि कर बाटा है'
फिर भी मै इनकी आँखो मे खटकू जैसे काँटा है ।
गाली दे दे कहते मुझ से खून हमारा पीवेगा,

ये खूसठ बूढा नहिं मरता जाने कब तक जीवेगा ।।
हृदय फटा जाता है मेरा सुन सुन तीक्षण वानी को ।।हाय०१५।।
मन मे था उत्साह पास मे पैसा तरुण अवस्था थी,
सब मेरे खाने पीने की घर मे ठीक व्यवस्था थी ।
तब न किया आतम हित मैने भोगो मे फस जाने से,
चोर निकल भागा घर से फिर क्या हो शोर मचाने से ।।
खडा शीश पर काल लूटने इस नरभव रजधानी को ।।हाय०१६।।
कहते थे गुरु देव बार बार मे समझा नहि समझाने से,
धर्म प्राप्ति का उपाय सीखा नही सिखाने से ।
चिडियाँ चुग गयी खेत अरे अब कहा होता पछिताने से ।
बीता समय हाथ नही आता गीत पुराने गाने से ।।
भय्या छोडि चलो अब जल्दी इस झोपड़ी पुरानी को ।।हाय०१७।।

———

मोक्षमार्ग प्रकाशक से उभयाभासी की प्रश्नोत्तरी

प्र० १–सातवाँ अधिकार किसके लिये लिखा गया ?

प्र० २–जैन कितने प्रकार के होते है ?

प्र० ३–सधैया जैन होने पर, जिनआज्ञा मानने पर, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास होने पर, तथा सच्चे देवादि को मानने पर भी सम्यक्त्व क्यो नही होता है ?

प्र० ४–जिनआज्ञा किस अपेक्षा है इसको जानने के लिये क्या जानना चाहिए ?

प्र० ५–निश्चय किसे कहते है ?

प्र० ६–व्यवहारनय किसे कहते है ?

प्र० ७–यथार्थ का नाम निश्चय के तीन बोल क्या-क्या है ?

प्र० ८–उपचार का नाम व्यवहार के तीन बोल क्या क्या है ?

प्र० ९–ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ नाम निश्चय क्यो कहा है ?

प्र० १०–शुद्ध पर्याय को यथार्थ का नाम निश्चय क्यो कहा है ?

प्र० ११–विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय क्यो कहा है?

प्र० १२–शुद्ध पर्याय का उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है?

प्र० १३–भूमिकानुसार शुभभावो को उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है ?

प्र० १४–द्रव्यकर्म नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है ?

प्र० १५–चौथे गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार किस प्रकार है ?

प्र० १६–पाँचवे गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार किस प्रकार है ?

प्र० १७–छठवे गुणस्थान मे निश्चय व्यवहार किस प्रकार है ?

प्र० १८—चौथे गुणस्थान मे निश्चय व्यवहार के तीनो बोल समझाओ ?

प्र० १९—पाँचवे गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार के तीनो बोल समझाओ ?

प्र० २० छठवे गुणस्थान मे निश्चय-व्यवहार के तीनो बोल समझाओ ?

प्र० २१ ससाररुपी वृक्ष का मूल कौन है ?

प्र० २२ मिथ्याभाव मे कौन-कौन आया ?

प्र० २३—सम्यक्भाव मे क्या-क्या समझना ?

प्र० २४—मिथ्यात्व क्या है ?

प्र० २५—मिथ्यात्व कैसा पाप है ?

प्र० २६—स्थूल मिथ्यात्व क्या है ?

प्र० २७—सूक्ष्म मिथ्यात्व क्या ?

प्र० २८—अन्यमतावलम्बियो मे कौन-कौन आते है ?

प्र० २९–मिथ्यात्व सात व्यसन से भी वडा पाप कहा वताया है?

प्र० ३०—उभयावासी किसे कहते है ?

प्र० ३१—उभयाभासी की खोटी मान्यताये कौन-कोन सी है ?

प्र० ३२—अपने शब्दो मे, उभयावासी को कैसे पहिचाने ?

प्र०. ३३—निश्चयाभासी किसे कहते है ?

प्र० ३४ - शक्तिरूप पाँच बाते क्या क्या है जिन्हे निश्चयाभासी पर्याय मे प्रगट मानता है ?

प्र० ३५—कैसे-कैसे शुभभावो को छोडकर अशुभ मे प्रवर्तता है?

प्र० ३६--निश्चयाभासी की मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवे अधिकार के प्रारम्भ मे चार भूले क्या-क्या बतलाई है ?

प्र० ३७—अपने शब्दो मे निश्चयाभासी को कैसे पहिचाने ?

प्र० ३८—व्यवहाराभासी किसे कहते है ?

प्र० ३९—व्यवहाराभासी की कितने भूले बतलाई है ?

प्र० ४०—व्यवहाराभासी कैसे पहिचाने ?

प्र० ४१—उभयावासी से हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिए ?

प्र० ४२—निश्चयाभासी से हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिए ?

प्र० ४३—व्यवहारभासी से हमे क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

दस प्रश्नोत्तर कैसे करने है

प्र० ४४—निश्चय-व्यवहार के विषय मे उभयावासी ने क्या किया ?

प्र० ४५–प० जी ने क्या उत्तर दिया ?

प्र० ४६–निश्चय-व्यवहार के विषय मे अमृतचन्द्राचार्य की आड मे उभयावासी ने क्या प्रश्न उठाया ?

प्र० ४७–अमृतचन्द्राचार्य ने क्या उत्तर दिया ?

प्र० ४८–निश्चय-व्यवहार के विषय मे कुन्द कुन्द भगवान की तरफ से उभयासी ने क्या प्रश्न उठाया ?

प्र० ४९--कुन्द कुन्द भगवान ने क्या उत्तर दिया ?

प्र० ५०—व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर निश्चय निश्चयनय का श्रद्धान क्यो करना चाहिये इस पर प्रश्न बनाओ ?

प्र० ५१—५६ गाथा समयसार के अनुसार क्या उत्तर दिया है ?

प्र० ५२—व्यवहार के श्रद्धान से मिथ्यात्व और निश्चय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इस पर प्रश्न बनाओ ?

प्र० ५३—समयसार १२वी गाथा के अनुसार उत्तार दो ?

प्र० ५४-ऐसे भी है- और ऐसे भी इस पर प्रश्न बनाओ?

प्र० ५५-ऐसे भी है और ऐसे भी इसका उत्तर दो ?

प्र० ५६-समयसार आठवी गाथा के अनुसार प्रश्न बनाओ?

प्र० ५७-आठवी गाथा के अनुसार उत्तर दो ?

प्र० ५८-व्यवहार के बिना निश्चय का उपदेश कैसे नही होता है।

प्र० ५९-५८ प्रश्न का उत्तर दो प्रश्न न० २५२ के अनुसार दो।

प्र० ६०-व्यहारनय को कैसे अगीकार नही करना प्रश्न बताओ?

प्र० ६१-प्रश्न ६० का प्रश्न २५२ के अनुसार उत्तर दो ?

प्र० ६२—व्यवहारनय के कथन को सच्चा मानने वालो को किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

प्र० ६३—शरीर के सम्बन्ध से जीव की पहिचान क्यो कराई ?

प्र० ६४—जीव के सम्बन्ध से शरीर को जीव कहा-ऐसे व्यवहार को कैसे अगीकार नही करना ?

प्र० ६५—ज्ञान-दर्शन भेदो से जीव की पहिचान क्यो कराई ?

प्र० ६६-ज्ञान-दर्शन भेदरुप व्यवहार का कैसे अगीकार न करना?

प्र० ६७—व्यवहार मोक्षमार्ग से निश्चय मोक्षमार्ग की पहिचान क्यो कराई ?

प्र० ६८-व्यवहार मोक्षमार्ग को कैसे अगीकार न करना ?

दूसरी तरह से

प्र० ६९—शरीर के सम्बन्ध से जीव की पहिचान क्यो कराई ?

प्र० ७०—ज्ञानदर्शन भेद द्वारा जीव की पहिचान क्यो कराई ?

प्र० ७१—अस्थिरता सम्बन्धी शुभभावो से मुनिपने की पहिचान क्यो कराई ?

प्र० ७२ – शरीर के सयोग बिना निश्चय आत्मा का उपदेश कैसे नही होता है ?

प्र० ७३—व्यवहारनय को कैसे अगीकार नही करना ?

प्र० ७४—भेदरुप व्यवहार के बिना अभेद रुप निश्चय का उपदेश कैसे नही होता है ?

तीसरी तरह से

---

६५ अनमोल रत्न

(१) जिस घर मे भगवान की स्तुति, भक्ति नही की जाती वह घर कसाईखाने के समान है।

(२) जो जिनवाणी का अध्ययन नही करते वे अन्धे हैं।

(३) जो लोभी दान मे लक्ष्मी का उपयोग नही करता है वह कौए से भी हल्का है।

(४) जिनेन्द्र भगवान की पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय, तप, सयम और दान ये छह आवश्यक श्रावक को प्रतिदिन करना चाहिए, अगर वह हमेशा नही करे तो श्रावक कहलाने योग्य नही है ।

(५) जो जिनेन्द्र देव के दर्शन प्रतिदिन नही करता वह पत्थर की नाव के समान है ।

(६) यदि यह आत्मा दो घडी पुद्गल द्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करे (उसमे लीन हो) परिग्रह के आने पर भी डिगे नही तो घातिया कर्म का नाश करके केवल ज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष को प्राप्त हो । जब आत्मानुभव की एसी महिमा है तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है, इसलिए श्री गुरु ने प्रधानता से यही उपदेश दिया है ।

(७) जामे जितनी बुद्धि है, उतनो देय बताय ।
वाको बुरा न मानिए, और कहा से लाय ।

(८) सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है ।

(९) ज्ञानीजन पुण्य-पाप मे हर्ष-विषाद नही करते ।

(१०) जीव-अजीव को पहिचाने विना भेदविज्ञान नही होता ।

(११) सम्यक्दर्शन के बिना ज्ञान-चरित्र मिथ्या है ।

(१२) भेदविज्ञान के बिना सम्यक्दर्शन नही होता ।

(१३) पर्याय मे उत्पन्न हुआ विकार क्षणिक एव आकुलतामयी है ।

(१४) अशुभभाव नरक निगोद का कारण है ।

(१५) शुभभाव स्वर्गादिक का कारण है मोक्ष का कारण नही है

(१६) शुद्धोपयोग मोक्षमार्ग और मोक्ष है ।

(१७) शुद्धोपयोग चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है।

(१८) स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुणस्थान मे प्रगट होता है।

(१९) पाचवे गुणस्थान मे देशचारित्र प्रगट होता है।

(२०) सातवे–छठवे मे सकलचारित्र प्रगट होता है।

(२१) बारहवे गुणस्थात मे यथाख्यात चारित्र प्रगट होता है।

(२२) जिसे परणति से प्रेम है उसे अपनी आत्मा से विरोध है।

(२३) धर्म का प्रारम्भ शुद्धोपयोग रूप आत्मानुमुति से ही होता है।

(२४) आत्मा ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणो का खजाना है।

(२५) सच्ची शान्ति आत्मा का अनुभव होने पर ही होती है।

(२६) ज्ञानी को अनुकूलता-प्रतिकूलता होती ही नही है।

(२७) धर्म अनुभव की वस्तु है।

(२८) आत्मा का अनुभव हुये बिना श्रावक-मुनिपना कभी होता ही नही है।

(२९) सर्वज्ञ देव की पहिचान ही आत्मा की पहिचान है।

(३०) सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र को तीर्थ कहते है।

(३१) वीतरागता का पोषण करे वह जिनवाणी है।

(३२) ज्ञानी को भगवान के दर्शन से अपने केवलज्ञानादि की याद आती है।

(३३) निज आत्मा का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।

(३४) अरहत के द्रव्य–गुण–पर्याय को जानने वाला अपने आत्मा को पहिचानता है।

(३५) स्यादवाद सहित अनेकान्त को दर्शानेवाला ही सच्चा शास्त्र है।

(३६) शक्ति की अपेक्षा सब आत्मा समान है।

(३७) एक गुण मे अनन्त गुणो का रूप है।

(३८) मेरे मे अनन्त सिद्ध दशा विराजमान है।

(३९) मै सिद्ध दशा का नाथ हूँ।

(४०) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नही करता है।

(४१) पर्याय क्रमबद्ध क्रम नियमित ही होती है।

(४२) वीतराग-विज्ञानता उत्तम वस्तु है।

(४३) पर्याय द्रव्य के सन्मुख होवे वे धर्म है।

(४४) मै परम पारिणामिकभाव हूँ।

(४५) धर्मी की दृष्टि सदा ध्रुव निज द्रव्य पर ही रहती है।

(४६) आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त भी नही होता।

(४७) सम्यग्दर्शन शुद्धोपयोग दशा मे प्रगट होता है।

(४८) सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चरित्र नियम से होता है।

(४९) शुद्धोपयोग ही वीतराग-विज्ञानता है।

(५०) वीतराग-विज्ञानता का एक नाम शुद्धोपयोग है।

(५१) शुद्धोपयोग कहो रत्नत्रय कहो एक ही बात है।

(५२) सारा विश्व काम-भोग की कथा मे लीन है। सत्य बात सुहाती ही नही है।

(५३) पचम काल मे जैनकुल–जिनेन्द्र की वाणी सुनने को मिले फिर भी अपने को न पहचाने–वह बडा सुभट है।

(५४) पचम काल मे पूज्य श्री कानजी स्वामी का योग मिलना एक अचम्भा है।

(५५) पूज्य गुरुदेव का योग मिलने पर भी ना समझा तो समझ लो अपात्र है।

(५६) शरीर को अपना मानने से कभी भी ससार से मुक्त ना होगा।

(५७) शरीर को अपना न माने मुक्त ही है।

(५८) परम पारिणामिक का आश्रय कहो आत्मा सन्मुख परिणाम कहो एक ही बात है।

(५९) एकमात्र निज आत्मा ही सार है।

(६०) आत्मा का आश्रय लेते ही सारा विश्व भिन्न भासने लगता है।

(६१) देहादिक विकल्पित जाल को तू दूर कर दे तो शीघ्र ही निज आत्मा मे अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होवेगा।

(६२) ससार का मूल कारण देहादि मे एकत्वपना ही है। वह एकमात्र निज स्वभाव की ओर दृष्टि करने से ही दूर होगा।

(६३) धर्म का मूल सम्यग्दर्शन ही है।

(६४) स्वरूप मे रमण करना ही चरित्र है।

(६५) प्र०—जिन प्रतिमा को जिनेन्द्र सरीखी कौन स्वीकार करता है? उत्तर जिसकी भवस्थिति अल्प हो गई है, मुक्ति निकट आई है वही जिन प्रतिमा को जिनेन्द्र सरीखी स्वीकार करता है।

———

पहला अधिकार

जीवबध, पुद्‌गल बंध और उभयबंध का दस प्रश्नोत्तरों द्वारा स्पष्टीकरण।

प्रश्न १–बंध किसे कहते है ?

उत्तर–जिस सवध विशेष से अनेक वस्तुओ मे एकपने का ज्ञान होता है उस सवध विशेष को वध कहते है।

प्रश्न २–बध की परिभाषा मे चार बाते कौन-कौन सी जाननी चाहिए। जिनके जानने-मानने से मिथ्यात्वादि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता की प्राप्ति हो ?

उत्तर–(१) सवध विशेप होना चाहिए। (२) अनेक वस्तुये होनी चाहिए। (३) बाहरी रूप से देखने मे, कथन मे एक आनी चाहिए। (४) जैसा-जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसा-वैसा ही ज्ञान मे आना चाहिए।

प्रश्न ३–बंध कितने प्रकार के है ?

उत्तर–तीन प्रकार के है। (१) जीव बन्ध (२) पुद्‌गल बन्ध (३) उभय बन्ध।

प्रश्न ४–मै क्रोधी हूं–यह कौन सा बन्ध है, और इसमे बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

उत्तर–मै क्रोधी हूँ–यह जीव बन्ध है। (१) मै क्रोधी–यह सम्बन्ध विशेप है। (२) एक आत्मा और क्रोध का भाव–यह अनेक वस्तुये हुई। (३) बाहरी रूप से देखने मे तथा बोलने मे आता है–

मे रोधी हूँ। (८) मुझ आत्मा-अबन्ध स्वभावी है। रोध का भाव बन्ध स्वभावी है ऐसा जानकर अपनी ज्ञान की पर्याय को अबन्ध स्वभावी निज आत्मा की ओर झुका दे तो बन्धभाव अलग पड जावेगा।

प्रश्न ५—जीव बन्ध को जानने-मानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—(अ) जैसे-जैसे अबन्ध स्वभावी निज आत्मा मे एकाग्र होता चला जावेगा, वैसे-वैसे बन्ध स्वभावी से भिन्न होता चला जावेगा और क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जावेगा।

(आ) जीव बन्ध के जानने-मानने से समयसारादि सम्पूर्ण अध्यात्म ग्रन्थो का मर्म उसके हाथ मे आ जावेगा।

प्रश्न ६—यह मेरा सोने का हार है—यह कौन सा बन्ध है और इसमे बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

उत्तर—सोने का हार—यह पुद्गल बन्ध है। (१) सोने का हार—यह सम्बन्ध विशेष है। (२) सोने के हार मे अनन्त पुद्गल परमाणु है—यह अनेक वस्तुये हुई। (३) बाहरी रूप से देखने मे तथा कथन मे आता है—यह मेरा सोने का हार है। (४) (अ) सोने का हार औदारिक शरीर है और इसका कर्त्ता वार्गणा ही है। [आ] सोने के हार मे अनन्त पुद्गल परमाणु है। [इ] प्रत्येक परमाणु मे अस्तित्व-वस्तुत्वादि अनन्त सामान्य गुण है और स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि अनन्त विशेष गुण है। प्रत्येक परमाणु एक-एक व्यजन पर्याय और अनन्त-अनन्त अर्थ पर्यायो सहित विराज रहा है। [ई] जब सोने के हार मे एक परमाणु का दूसरे परमाणु मे किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है तो मुझ आत्मा से सोने के हार का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? कभी भी नही हो सकता है। ऐसा श्रद्धान ज्ञान वर्ते तो उपचरित असदभूत व्यवहार नय से ऐसा कहा

जा सकता है कि—यह मेरा सोने का हार है, परन्तु ऐसा है नही।

प्रश्न ७—पुद्गल बन्ध को जानने-मानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—[अ] विश्व मे जितने समान जातीय स्कन्ध द्रष्टिगोचर होते है, उन सब मे पुद्गल बन्ध के अनुसार ज्ञान-श्रद्धान वर्तेगा तो पुद्गल स्कन्धो मे जो अनादिकाल से द्रव्यरूप बुद्धि वर्त रही है, उसका अभाव होकर धर्म की प्राप्ति करके क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जावेगा। [आ] अज्ञानी अनादिकाल मे पुद्गल बन्ध मे अपनेपने की मान्यता से पागल हो रहा था—उसका रहस्य समझ मे आ जावेगा।

प्रश्न ८—मै पं० कैलाश चन्द्र जैन हूं—यह कौन सा बन्ध है और इसमे बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

उत्तर—मै प० कैलाश चन्द्र जैन हूँ यह उभय बन्ध है। (१) मै प० कैलाशचन्द्र जैन हूँ यह सम्बन्ध विशेष है। (२) एक मुझ आत्मा और कैलाश चन्द्र मे अनन्त पुद्गल परमाणु—यह अनेक वस्तुये हुई। (३) मै प० कैलाश चन्द्र जैन हूँ—ऐसा बाह्‌ो रूप से देखने मे तथ बोलने मे आता है। (४) [अ] मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवत हूँ, कैलाश चन्द्र सर्वथा अजीव तत्व है। [आ] अनादिकाल से एक समय करके कैलाश चन्द्र अजीव तत्व मे अपनेपने की म से अनन्त बार निगोद गया और अपरिमित दुःख सहन किये वर्तमान मे सच्चे देव-गुरु-धर्म का सयोग मिला, उन्होने वर तू तो ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व है। कैलाश च अजीव तत्व है। अजीवतत्व से तेरा किसी भी प्रकार क अपेक्षा कोई सम्बन्ध नही है। [ई] ऐसा सुनते-जान आस्रव बन्ध भागने शुरू हो जायेंगे और सवरनिर्जरा व क्रम से मोक्ष लक्ष्मी का नाथ कहलायेगा।

प्रश्न ९—उभय बन्ध को जानने-मानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—[अ] विश्व मे निगोद से लगाकर १४वे गुणस्थान तक के असमान जातीय उभय बन्ध का सच्चा ज्ञान हो जाता है। [आ] उभय बन्ध को समझने से प्रयोजन भूत सात तत्वो का रहस्य समझ मे आ जाता है।

प्रश्न १०—असमानजातीय उभय बन्ध के विषय मे मोक्ष मार्ग प्रकाशक तथा प्रवचनसार मे क्या बताया है ?

उत्तर—(१) मोक्ष मार्ग प्रकाशक सातवे अधिकार मे लिखा है—असमानजातीय उभय बन्ध का ज्ञान हो जावे तो मिथ्याद्रष्टिपना न रहे। (२) प्रवचनसार गाथा १५४ की टीका व भावार्थ मे आया है कि मनुष्य-देव इत्यादि अनेक द्रव्यात्मक असमान जातीय द्रव्य पर्यायो मे भी जीव का स्वरूप अस्तित्व और प्रत्येक परमाणु का स्वरूप अस्तित्व सर्वथा भिन्न-भिन्न है। स्व—पर का भेद विज्ञान करने के लिए जीव के स्वरूप अस्तित्व को पद-पद पर लक्ष्य मे लेना योग्य है।

प्रश्न ११—यह मेरी किताब है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बात लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १२—मै वह हू—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १३—मैंने हिंसा का भाव किया—इस वाक्य पर बन्ध की चार बाते लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १४—यह मेरी हीरे की अंगूठी है—इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १५–मै शीतल प्रसाद हूं–इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १६–मैंने ब्रह्मचर्य का भाव किया–इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १७–यह मेरा महल है–इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १८–मै प्रबोध चन्द्र एडवोकेट हूं–इस बात पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १९–मै शान्ति रखता हूं–इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २०–यह मेरी कार है–इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २१–मै अजीत कुमार शास्त्री हूं–इस वाक्य पर बन्ध की चार बाते लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २२–मैंने अहिंसा का भाव किया–इस वाक्य पर बन्ध की चार बाते लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २३–यह मेरी हीरो की दुकान है–इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २४–मै डॉक्टर हूं–इस वाक्य पर बन्ध की चार बाते लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २५–मैंने एक्सरे मशीन मगाई है–इस वाक्य पर बन्ध की चार बाते लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २६–मै राष्ट्रपति हू–इस वाक्य पर वन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २७–मैने हेलिकाप्टर ले लिया है–इस वाक्य पर वन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २८–यह मेरा पति है–इस वाक्य पर वन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २९–मे विधायक हूं–इस वाक्य पर वन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

प्रश्न ३०–मैने चीन से जूता वनवाया है–इस वाक्य पर बन्ध की चार बातें लगाकर समझाइये ?

—oo—

प्रश्न १–मै उठा–इस वाक्य पर (१) अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण और द्रव्यत्व गुण को कब माना और (२) अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण और द्रव्यत्व गुण को कब नही माना ?

उत्तर–(१) तराजू के एक पलडे मे मुझ आत्मा अस्तित्व गुण के कारण कायम रह कर, वस्तुत्व गुण के कारण अपनी जानने रुप प्रयोजनभूत क्रिया करता हुआ और द्रव्यत्व गुण के कारण निरन्तर जानने रुप परिणमित हो रहा है। तराजू के दूसरे पलडे मे शरीर के उठने रुप अनन्त पुद्गल परमाणु अस्तित्व गुण के कारण कायम रहते हुए, वस्तुत्व गुण के कारण अपनी उठने रुप प्रयोजनभूत क्रिया करते हुये और द्रव्यत्व गुण के कारण निरन्तर परिणमते है। शरीर के उठने रूप पुद्गल परमाणुओ से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नही है। ऐसी मान्यता वाले ने निज आत्मा का और शरीर के उठने रूप पुद्गल परमाणुओ के अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण, और द्रव्यत्व गुण को माना। और (२) शरीर के उठने रुप पुद्गलो के कार्यो मे–मै उठा ऐसी मान्यता वाले ने निज आत्मा का और शरीर के उठने रुप पुद्गलो के अस्तित्व गुण, वस्तुत्व गुण, और द्रव्यत्व गुण को नही माना।

प्रश्न २–मै उठा–इस वाक्य पर (१) प्रमेयत्व गुण को कब माना (२) प्रमेयत्व गुण को कब नही माना ?

उत्तर–(१) निज आत्मा ज्ञायक और शरीर के उठने रूप अनन्त पुद्गल परमाणुओ का कार्य व्यवहारनय से मे [illegible]
वास्तव मे निज आत्मा ज्ञायक है और जानने [illegible]
ऐसे स्व-स्वामी सम्बन्ध से भी कुछ सिद्धि नही है [illegible]
ज्ञायक है। ऐसी मान्यता वालो ने प्रमेयत्व गुण [illegible]
शरीर के उठने रुप अनन्त पुद्गलो के कार्यो मे- [illegible]
वालो ने शरीर के उठने रुप अनन्त पुद्ग [illegible]

मानने के कारण प्रमेयत्व गुण को नही माना ?

प्रश्न ३—मै उठा—इस वाक्य पर (१) अगुरुलघुत्व गुण को कब माना और (२) अगुरुलघुत्व गुण को कब नही माना ?

उत्तर—(१) निज आत्मा का और उटने रुप अनन्त पुद्गलो का द्रव्यक्षेत्र-काल-भाव सर्वथा पृथक है। ऐसी मान्यता वाले ने अगुरुलघुत्व गुण को माना और (२) उठने रूप पुद्गलो के कार्यो मे मै उठा—ऐसी मान्यता वालो ने अगुरुलघुत्व गुण को नही माना।

प्रश्न ४—मै उठा—इस वाक्य पर (१) प्रदेशत्व गुण को कब माना और (२) प्रदेशत्व गुण को नही माना ?

उत्तर—(१) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी एक निज आकार का और शरीर के उठने रुप जड रुपी एक प्रदेशी पुद्गलो के अनन्त आकारो से सर्वथा सम्बन्ध नही है, ऐसी मान्यता वालो ने प्रदेशत्व गुण को माना और (२) जड रुपी एक प्रदेशी पुद्गलो के अनन्त आकारो मे मै उठा ऐसी मान्यता वालो ने प्रदेशत्व गुण को नही माना।

प्रश्न ५—मै उठा—इस वाक्य पर (१) अत्यन्ताभाव को कब माना और (२) अत्यन्ताभाव को कब नही माना ?

उत्तर—(१) निज चैतन्य अरुपी ज्ञायक भगवान आत्मा का शरीर के उठने रुप पुद्गलो से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है—ऐसी मान्यता वाले ने अत्यन्ताभाव को माना और (२) शरीर के उठने रुप पुद्गलो मे मै उठा—ऐसी मान्यता वालो ने अत्यन्ताभाव को नही माना।

प्रश्न ६—मै उठा—इस वाक्य पर (१) अन्योन्याभाव को कब माना और (२) अन्योन्याभाव को कब नही माना ?

उत्तर-शरीर का उठना आत्मा से तो नही हुआ परन्तु द्रव्यकर्म के कारण तो शरीर उठा ऐसा कोई कहता है। अरे भाई द्रव्यकर्म से स्कन्धो की वर्तमान पर्याय का और शरीर के उटने रुप स्कन्धो की वर्तमान पर्यायो मे अन्योन्याभाव है। जब एक जाति के पुद्गलो के कार्यों मे आपस मे सम्बन्ध नही है। तो मुझ आत्मा का शरीर उठने के साथ सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? कभी भी नही हो सकता है। ऐसी मान्यता वाले ने अन्योन्याभाव को माना और (२) शरीर के उठने रुप क्रिया का आत्मा के साथ तो सम्बन्ध नही है परन्तु द्रव्य-कर्म के कारण शरीर उठा-ऐसी मान्यता वालो ने अन्योन्याभाव को नही माना।

प्रश्न ७—मै उठा—इस वाक्य मे (१) प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव को कब माना और (२) प्रागभाव और प्रध्वसाभाव को कब नही माना ?

उत्तर-(१) शरीर के उठने रुप वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय भी कारण नही है और शरीर के उठने रुप वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय भी कारण नही है क्योकि शरीर के उठने रुप वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय मे प्रागभाव है और शरीर के उठने रुप वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय मे प्रध्वसाभाव है, ऐसी मान्यता वालो ने प्रागभाव और प्रध्वसाभाव को माना और (२) शरीर के उठने रुप [illegible]मान पर्याय का पूर्व पर्याय से सम्बन्ध है और शरीर के उटने रुप [illegible]य का भविष्य की पर्याय से भी कुछ सम्बन्ध है-ऐसी मान्यता वाले [illegible] प्रागभाव और प्रध्वसाभाव को नही माना।

प्रश्न ८—मै उठा—इस वाक्य मे चारो अभाव के समझने से वीत-रागता कैसे निकलती है स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर-(१) उठने रुप पुद्गलो का मुझ चेतन आत्मा मे अत्यन्ता-भाव है। (२) द्रव्यकर्म और शरीर के उठने रुप वर्तमान पर्यायो मे

अन्योन्याभाव है। (३) शरीर के उठने रूप वर्तमान पर्याय का भूत की पर्याय मे प्रागभाव है। (४) शरीर के उठने रूप वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय मे प्रध्वसाभाव है। अब जैसे शरीर का उठना उस समय पर्याय की योग्यता मे ही हुआ है, वैसे ही विश्व मे जितने भी कार्य है, वे सब उस समय की पर्याय की योग्यता से हो चुके है, हो रहे है, और भविष्य मे होते रहेगे। ऐसा समझने से पर मे कर्त्ता-भोक्ता की खोटी मान्यता का अभाव होकर तत्काल वीत-रागता की प्राप्ति हो जाती है। और फिर क्रम से मोक्ष रूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न ९–मैने घडा बनाया–इस वाक्य पर सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार समझाइये ?

प्रश्न १०–मैने रोटी बनाई–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावों को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न ११–मैने अग्नि से पानी गरम किया–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १२–मैने किताब बनाई–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १३–मैने बिस्तर बिछाया–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १४–मैं खड़ा हुआ–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १५–मैंने कुर्सी बनाई–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तर के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न १६–मेरे घर मे बीस मेम्बर है–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तर के अनुसार लिखकर समझाइये ?

प्रश्न १७–हम तो तीन है–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक प्रश्नोत्तरो के अनुसार लिखकर समझाइये ?

प्रश्न १८–यह मेरी दुकान है–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लिख-कर समझाइये ?

प्रश्न १९–मैंने सूट बनवाया है–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को १ से ८ तक के प्रश्नोत्तरो के अनुसार लगाकर समझाइये ?

प्रश्न २०–मेरा ब्याह हो गया है–इस वाक्य पर छह सामान्य गुण और चार अभावो को लिखकर समझाइये ?

—०○—

प्र० १– कार्य पर से छह प्रश्न कौन-कौन से उठते है ?

उत्तर–(१) किसने किया ! कर्त्ता (२) क्या किया ? कर्म (३) किस साधन द्वारा किया ? करण। (४) किसके लिये किया ? सम्प्रदान (५) किसमे से किया ? अपादान। (६) किसके आधार से किया ? अधिकरण।

प्र० २– कारक कितने प्रकार के कहलाते है ?

उत्तर–चार प्रकार के कहलाते है। (१) निमित्त कारक (२) त्रिकाली कारक (३) अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय क्षणिक उपादान कारक (४) उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारक।

प्र० ३– मै उठा—इस वाक्य पर निमित्त कारक किस प्रकार कहे जाते है ?

उत्तर–शरीर उठा–यह कार्य है और कार्य पर से छह प्रश्न उठ है। (१) कौन उठा ? मै (आत्मा) अत मै (आत्मा) कर्त्ता हुआ। (२) मैने क्या किया ? उठना। अत शरीर का उठना कर्म हुआ। (३) उठना किस साधन के द्वारा हुआ ? रस्सी के द्वारा हुआ। अत रस्सी करण हुआ। (४) उठना किसके लिए हुआ ? बाजार जाने के लिए। अत बाजार सम्प्रदान हुआ। (५) उठना किसमे से हुआ ? बिस्तर मे से हुआ। अत बिस्तर अपादान हुआ। (६) उठना किसके आधार से हुआ ? जमीन के आधार से हुआ। अत जमीन अधिकरण हुआ।

प्र० ४–क्या निमित्त कारक भिन्न-भिन्न होते है और ये निमित्त कारक किस अपेक्षा कहे जा सकते है ?

उत्तर–इसमे आत्मा कर्त्ता, उठना कर्म, रस्सी करण, बाजार

सम्प्रदान, विस्तर अपादान, और जमीन अधिकरण–इसमे सभी कारक भिन्न-भिन्न होते है। यह निमित्त कारक असत्य है और ये सव उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहे जा सकते है।

प्र० ५–निमित्त कारण को ही कोई सत्य माने तो उन महानुभावो को जिनवाणी मे किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर–जो आत्मा, रस्सी, वाजार, विस्तर, जमीन आदि निमित्त कारको से ही शरीर उठने रुप कार्य की उत्पत्ति मानते है। (१) उन्हे प्रवचनसार कलश ५५ मे कहा है कि वह पद-पद पर धोखा खाता है। (२) उन्हे समयसार कलश ५५ मे कहा है कि उनका सुलटना दुर्निवार है और यह उनका अज्ञान मोह अन्धकार है। (३) उन्हे पुरुषार्थ सिद्धियुपाय गाथा ६ मे कहा है कि तस्य देशना नास्ति। (४) उन्हे आत्मावलोकन मे कहा है कि यह उनका हरामजादीपना है।

प्र० ६–आहारवर्गणा त्रिकाली उपादान कारक और शरीर उठने रुप कार्य उपादेय। इसको समझने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर–(१) आत्मा, रस्सी, वाजार, विस्तर, जमीन आदि निमित्त कारको से शरीर के उठने रुप कार्य हुआ, ऐसी खोटी मान्यता का अभाव हो जाता है। (२) शरीर के उठने रुप कार्य के लिए आहार वर्गणा को छोडकर दूसरी वर्गणाओ से दृष्टि हट जाती है। (३) अव यहा पर उठने रुप कार्य के लिए एक मात्र आहारवर्गणा की तरफ देखना रहा।

प्र०–मै उठा—इस वाक्य पर आहारवर्गणा त्रिकाली उपादान कारक की अपेक्षा छह कारक लगाकर समझाइये।

उत्तर–शरीर उठा–यह कार्य है और कार्य पर से छह प्रश्न उटते

है। (१) शरीर का उठना किससे हुआ? आहार वर्गणा से। अत आहार वर्गणा कर्त्ता हुआ (२) आहार वर्गणा ने क्या किया? शरीर का उठना। अत शरीर उठा यह कर्म हुआ। (३) शरीर का उठना किस साधन से हुआ? आहार वर्गणा के साधन द्वारा। अत आहार-वर्गणा करण हुआ। (४)शरीर का करण उठना किसके लिए हुआ? आहारवर्गणा के लिए। अत आहार वर्गणा सम्प्रदान हुआ (५) शरीर का उठना किससे हुआ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय क्षणिक अपादान कारण का आभाव करके आहारवर्गणा मे से हुआ। अत आहार वर्गणा अपादान हुआ। (६) शरीर का उठना किसके आधार से हुआ? आहारवर्गणा के आधार से। अत आहारवर्गणा अधिकरण हुआ।

प्र० ८–कोई चतुर प्रश्न करता है कि आप कहते हो शरीर के उठने रुप कार्य का, आत्मा, रस्सी, बाजार आदि निमित्त कारको से सर्वथा सम्बन्ध नही है। तो फिर विश्व मे आहारवर्गणा पहिले से ही थी तब पहिले शरीर का उठना क्यो नही हुआ। अत आपका ऐसा कहना कि आहार-वर्गणा उपादान-कारण और शरीर के उठने रुप कार्य-कर्म है यह बात झूठी साबित होती है?

उत्तर–अरे भाई हमने आहार वर्गणा को शरीर के उठने रुप कार्य का उपादान कारक कहा है, वह तो आत्मा, रस्सी, बाजार आदि निमित्त कारको से पृथक करने की अपेक्षा से कहा है। वास्तव मे आहारवर्गणा भी शरीर के उठने रुप कार्य का सच्चा उपादान कारण नही है।

प्र० ९–आहार वर्गणा भी शरीर के उठने रुप कार्य का सच्चा उपादान कारण नही है, तो यहाँ पर शरीर के उठने रुप कार्य का सच्चा उपादान कारण कौन है?

उत्तर–आहार वर्गणा मे अनादिकाल से पर्यायो का प्रवाह चला

आ रहा है। मानो दस नम्वर पर शरीर के उठने रुप कार्य हुआ तो उसमे अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्वर क्षणिक उपादान कारण शरीर के उठने रुप कार्य का यहा पर सच्चा उपादान कारण है।

प्र० १०–आहार वर्गणा मे अनादिकाल से पर्यायो का प्रवाह क्यो चला आ रहा है ?

उत्तर–प्रत्येक द्रव्य-गुण अनादिअनन्त ध्रौव्य रहता हुआ एक पर्याय का व्यय और दूसरी पर्याय का उत्पाद एक ही समय मे स्वय स्वत अपने परिणमन स्वभाव के कारण करता रहा है, करता है, और भविष्य मे करता रहेगा-ऐसा वस्तु स्वरुप है। इसी कारण अनादिकाल से आहारवर्गणा मे पर्यायो का प्रवाह चला आ रहा है।

प्र० ११–अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण और शरीर के उठने रुप कार्य कर्म–इसको जानने-मानने से क्या-क्या लाभ रहे ?

उत्तर–(१) भूत-भविष्य की पर्यायो से शरीर के उठने रुप कार्य हुआ–ऐसी मान्यता दूर हो गई। (२) आहारवर्गणा जो त्रिकाली उपादान कारक था, वह भी व्यवहार कारण हो गया। (३) अब यहा पर शरीर के उठने रुप कार्य के लिए मात्र अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्वर क्षणिक उपादान कारण की तरफ देखना रहा।

प्र० १२–मै उठा—इस वाक्य पर अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण की अपेक्षा छह कारण लगाकर समझाइये ?

उत्तर–शरीर उठा—यह कार्य है और कार्य पर से छह प्रश्न उठते है। (१) शरीर उठने रूप कार्य किसने किया ? अनन्तर पूर्व

क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारक ने। अत अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नो नम्बर क्षणिक उपादान कारण कर्त्ता हुआ। (२) अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण ने क्या किया ? शरीर के उठने रुप कार्य किया। अत शरीर उठा-यह कर्म हुआ। (३) शरीर का उठना किस साधन द्वारा हुआ ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण के साधन द्वारा। अत अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण करण हुआ। (४) शरीर का उठना किसके लिए हुआ ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण के लिए। अत अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण सम्प्रदान हुआ। (५) शरीर का उठना किसमे से हुआ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण मे से। अत अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्वर क्षणिक उपादान कारक। अपादान हुआ। (६) शरीर का उठना किसके आधार से हुआ ? अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण अधिकरण हुआ।

प्र० १३–कोई चतुर फिर प्रश्न करता है कि अभाव मे से भाव की उत्पत्ति नही होती है और पर्याय मे से पर्याय नही आती है— ऐसा जिनवाणी मे कहा है। फिर यह मानना कि अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण और शरीर उठने रुप कार्य कर्म यह आपकी बात झूठी साबित होती है ?

उत्तर–अरे भाई ! अभाव मे से भाव की उत्पति नही होती है और पर्याय मे से पर्याय नही आती है-यह बात जिनवाणी की बिल्कुल ठीक है। परन्तु हमने तो कार्य से पहिले कौन सी पर्याय होती है उसकी अपेक्षा अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर को क्षणिक उपादान कारण कहा है,परन्तु अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्वर भी शरीर उठने रुप कार्य का सच्चा उपादान कारण नही है।

प्र० १४–अनन्तर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय नौ नम्बर क्षणिक उपादान कारण भी शरीर के उठने रुप कार्य का सच्चा उपादान करण नही है तो वास्तव मे शरीर के उठने रुप कार्य का सच्चा अपादान कारण कौन है ?

उत्तर—वास्तव मे उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण ही शरीर के उठने रुप कार्य का सच्चा उपादान कारक है।

प्र० १५–उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण कर्त्ता और शरीर उठा यह कर्म। इस पर छह कारक लगाकर समझाइये ?

उत्तर—शरीर उठा—यह कर्म है, कार्य पर से छह प्रश्न उठते है। (१) शरीर का उठना किसने किया ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर उठने ने। अत शरीर उठा–यह कर्त्ता हुआ। (२) उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर ने क्या किया? शरीर उठने रुप कार्य किया। अत शरीर उठा–यह कर्म-हुआ। (३) शरीर का उठना किस साधन द्वारा हुआ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर के साधन द्वारा। अन शरीर उठना-करण हुआ। (४) शरीर का उठना किसके लिए हुआ ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर के लिए। अत शरीर उठना सम्प्रदान हुआ। (५) शरीर का उठना किसमे से बना? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण शरीर मे से बना। अत शरीर का उठना अपादान हुआ। (६) शरीर का उठना किसके आधार से हुआ ? उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक अपादान कारण शरीर के आधार से। अत शरीर का उठना अधिकरण हुआ।

प्र० १६–उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक अपादान कारण से ही शरीर का उठना हुआ इसको जानने-मानने से क्या लाभ रहा?

उत्तर–जैसे शरीर का उठना–उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण से हुआ है, उसी प्रकार विश्व मे जितने कार्य है, वे सब उस समय पर्याय की योग्यता क्षणिक उपादान कारण से हो चुके हे, हो रहे हैं और भविष्य मे होते रहेगे ऐसा जानते-मानते ही दृष्टि अपने स्वभाव पर आ जाती हे।

प्र० १७–मैने रथ बनाया–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १८–दर्शन मोहनीय का उपशम होने से ओपशमिक सम्यक्त्व हुआ–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १९–केवल ज्ञानावरणी के अभाव से केवल ज्ञान हुआ इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लागाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २०–मैने पलंग पर हाथ से कपड़े बिछाये इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २१–मैने कपड़ा बेचकर रुपया कमाया इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २२–मैने हाथ और कलम से पुस्तक बनाई–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २३–मै मुंह से जोर-शोर से बोलता हूं–इस वाक्य पर चारों प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २४–मैंने चाबी से दुकान का ताला खोला-इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २५–मैंने आख द्वारा चश्मे से ज्ञान किया–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २६–मैंने औजारो से अलमारी बनाई–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २७–मैंने भगवान की दिव्यध्वनी से ज्ञान प्राप्त किया–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २८–मैंने मिस्त्रियो द्वारा सीमेट से मकान तैयार कराया–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २६–मैंने मुंह द्वारा रमेश को गाली दी–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारक लगाकर समझाइये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३०–मैंने चाक, कीली, डंडा द्वारा घड़ा बनाया–इस वाक्य पर चारो प्रकार के छह कारण लगाकर समझाइये।

उ०–प्रश्नोत्तर १ से १६ तक के अनुसार उत्तर दो।

—००—

दूसरा अधिकार

छहढ़ाला की प्रथम तीन ढालो पर प्रयोजनभूत सात तत्वो का १३० प्रश्नोत्तरो द्वारा समाधान

जीवतत्त्व संबंधी जीव की भूल का सपष्टीकरण

प्र० १–अज्ञानी अपने को सुखी दुःखी किसे मानता है ?

उ०– शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी–ऐसा मानता है।

प्र० २–शरीर की अनुकूल अवस्था से मै सुखी और प्रतिकूल अवस्था से मै दु.खी–ऐसी मान्यता को छहढ़ाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०– "मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।" अर्थात वीतराग विज्ञानता रूप निज शुद्ध आत्मा को भूलकर शरीर की अनुकूल अवस्था से मै सुखी और प्रतिकूल अवस्था से मै दु खी–ऐसी मान्यता को मोहरूपी महा मदिरापान बताया है।

प्र० ३–शरीर की अनुकूल अवस्था से मै सुखी और प्रतिकूल अवस्था से मै दुःखी ऐसी मान्यता को मोहरुपी महामदिरापान छहढाला की प्रथम ढाल मे क्यों बताया है ?

उ०–(१) तराजू के एक पलडे मे स्वय वीतराग विज्ञानता रूप एक ज्ञायक शुद्ध आत्मा। (२) तराजू के दूसरे पलडे मे शरीर की अनुकूलता और प्रतिकूलता रुप अवस्था आहारवर्गणा का कार्य है। (३) इन सब मे एकत्वबुद्धि होने से शरीर की अनुकूलता से मै सुखी

और प्रतिकूलता से मै दु खी–ऐसी मान्यता को मोहरुपी महा-मदिरापान बताया है।

प्र० ४–शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और प्रतिकूलता से मै दुःखी–ऐसी मोहरुपी महामदिरापान का फल छहढ़ाला की प्रथम ढ़ाल मे क्या बताया है ?

उ०–ऐसी मोहरुपी महामदिरापान का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद बताया है।

प्र० ५–शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और प्रतिकूलता से मैं दुःखी–ऐसी मान्यता का फल चारो गतियो में घूमकर निगोद क्यो बताया है ?

उ०–(१) सुख आत्मा के सुख गुण मे से आता है और दुख सुख गुण की विपरीत दशा है। (२) जड शरीरादि मे सुख या दुख की कोई पर्याय नही है। शरीर की अनुकूलता और प्रतिकूलता व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। (३) परन्तु अज्ञानी शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और प्रतिकूलता से मै दुखी हूँ, ऐसी खोटी मान्यता से चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० ६–"मै सुखी दुःखी मै रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय मे सबल दीन, बेरुप सुभग मूरख प्रवीण॥ छहढाला की दूसरी ढ़ाल के इस दोहे मे जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०–(१) चेतन को है उपयोगरुप अर्थात मै ज्ञानदर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दु खी मानना ही जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है। (२) मै

ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता-द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दुखी-ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। (४) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता-द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दुखी–ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत मिथ्याचारित्र है। (५) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दुखी–ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैन धर्मी होने पर भी कुगुरू-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दुखी-ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेप दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहित मिथ्याज्ञान वताया है। (७) वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्य-भव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दुखी–ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेप दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र० ७–मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूं, और मेरा कार्य ज्ञाता द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दुखी–ऐसा जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग-

दर्शनादि की प्राप्ति होकर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे–इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उ०–"चेतन को है उपयोगरुप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म अधर्मकाल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥" (१) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता द्रष्टा है। (३) आँख-नाक-कान औदारिक शरीररुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है। (९) लोकप्रमाण असख्यात काल द्रव्य है। इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीव तत्त्व का आश्रय ले, तो शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दुखी, ऐसा जीव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर समयग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे, यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० ८–मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ और मेरा कार्य ज्ञाता-द्रष्टा है। इस बात को भूलकर शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दु.खी–ऐसी मान्यता को आपने जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु अपने को जो ज्ञानी मानते है वह भी शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दुखी–ऐसा

तो ज्ञानी भी कहने सुने-देखे जाते हैं। तो क्या ज्ञानियो को भी जीव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते है ?

उ०-ज्ञानियो को बिलकुल नही होते। (१) क्योकि जिन, जिनवर और जिनवरवृषभो ने शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दु खी- ऐसी खोटी मान्यता को जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते है वे जीव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते है। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दु खी-ज्ञानियो के ऐसे कथन को आगम मे अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय कहा है।

प्र० ९-निर्धन होने से मै दुःखी और राजा होने से मै सुखी-इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १०-मेरे पास धन होने से मै सुखी और मेरे पास धन न होने से मै दु खी। इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११-मेरा बडप्पन होने से मै सुखी और मेरा बडप्पन न होने से मै दु:खी। इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १२-मेरी स्त्री न होने से मैं दुखी और मेरी स्त्री होने से मैं सुखी। इस वाक्य पर जीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टी-करण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १३-कुरुप होने से मैं दु.खी और सुन्दर होने से मैं सुखी। इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १४-दूध मिलने से मैं सुखी और दूध न मिले तो मैं दु.खी। इस वाक्य पर जीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १५-लडकी होने से मैं दुःखी और लडका होने से मैं सुखी। इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १६-हल्का होने से मैं दुःखी और भारी होने से मैं सुखी। इस वाक्य पर जीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १७-बदबू आने से मैं दुःखी और खुशबू आने से मैं सुखी।

इस वाक्य पर जीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १८–बुखार आने से मैं दुःखी और ठीक होने से मैं सुखी। इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १९–व्यापार चलने से मैं सुखी और व्यापार न चलने से मैं दुखी। इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० २०–सिनेमा देखने से मैं सुखी और सिनेमा देखने को न मिलने से मैं दुःखी। इस वाक्य पर जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर १ से ८ तक के अनुसार उत्तर दो।

—००—

अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० २१–अज्ञानी अपना जन्म और मरण किससे मानता है ?

उ०–शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण मानता है।

प्र ०२२–शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसी मान्यता को छहढ़ाला की प्रथम ढ़ाल मे क्या बताया है ?

उ०–"मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि" अर्थात् वीतराग विज्ञानतारुप निज शुद्ध आत्मा को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसी मान्यता को मोहरुपी महामदिरापान वताया है।

प्र० २३–शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसी मान्यता को मोहरुपी महामदिरा-पान छहढाला की प्रथम ढाल मे क्यो बताया है ?

उ०–(१) तराजू के एक पलडे मे स्वय वीतराग विज्ञानतारुप एक ज्ञायक शुद्धात्मा। (२) तराजू के दूसरे पलडे मे शरीर की उत्पत्ति व मरणरुप अनन्त परमाणु का स्कध। (३) इन सव मे एकत्व बुद्धि होने से शरीर की उत्पति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण अत ऐसी मान्यता को मोहरुपी महामदिरापान बताया है।

प्र० २४–शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसी मोहरुपी महामदिरापान का फल छहढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है ?

उ०–ऐसी मोहरुपी महामदिरापान का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० २५–शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसी मोहरुपी महामदिरापान का फल छहढाला की प्रथम ढाल मे चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना क्यो बताया है ?

उ०–(१) स्वय वीतराग विज्ञानतारूप एक ज्ञायक शुद्ध आत्मा। (२) शरीर की उत्पत्ति और वियोग व्यवहारनय से एक मात्र ज्ञान का ज्ञेय है। (३) परन्तु ऐसा न मानकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण है–ऐसी खोटी मान्यता से चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना वताया है।

प्र० २६–तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान। छहढाला की दूसरी ढाल के इस दोहे मे अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०–(१) जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। इस वात को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण मानना ही अजीवतत्त्व सम्वन्धी जीव की भूल है। (२)जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। इस बात को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण मानना–ऐसा अनादिकाल का एक-एक समय करके चला आ रहा श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) जीव जन्मादिरहित नित्य ही है। इस वात को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण जानना–ऐसा अनादिकाल का एक-एक समय करके चला आ रहा ज्ञान अगृहीत मिथ्या ज्ञान है। (४) जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। इस वात को भूलकर शरीर

की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण रूप आचरण–ऐसा अनादिकाल का एक-एक समय करके चला आ रहा आचरण अगृहीत मिथ्याचरित्र है। (५) वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेप दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र०-२७–जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। इस बात को भूलकर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे–इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उ०–चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मै ज्ञान-दशन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है।, (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है।

(६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है। (९) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है। इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर जन्मादि रहित अजर-अमर नित्य निजज्ञान-स्वभावी आत्मा का आश्रय ले, तो शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसा अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की मूल-रुपे अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति हो जावे। यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० २८–जीव जन्मादि रहित नित्य ही है। इस बात को भूल-कर शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ऐसी मान्यता को आपने अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते है वह भी शरीर की उत्पति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण है ऐसा कहते-सुने-देखे जाने है। क्या ज्ञानियो को भी अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उ०–ज्ञानियो को बिल्कुल नही होते है। (१) क्योकि जिन जिनवर और वृषभो ने शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण ऐसी खोटी मान्यता को अजीव-तत्त्व सम्बन्धी जीव की मूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते है वे अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्या-

दर्शनादि का अभाव करके ही बनते है। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तत्ता है। (४) शरीर की उत्पत्ति से जीव का जन्म और शरीर के वियोग से जीव का मरण–ज्ञानियो के ऐसे कथन को आगम मे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहा है।

प्र० २९–मै बालक हूं, मै जवान हूं–इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३०–मै हल्का हूं, मै भारी हूं–इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३१–मै काला हूं, मै गोरा हूं। इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३२–मुझे लकवा हो गया था, अब स्वस्थ हो गया–इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३३–मुझे भूख लगी है, मुझे तृषा लगी है। इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३४–मुझे सरदी लगती है, मुझे गरमी लगती है। इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३५--मुझे खट्टा आम अच्छा नहीं लगता है, मीठा आम अच्छा लगता है। इस वाक्य पर अजीबतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३६—मै चला-मै गिरा-इस वाक्य पर अजीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३७—मुझे बदबू अच्छी नहीं लगती है, मुझे खुशबू अच्छी लगती है। इस वाक्य पर अजीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३८—मुझे फिल्मी गाना सुहाता है, मुझे धर्म की बात नही सुहाती। इस बात पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ३९—मेरा मकान है, मेरा जेवर है। इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ४०—मेरी नाक कट गयी है, मेरा हाथ कट गया है। इस वाक्य पर अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए

उ०-प्रश्नोत्तर २१ से २८ तक के अनुसार उत्तर दो।

आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० ४१—आश्रवतत्त्व के विषय मे अज्ञानी क्या मानता है ?

उ०-हिसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय मानता है और अहिसादिरुप पुण्याश्रव है उन्हे उपादेय मानता है।

प्र० ४२-हिसादिरुप पापाश्रव हेय हैं और अहिंसादिरुप पुण्याश्रव उपादेय है। ऐसी मान्यता को छहढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है ?

उ०-"मोह महामद पियो अनादि भूल आपको भरमत वादि।" अर्थात्-मोह, राग, द्वेष आदि शुभाशुभ विकारी भाव आश्रव भाव है। ये प्रत्यक्ष दुख के देने वाले है और बध के ही कारण है। इस बात को भूलकर हिसादिरुप पापाश्रव को हेय माननेरुप और अहिसादिरुप पुण्याश्रव को उपादेय मानरेरुप मान्यता को मोहरुपी महामदिरापान बताया है।

प्र० ४३-हिसादिरुप पापाश्रव हेय है और अहिसादिरुप पुण्याश्रव उपादेय है-ऐसी मान्यता को मोहरुही महामदिरापान छहढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है ?

उ०-(१) मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारी भाव आश्रवभाव है। ये प्रत्यक्ष दुख के देने वाले है और बन्ध के ही कारण है। (२) हिसादिरुप पापाश्रव और अहिसादिरुप पुण्याश्रव दोनो ही हेय है। इसलिये हिसादिरुप पुपाश्रव हेय हैं और अहिसादिरुप पुण्याश्रव उपादेय है, इस खोटी मान्यता को मोहरुपी महामदिरापान बताया है।

प्र० ४४–हिसादिरुप पापश्रव हेय है और अहिसादिरुप पुण्या-श्रव उपादेय है–ऐसे मोहरुपी महामदिरापान का फल छहढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है ?

उ०-ऐसी मोहरुपी मदिरापान का फल चारो गतियो मे घूम-कर निगोद जाना वताया है।

प्र० ४५–हिसादिरुप पापाश्रव हेय है और अहिसादिरूप पुण्या-श्रव उपादेय है–ऐसी मान्यता का फल चारों गतियों मे घूमकर निगोद जाना क्यो बताया है।

उ०–(१) हिसादिरुप पापाश्रव और अहिमादिरुप पुण्याश्रव दोनो हेय है और दोनो ही वन्ध के कारण है। (२) परन्तु ऐसा न मानने के कारण इस खोटी मान्यता का फल चारो गतियो मे घूम-कर निगोद जाना वताया हैं।

प्र० ४६–"रागादि प्रगट ये दु.ख देन, तिनही को सेवत गिनत चैन।" छहढाला की दूसरीं ढाल मे इस दोहे मे आश्रवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

प्र०–आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्ट ज्ञान कराना है। मोह, राग-द्वेष आदि भाव आश्रवभाव है। ये प्रत्यक्ष दु ख के देने वाले है और वन्ध के ही कारण है इस वात को भूलकर आश्रव तत्त्व मे जो हिंसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय मानना और अहिसा-दिरुप पुण्याश्रव है उन्हे उपादेय मानना-यह आश्रवतत्त्व सम्वन्धी जीव की भूल है। (२) मोह, राग-द्वेप आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है। ये प्रत्यक्ष दु ख के देने वाले है और वन्ध के ही कारण है। इस वात को भूलकर आश्रव तत्त्व मे जो हिसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय मानना और अहिसादिरूप पुण्याश्रव हैं उन्हे उपादेय मानना-ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन

है। (३) मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रभाव है। ये प्रत्यक्ष दुःख के देने वाले है और बन्ध के ही कारण है। इस बात को भूलकर आश्रवतत्त्व मे जो हिसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय मानना और अहिसादिरूप पुण्याश्रव है उन्हे उपादेय जानना-ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। (४) मोह,राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है। ये प्रत्यक्ष दु ख के देने वाले है और बन्ध के ही कारण है। इस बात को भूलकर आश्रवतत्त्व मे जो हिसादि पापाश्रव है उन्हे हेय मानना और अहिसादिरुप पुण्याश्रव है उन्हे उपादेवरुप आचरण-ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत मिथ्याचारित्र है। (५) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से आश्रवतत्त्व मे जो हिसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय मानना और अहिसादिरुप पुण्याश्रव है उन्हे उपादेय मानने रुप अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से आश्रव तत्त्व मे जो हिसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय मानना और अहिसादि पुण्याश्रव है उन्हे उपादेय जानने रुप अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेपरुप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से आश्रवतत्त्व मे जो हिसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय मानना और अहिसादिरुप पुण्याश्रव है उन्हे उपादेय मानने रुप अनादिकाल का आचरण विशेप दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र० ४७–मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है। ये प्रत्यक्ष दुःख के देने वाले है और बन्ध के ही कारण है। इस बात को भूलकर आश्रवतत्व वो हिसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय

माननेरुप और अहिंसादिरुप पुण्याश्रव हैं उन्हे उपादेय माननेरुप आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे ? इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उ०—चेतन को है उपयोगरुप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल-नभ धर्म-अधर्मकाल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। (३) आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है। (९) लोक प्रमाण असख्यात कालद्रव्य हे। इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्वन्ध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर शुचि पवित्र चैतन्य स्वभावी निज आत्मा का आश्रय ले, तो आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का आभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे। यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे वताया है।

प्र० ४८—मोह, राग-द्वेष आदि शुभाशुभ विकारीभाव आश्रवभाव है। ये प्रत्यक्ष दु ख के देने वाले है और बन्ध के ही कारण है। इस बात को भूलकर आश्रवतत्व मे जो हिंसादिरुप पापाश्रव है उन्हे हेय मानने को और अहिंसादिरुप पुण्याश्रव है उन्हे उपादेय मानने को आश्रवतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शन बताया।

परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते है वह भी हिसादि पापाश्रव को हेय और अहिसादि पुण्याश्रव को उपादेय कहते सुने देखे जाते हैं। क्या ज्ञानियों को भी आश्रवतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते है ?

उ०-ज्ञानियो को बिल्कुल नही होते है। (१) क्योकि जिन-जिनवर और जिन वरवृषभो ने हिसादिरुप पापाश्रव हेय है ओर अहिसादिरूप पुण्याश्रव उपादेय है-ऐसी खोटी मान्यता को आश्रव-तत्त्व सम्बन्धी जीव को भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते हैं वे आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते हैं। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) हिसादिरुप पापाश्रव हेय है ओर अहिसादि-रुप पुण्याश्रव उपादेय है ज्ञानियो के ऐसे कथन को आगम मे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहा है।

प्र० ४६-हिसा का भाव हेय है और अहिसा का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५०-झूठ बोलने का भाव हेय है और सत्य बोलने का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५२-चोरी करने का भाव हेय है और चोरी करने का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५२–ब्रह्मचर्य न रखने का भाव हेय है ओर ब्रह्मचर्य रखने का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५३–परिग्रह रखने का भाव हेय है और परिग्रह न रखने का भाब उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५४–अनशन न रखने का भाव हेय है और अनशन रखने का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५५–सामायिक न करने का भाव हेय है और सामायिक करने का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ५६–मुनियो को आहारदान न देने का का भाव हेय है और मुनियो को आहारदान देने का भाव उपादेय है। इस वाक्य पर आश्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर ४१ से ४८ तक के अनुसार उत्तर दो।

उ०—(१) सयोग-वियोग व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है और तत्वदृष्टि से पुण्य पाप दोनो अहितकर ही है। (२) परन्तु ऐसा न मानने के कारण पाप के बन्ध को बुरा जानने रुप और पुण्य के बन्ध को भला जाननेरुप खोटी मान्यता का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० ८८—"शुभ-अशुभ बध के फल मझार, रति अरति करें निज पद विसार।" छहढाला की दूसरी ढाल के इस दोहे मे बंधतत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है?

उ०—बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्ट ज्ञान कराना है। (१) अघाति कर्म के फल के अनुसार पदार्थों की सयोग-वियोग-रुप अवस्थायें होती है। ये सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। तत्वदृष्टि से पुण्य-पाप दोनो अहितकर ही है। इस बात को भूलकर बन्धतत्व मे जो अशुभ भावो से नरकादिरुप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो से देवादिरुप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना यह बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूल है। (२) अघाति कर्म के फल अनुसार पदार्थो की सयोग-वियोगरुप अवस्थाये होती है। वे सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। तत्व दृष्टि से पुण्य-पाप दोनो अहितकर है। इस बात को भूलकर बन्धतत्व मे अशुभभावो से नरकादिरुप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना—ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) अघाति कर्म के फल अनुसार पदार्थो की सयोग-वियोगरुप अवस्थाऐ होती है वे सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। तत्त्व दृष्टि से पुण्य-पाप दोनो अहितकर ही है। इस बात को भूलकर बन्धतत्त्व मे जो अशुभभावो से नरकादिरूप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो देवादिरूप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। (४) अघातिकर्म के फल अनुसार पदार्थो की सयो-वियोगरूप अवस्स्थाये होती है वे सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। तत्वदृष्टि से पुण्य-पाप दोनो अहितकर ही है।

इस बात को भूलकर बन्धतत्व मे जो अशुभभावो से नरकादिरुप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो से देवादिरुप पुण्य हो उसे भला जानना—ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत मिथ्याचारित्र है। (५) वर्तमान विशेषरुप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से बन्धतत्व मे जो अशुभभावो से नरकादिरुप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो से देवादिरुप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना—इससे अनादिकाल का श्रद्धान विशेषदृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेपरुप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से बन्धतत्व मे जो अशुभभावो से नरकादिरुप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभभावो से देवादिरुप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना—इससे अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेप रुप से मनुष्य भव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से बन्धतत्त्व मे जो अशुभ भावो से नरकादिरुप पाप का बन्ध हो उसे बुरा जानना और शुभ भावो से देवादिरूप पुण्य का बन्ध हो उसे भला जानना—इससे अनादिकाल का आचरण विशेप दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र० ६७–अघातिकर्म के फल अनुसार पदार्थों का संयोग-वियोगरुप अवस्थायें होती हैं। वे सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। तत्वदृष्टि से पुण्य पाप दोनो अहितकर ही है। इस बात को भूलकर बधतत्व मे जो अशुभभावो से नरकादिरुप पाप का बध हो उसे बुरा जाननेरुप और शुभाभावो से देवादिरुप पुण्य का बध हो उसे भला जाननेरुप बंधतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर कर्म से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे ? इसका उपाय छहढ़ाला की दूसरी ढ़ाल

प्र० ७२-कुशील के भाव से नरक का बन्ध बुरा है और ब्रह्मचर्य के भाव से देव का बंध भला है। इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७३-परिगृह देखने के भाव से नीचगति का बध बुरा है और परिगृह न रखने के भाव से ऊंच गति का बंध भला है। इस वाक्य पर बंधतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७४-जुआ खेलने के भाव से नरक का बन्ध बुरा है और जुंवा न खेलने के भाव से देव का बन्ध भला है। इस वाक्य मे बंध-तत्व सम्वन्धी जीव का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७५-मास खाने आदि के भाव से नरक का बन्ध बुरा है और मास न खाने आदि के भाव से देव का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७६-परपदार्थों को अपना मानने से निगोद का बन्ध बुरा है और परपदार्थों को अपना न मानने से स्वर्ग का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७७-कंजूसी के भाव से नरक का बन्ध बुरा है और उदारता के भाव से देव का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७८-तीर्थयात्रा न करने के भाव से नीच गति का बन्ध बुरा है और तीर्थयात्रा करने के भाव से उच्च गति का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ७९-व्यापार मे हिंसा होने के भाव से नरक बन्ध बुरा है और व्यापार मे अहिंसा होने के भाव से देव का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ८०-जीवो को दुखी करने से नरक का बन्ध बुरा है और जीवो को सुखी करने से देव का बन्ध अच्छा है। इस वाक्य पर बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०-प्रश्नोत्तर ६१ से ६८ तक के अनुसार उत्तर दो।

संवरतत्व सबन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० ८१-संवरतत्व के विषय मे अज्ञानी क्या मानता है ?

उ०-निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ मे न आवे-ऐसा मानता है।

प्र० ८२—निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ मे न आवे-ऐसी मान्यता को छहढ़ाला की प्रथम ढ़ाल मे क्या बताया है ?

उ०-"मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।" अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ मे न आवे-ऐसी खोटी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है।

प्र० ८७—आत्मा के आश्रय से प्रगट निश्चय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र ही जीव को हितकारी है। स्वरुप मे स्थिरता द्वारा राग का जितना अभाव वह सुख का कारण है। इस बात को भूलकर निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ मे न आवे-ऐसी मान्यतारुप, संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव को भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे। इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उ०—"चेतन को है उपयोग रुप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल-नभ-अधर्म-काल, इनतै न्यारो है जीव चाल ॥" (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ (२) मेरा कार्य-ज्ञाता-दृष्टा है। (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) धर्म-अधर्म-आकाश ऐकेक द्रव्य है। (९) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं। इन सब द्रव्य-से मुझनिज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज आत्मा का आश्रय ले, तो सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से ही पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे। यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० ८८—निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक और समझ मे न आवे—ऐसी मान्यता को आपने सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप

अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया। परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते हैं वह भी निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कठिनादि है ऐसा कहते सुने-देखे जाते हैं। क्या ज्ञानियो को भी सवरतत्त्व सम्वन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं।

उ०-ज्ञानियो को विल्कुल नही होते है। (१) क्योकि जिन-जिनवर और जिनवरवृषभो ने निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कष्ट-दायक और समझ मे न आवे—ऐसी मान्यता को सवरतत्त्व सम्वन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहित मिथ्यादर्शनादि वताया है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो वनते हैं वे सवरतत्त्व सम्वन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही वनते है। (३) ज्ञानियो को हेय-जेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) निश्चय सम्यग्दर्शनादि को कठिन है ज्ञानियो के ऐसे कथन को आगम मे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहा है।

प्र० ८९—निश्चय वचन गुप्ति तो कष्टदायक समझ मे न आवे और मौन धारण करने के भाव वचनगुप्ति है। इस वाक्य पर सवर-तत्त्व सम्वन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९०—निश्चयकायगुप्ति तो कष्टदायक और समझ मे न आवे और गमनादि न करना कायगुप्ति है। इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्वन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०-प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९१—निश्चय ईर्या समिति तो कष्टदायक समझ मे न आवे और चार हाथ जमीन देखकर चलने का भाव ईर्या समिति है। इस

वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए?

उ०—प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९२—निश्चय एषणा समिति कष्टदायक, समझ में न आवे और निर्दोष आहार लेना, एषणा समिति है। इस वाक्य पर संवर-तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०—प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९३—निश्चय उत्तमक्षमा कष्टदायक और समझ में न आवे और क्रोध न करना उत्तमक्षमा है। इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०—प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९४—निश्चय गुणव्रत कष्टदायक समझ मे न आवे और गुण-व्रत का शुभभाव ही सच्चा गुणव्रत है। इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०—प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९५—निश्चय क्षुधा परिषहजय कष्टदायक, समझ में न आवे और रोटी न खाना ही क्षुधा परिषहजय है। इस वाक्य पर संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०—प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९६—देशचारित्र श्रावकपना कष्टदायक, समझ मे न आवे और १२ अणुव्रतादि श्रावकपना है। इस वाक्य पर संवरतत्त्व

सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९७–सकलचारित्र मुनिपना कष्टदायक, समझ में न आवे और २८ मूलगुणादि मुनिपना है। इस वाक्य पर संवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए।

उ०–प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९८–निश्चय सम्यग्दर्शन कष्टदायक, समझ में न आवे और देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। इस वाक्य पर संवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०–प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ९९–सकलचारित्र निश्चय उपवास कष्टदायक, समझ में न आवे और रोटी छोड़ना ही उपवास है। इस वाक्य पर संवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०–प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १००–निश्चय सामायिक कष्टदायक, समझ में न आवे और णोकरादि का जपना ही सामायिक है। इस वाक्य पर संवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०–प्रश्नोत्तर ८१ से ८८ तक के अनुसार उत्तर दो।

निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० १०१–निर्जरातत्व के विषय में अज्ञानी क्या मानता है?

उ०–अनशनादि तप से निर्जरा मानता है।

प्र० १०२–अनशनादि तप से निर्जरा मानने रुप मान्यता को छह ढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है ?

उ०–"मोह महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।" अर्थात अनशनादि तप से निर्जरा माननेरुप मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है।

प्र० १०३–अनशनादि तप से निर्ज़रा मानने रुप मान्यता को मोह रुपी महामदिरापान क्यो बताया है ?

उ०–शुभाशुभ इच्छाओ का उत्पन्न न होना, तप है। इस तप से निर्जरा होती है। इस बात को भूलकर अनशनादि तप से माननेरूप मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है।

प्र० १०४–अनशनादि तप से निर्जरा मानने रुप मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल में क्या बताया है ?

उ०–ऐसी खोटी मान्यता का फल चारो गतियो में घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० १०५–अनशादि तप से निर्जरा मानने रुप मान्यता का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना क्यो बताया है ?

उ०–आत्मस्वरूप मे, सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओ का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। परन्तु अज्ञानी अनशनादि तप से निर्जरा मानता है, इसलिए अनशनादि तप से निर्जरा माननेरूप मान्यता को चारो गतियों मे घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० १०६—"रोके न चाह निजशक्ति खोय।" इस दोहे के छन्द मे निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०—निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्ट ज्ञान कराना है। (१) आत्मस्वरूप मे सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओ का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनशनादि तप से निर्जरा मानना—यह निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है। (२) आत्मस्वरूप मे सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओ का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनशनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादि काल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) आत्मस्वरूप मे सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओ का अभाव होता है वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनशनादि तप से निर्जरा मानना - ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। (४) आत्मस्वरूप मे सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओ का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनशनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत मिथ्याचारित्र है। (५) वर्तमान मे विशेपरूप से मनुष्यभव व जैन धर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से अनशनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष विशेप दृढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६) वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव जैनधर्मी होने पर भी कुगुरू-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से अनशनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेष दृढ होने से ऐसे ज्ञान को गृहीत मिथ्या ज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेष रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरू-कुदेव-कुधर्म

का उपदेश मानने से अनशनादि तप से निर्जरा मानना—ऐसा अनादि-काल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्या-चारित्र बताया है।

प्र० १०७—आत्मस्वरुप में सम्यक प्रकार से स्थिरता अनुसार शुभाशुभ इच्छाओ का अभाव होता है। वह ही सच्ची निर्जरा है और वह ही सम्यक तप है। इस बात को भूलकर अनशनादि तप से निर्जरा मानने की मान्यता रुप निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्या दर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे? इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल में क्या बताया है?

उ०—"चेतन को है उपयोगरूप, विनमूरत चिनमूरत अनूप। पुद्-गल नभ धर्म-अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल॥ (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञस्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य हे। (७) अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य हे। (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है। (९) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हें। इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सवम्न्ध नही है, क्योकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज आत्मा का आश्रय ले, तो निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे। यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० १०८–अनशनादि तप से निर्जरा मानने रूप मान्यता को आपने निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया। परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते है वह भी अनशनादि तप से निर्जरा होती है ऐसा कहते–सुने–देखे जाते हैं। क्या ज्ञानियो को भी निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते हैं ?

उ०–ज्ञानियो को विल्कुल नही होते है। (१) क्योकि जिन, जिनवर और जिनवरवृषभो ने अनशनादि तप से निर्जरा माननेरूप मान्यता को निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते है वे निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते है। (३) ज्ञानियों को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है।(४) अनशनादि तप से निर्जरा होती हैं – ज्ञानी के ऐसे कथन को आगम मे उपचरित सदभूत व्यवहारनय कहा है।

प्र० १०९–अवमोदर्य ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये।

उ०–प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११०–पाच इन्द्रियो के विषयों का रूक जाना ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १११–अनाज न खाना ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०–प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११२–प्रायश्चितादि ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरा–तत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०–प्रश्नोतर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११३–शरीर का सुखाना ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०–प्रश्नोतर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११४–पानी न पीना ही तृषा परिषहजय रूप निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०–प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११५–धूप मे खडे रहना ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०–प्रश्नोतर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११६–सर्दी का सहना ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरा-तत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०–प्रश्नोतर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११८–महीनों का उपवास ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिए ?

उ०–प्रश्नोतर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० ११९–शुद्ध भोजन खाने से ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरातत्व सम्बन्धी भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १२०-प्रोषधोपवास ही निर्जरा है। इस वाक्य पर निर्जरा-तत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये?

उ०-प्रश्नोत्तर १०१ से १०८ तक के अनुसार उत्तर दो।

मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण

प्र० १२१-मोक्षतत्व के सम्बन्ध मे अज्ञानी क्या मानता है?

उ०- मोक्ष मे पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे भी सुख मानता है।

प्र० १२२-मोक्ष मे पूर्ण निराकुल सुख है ऐसा न मानकर शरीर के मौज-शौक मे भी निराकुल सुख रुप मान्यता को छहढ़ाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है?

उ०-'मोह महामद पियो अनादि भूल आपको भरमत वादि।' अर्थात शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षवत् सुख है ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान बताया है।

प्र० १२३-शरीर के मौज-शौक मे ही मोक्ष सुख है। ऐसी मान्यता को मोहरूपी महामदिरापान क्यो बताया है?

उ०-आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है। उसमे आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूण स्वाधीन निराकुल सुख है (२) इसको भूलकर शरीर के मौज-शौक मे भी निराकुल सुख मानने के कारण मोहरूपी मदिरापान बताया है।

प्र० १२४-शरीर के मौज-शौक से भी मोक्ष सुख है ऐसी मान्यता का फल छहढाला की प्रथम ढाल मे क्या बताया है?

उ०–ऐसी खोटी मान्यता का फल चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० १२५–शरीर के मौज-शौक में भी मोक्ष सुख रुप मान्यता का फल चारों गतियों मे घूमकर निगोद क्यो बताया है ?

उ०–मोक्ष मे आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। परन्तु शरीर के मौज-शौक मे मोक्ष से अधिक सुख है ऐसा मानने का फल चारो गतियो मे घूमकर निगोद जाना बताया है।

प्र० १२६–'शिवरुप निराकुलता न जोय।' छहढ़ाला की दूसरी ढाल के इस दोहे मे मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूल बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उ०–मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्ट ज्ञान कराना है। (१) आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है उसमे आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षसुख मानना मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है। (२) आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है। उसमे आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षसुख मानना—ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (३) आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा का प्रगट होना मोक्षतत्व है। उसमे आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षसुख जानना—ऐसा अनादिकाल का ज्ञान अगृहीत मिथ्याज्ञान है। (४) आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा का प्रगट होना मोक्षतत्त्व है। उसमे आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक से भी मोक्षसुख मानना—ऐसा अनादिकाल का आचरण अगृहीत

मिथ्याचरित्र है (५) वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरू-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक से मोक्षसुख है—ऐसा अनादिकाल का श्रद्धान विशेष दढ होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है। (६)वर्तमान मे विशेष-रूप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरू-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक से भी मोक्ष- सुख है- ऐसा अनादिकाल का ज्ञान विशेप दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। (७) वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व जैनधर्मी होने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से शरीर के मौज-शौक मे भी मोक्षसुख है - ऐसा अनादिकाल का आचरण विशेष दृढ होने से ऐसे आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र० १२७-मोक्ष मे आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है। इस बात को भूलकर शरीर के मौज-शौक मे भी मोक्ष सुख मानने की मान्यता रुप मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे। इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढ़ाल मे क्या बताया है ?

उ०-"चेतन को है उपयोगरूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥" (१) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। आँख-नाक-कान औदारिकादि शरीरोरूप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है। (७) अनन्ता-नन्त पुद्गल द्रव्य है। (८) धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है। (९) लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है। इन सब द्रव्यो से मुझ निज आत्मा का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता

का सम्बन्ध नही है, क्योंकि इन सब द्रव्यो का और मुझ निज आत्मा का द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव पृथक-पृथक है। ऐसा जानकर ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज आत्मा का आश्रय ले, तो मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत-गृहीत मिथ्या दर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति होवे। यह उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० १२८—मोक्ष में आकुलता का सर्वथा अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है इस बात को भूलकर शरीर के मौज शौक मे भी मोक्ष सुख रुप मान्यता को आपने मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत—गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया परन्तु जो अपने को ज्ञानी मानते है वे भी शरीर के मौज—शौक मे सुख है ऐसा कहते-सुने—देखे जाते है। क्या ज्ञानियो को भी मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत—गृहीत मिथ्यादर्शनादि होते है ?

उ०—ज्ञानियो को बिलकुल नहीं होते है। (१) क्योकि जिन, जिनवर और जिनवर वृषभो ने शरीर के मौज-शौक मे ही अधिक सुख है ऐसी मान्यता को मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीवतत्त्व की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि बताया है, परन्तु ऐसे कथन को नही कहा है। (२) ज्ञानी जो बनते है वे निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके ही बनते है। (३) ज्ञानियो को हेय-ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान वर्तता है। (४) शरीर के मौज-शौक मे सुख है-ज्ञानी के ऐसे कथन को आगम मे अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय से कहा है।

प्र० १२६—बाह्य पदार्थों के मिलाने मे ही सुख है ? इस वाक्य पर मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १२१ से १२८ तक के अनुसार उत्तर दो।

प्र० १३०—रोग क्लेशादि दु:ख दूर होने को सुख मानता है। इस वाक्य पर मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल का स्पष्टीकरण कीजिये ?

उ०—प्रश्नोत्तर १२१ से १२८ तक के अनुसार उत्तर दो।

—००—

तीसरा अधिकार

प्र० १—संसार और मोक्ष किसे कहते है ?

उ०—(१) आत्मा ज्ञाता-दृष्टा के उपयोग को जब परपदार्थ की ओर लक्ष्य रखकर परभाव मे यह 'मै' ऐसा द्रढ कर लेता है तब यही ससार कहलाता है। (२) और जब स्व की ओर लक्ष्य करके उपयोग को स्व मे यह 'मै' ऐसा द्रढ कर लेता है तब यही मोक्ष कहलाता है।

प्र० २—संसार परिभ्रमण का कारण क्या है ?

उ०—ऐसे मिथ्याद्रग-ज्ञान-चर्णवश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मर्ण।
ताते इनको तजिये सुजान, सुन तिन सक्षेप कहूँ बखान ॥१॥
अर्थ—यह जीव मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचरित्र के वश होकर—इस प्रकार जन्म-मरण के दु:खो को भोगता हुआ चारो गतियो मे भटकता फिरता है। इसलिये इन तीनो को भली भाँति जानकर छोड देना चाहिये। इन तीनो का सक्षेप से वर्णन करता हूँ, उसे सुनो !

प्र० ३—जीव दु:खी किससे होता है ?

उ०–शुभाशुभ विकार तथा पर के साथ एकत्व की श्रद्धा, ज्ञान और मिथ्या आचरण से ही जीव दु खी होता है, क्योकि कोई सयोग सुख-दु ख का कारण नही हो सकता है ।

प्र० ४–दुःखो का मूल कारण मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ ४६ में किसे बताया है।

उ०–वहा सब दु खो का मूलकारण मिथ्यादर्शन, अज्ञान और असयम है। (१) जो दर्शनमोह के उदय से हुआ अतत्त्व श्रद्धान मिथ्यादर्शन है, उससे वस्तु स्वरुप की यथार्थ प्रतीति नही हो सकती, अन्यथा प्रतीति होती है। (२) तथा उस मिथ्यादर्शन ही के निमित्त से क्षयोपशमरुप ज्ञान है वह अज्ञान हो रहा है। उससे यथार्थ वस्तु स्वरुप का जानना नही होता अन्यथा, जानना होता है। (३) तथा चारित्र मोह के उदय से हुआ कषायभाव उसका नाम असयम है, उससे जैसा वस्तु स्वरुप है वैसा नही प्रवर्तता, अन्यथा प्रवृति होती है। इस प्रकार ये मिथ्यादर्शनादिक है वे ही सर्व दु खो का मूल कारण है।

प्र० ५–वस्तु स्वरुप कैसा है ?

उ०–अनादिनिधन वस्तुये भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नही है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नही होती। उन्हे परिणमित कराना चाहे वह कोई उपाय नही है, वह तो मिथ्यादर्शन ही है।

प्र० ६–तो सच्चा उपाय क्या है ?

उ०–जैसा पदार्थो का स्वरुप है वैसा श्रद्धान हो जाये तो सर्व दु ख दूर हो जाये। .. भ्रमजनित दु ख का उपाय भ्रम दूर करना ही है। सो भ्रम दूर होने से सम्यक् श्रद्धान होता है वही सत्य उपाय जानना। (मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ ५२)

प्र० ७–मिथ्यादर्शनादि छहढाला की दूसरी ढाल में कितने प्रकार के बतलाये है ?

उ०–अगृहीत-गृहीत के भेद से मिथ्यादर्शनादि दो-दो प्रकार के बनलाये है।

प्र० ८–छहढाला की दूसरी ढाल मे अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरित्र और गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरित्र का स्वरुप क्या-क्या बताया है ?

उ०–"जीवादि प्रयोजनभूत तत्व, सरधै तिन माहि विपर्ययत्व ।।" जीवादि सात तत्व प्रयोजनभूत किस प्रकार है ? (१) जिसमे मेरा ज्ञान दर्शन हो वह जीवतत्व है, वह जीवतत्व एकमात्र आश्रय करने योग्य प्रयोजनभूत तत्व है। (२) जिनमे मेरा ज्ञान–दर्शन नही है, वे अजीव तत्व है, मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य, अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य, धर्म–अधर्म–आकाश एकेक द्रव्य, लोकप्रमाण असख्यात काल द्रव्य है, ये सब द्रव्य जानने योग्य प्रयो–जन भूत तत्व है। (३) शुभाशुभ विकारी भावो का उत्पन्न होना आस्रव तत्व है, आस्रव तत्व छोडने योग्य प्रयोजनभूत तत्व है । (४) शुभाशुभ विकारी भावो मे अटकना वन्धतत्व है, वन्धतत्व छोडने योग्य प्रयोजन भूत तत्व है। (५) शुद्धि का प्रगट होना सवरतत्व है सवरतत्व छोडने योग्य प्रयोजन भूत तत्व है।(६)शुद्धि की वृद्धि होना निर्जरातत्व है, निर्जरा तत्व एकदेश प्रगट करने योग्य प्रयोजनभूत तत्व है।(७)सम्पूर्ण शुद्धि का प्रगट होना मोक्ष तत्व है, मोक्ष तत्व पूर्ण प्रगट करने योग्य प्रयोजनभूत तत्व है। इस प्रकार प्रयोजनभूत सात तत्वो का अनादिकाल से उल्टा श्रद्धान अगृहीत मिथ्यादर्शन है ।।१।। इस प्रकार प्रयोजनभूत सात तत्वो का अनादिकाल से उल्टा ज्ञान अगृहीत मिथ्या ज्ञान है ।।२।। इस प्रकार प्रयोजनभूत सात-तत्वो का अनादिकाल से उल्टा आचरण अगृहीत मिथ्याचारित्र है ।।३।।

" इस प्रकार प्रयोजनभूत सात तत्वो का दूसरे के कहने से उल्टा श्रद्धान गृहीत मिथ्यादर्शन है ॥४॥ " इस प्रयोजनभूत सात-तत्वो का दूसरे के कहने से उल्टा ज्ञान गृहीत मिथ्याज्ञान है ॥५॥ इस प्रकार प्रयोजनभूत सात-तत्वो का दूसरे के कहने से उल्टा आचरण गृहीत मिथ्याचारित्र है ॥६॥

प्र० ९–जीवतत्त्व का स्वरुप अस्ति–नास्ति से छहढ़ाला की दूसरी ढ़ाल मे क्या बताया है ?

उ०–"चेतन को है उपयोग रुप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मै ज्ञान–दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हू । (२) मेरा कार्य ज्ञाता–दृष्टा है। (३) बिनमूरत अर्थात् आख–नाक–कान औदारिक आदि शरीरोरुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चिन्मृरत अर्थात चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) अनूप अर्थात् सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है–इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म–अधर्म–आकाश एकेक द्रव्य है–इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है–इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है।–ऐसा जीवतत्व का स्वरुप अस्ति–नास्ति से छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० १०–"ताको न जान, विपरीत मान करि, करें देह में निज पिछान" इस दोहे के अर्थ को स्पष्ट समझाइये ?

उ०–(१) मैं ज्ञान–दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व हू–इस बात को न जानकर कैलाशचन्द्र नाम रुप अनन्त पुद्गल द्रव्यो मे अपनापना

मानता है। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है-इस बात को न जान-कर उठना, चलना, बोलना आदि शरीर के कार्यो मे अपनापना मानता है। (३) बिनमूरत अर्थात आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरुप मेरी मूर्ति नही है-इस बात को न जानकर आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरुप अपनी मूर्ति मानता है। (४) चिन्मूरत अर्थात चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है-इस बात को न जानकर जड रुपी एक प्रदेशी पुद्गल के अनन्त आकारो मे अपनापना मानता है। (५) अनूप अर्थात् सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है-इस बात को न जान-कर रुपया-पैसा, सोना-चादी आदि मे अनुपमपना मानता है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव है, उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न है-इस बात को न जानकर मेरा बाप, मेरी मा, मेरा पति, मेरी धर्मपत्नी, मेरा गुरु, मेरा देव आदि पर जीवो मे अपनापना मानता है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल है उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न है-इस बात को न जानकर सोने का हार, मोटर, मकान दुकान आदि पुद्गल स्कन्धो मे अपनापना मानता है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे असख्यात प्रदेशी एक धर्मद्रव्य है, उसकी चाल मुझ जीव से भिन्न है। परन्तु जब मै अपनी क्रियावती शक्ति से गमनरुप परि-णमता हू तब धर्मद्रव्य निमित्त होता है-इस बात को न जानकर धर्मद्रव्य मुझे चलाता है ऐसा मानता है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे असख्यात प्रदेशी एक अधर्मद्रव्य है, उसकी चाल मुझ जीव से भिन्न है। परन्तु जब मैं अपनी क्रियावती शक्ति से चलकर स्थिर रुप परिणमता हू तबअ धर्मद्रव्य निमित्त होता है-इस बात को न जानकर अधर्मद्रव्य मुझे ठहराता है ऐसा मानता है। (१०) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त प्रदेशी एक आकाशद्रव्य है, उसकी चाल मुझ जीव से भिन्न है। मुझ आत्मा अनादिकाल से अपने असख्यात प्रदेशो मे रहता है, उसमे आकाश

द्रव्य निमित्त है-इस बात को न जानकर आकाश द्रव्य मुझे जगह देता है ऐसा मानता है। (११) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे एक प्रदेशी लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य हैं, उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न हैं। परन्तु मुझ आत्मा अनादिकाल से स्वय स्वत अपने परिणमन स्वभाव के कारण परिणमता है, उसमे काल द्रव्य निमित्त होता है-इस बात को न जानकर कालद्रव्य मुझे परिणमाता है ऐसा मानता है।

प्र० ११–जीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या-क्या बताया है ?

उ०–मैं सुखी दु खी मैं रक राव, मेरे धन-गृह गोधन प्रभाव। मेरे सुत तिय मैं सबलदीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥४॥ (१) शरीर की अनुकूलता से मैं सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मैं दु खी, (२) गरीब होने से मै दु खी और राजा होने से मैं सुखी, (३) धन-घर-गाय-भैंस आदि होने से मैं सुखी और धन-घर-गाय-भैंस आदि न होने से मैं दु खी, (४) राज्य-गाव-देश पर मेरा प्रभाव होने से मैं सुखी और राज्य-गाव-देश पर मेरा प्रभाव न होने से मै दु खी, (५) लडका-स्त्री-भाई-बहिन होने से मै सुखी और लडका-स्त्री-भाई-बहिन न होने से मै दु खी, (६) ताकतवर होने से मै सुखी और कमजोर होने से मैं दु खी, (७) कुरूप होने से मै दु खी और सुन्दर होने से मैं सुखी, (८) मूरख होने से मै दु खी और प्रवीन होने से मै सुखी, (९) अन-शनादि करने से मै सुखी अनशनादि न करने से मैं दु खी, (१०) प्रव-चनकार होने से मै सुखी और प्रवचनकार न होने से मैं दु खी, (११) सिद्धचक्र का पाठ करने से मैं सुखी और सिद्धचक्र का पाठ न करने से मैं दु खी, (१२) यात्रा करने से मे सुखी और यात्रा न करने से मै दु खी, (१३) व्यापारादि चलने से मै सुखी और व्यापा-रादि न चलने से मै दु खी, (१४) लाटरी आने से मैं सुखी और

लाटरी न आने से मै दु खी, (१५) शरीर मे रोगादि ना होने से मैं सुखी और शरीर मे रोगादि होने से मै दु खी, इसी प्रकार अनेक प्रकार की मिथ्या मान्यताओ को— जीवतत्त्व सम्वन्धी जीव की भूल वताया है ॥१॥ ···अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन वतलाया है॥२॥ ··अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान वता या है ॥३॥ · अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र वताया है ॥४॥ · वर्तमान मे विशेप रुप से मनुष्यभव व दिगम्वर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओ को गृहीत मिथ्यादर्शन वताया है ॥५॥ ·· वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्वर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओ को गृहीत मिथ्याज्ञान वताया है ॥६॥ ·· वर्तमान मे विशेपरुप से मनुष्यभव व दिगम्वर धर्म होने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओ को गृहीत मिथ्याचारित्र वताया है ।

प्र० १२—शरीर की अनुकूलता से मै सुखी और शरीर की प्रतिकूलता से मै दु खी आदि ऐसी जीवतत्व सम्वन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत—गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे—इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या वताया है ?

उ०—चेतन को है उपयोग रुप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल। (१) मै ज्ञान—दर्शन उपयोगमयी जीव तत्त्व हू। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। (३) आख-कान—नाक औदारिक आदि शरीरो रूप मेरी मूर्ति नही है। चेतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है।

(५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आतमा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है–इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है–इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म–अधर्म–आकाश एकेक द्रव्य है–इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है–इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्व का स्वरुप जानते मानते ही तत्काल जीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है। यह एकमात्र जीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० १३–अजीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या-क्या बताया है ?

उ०–तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान। (१) शरीर की उत्पत्ति (सयोग) होने से मै उत्पन्न हुआ और शरीर का नाश (वियोग) होने से मैं मर जाऊगा। (२) हाथ आदि से मैने स्पर्श किया। (३) जीभ से स्वाद लिया। (४) नासिका से सूघा। (५) नेत्र से देखा। (६) कानो से सुना। (७) मन से मैंने जाना। (८) मैं बोलता हूँ। (९) मै गमन करता हूँ और मैं ठहरता हूँ। (१०) मैं इस वस्तु का ग्रहण करता हूँ और इस वस्तु का मै त्याग करता हूँ। (११) मैं सांसारिक भोग भोगता हूँ। (१२) मुझे शीत क्षुधा–तृषा रोग हो जाते है और कभी मुझे शीत-क्षुधा-तृषा रोग नही सताते है। (१३) मै स्थूल, मै कृश, मै बालक, मैं जवान, मै वृद्ध हूँ। (१४) मेरे हाथ-पैर की बीस ऊगलिया है। (१५) मेरी ऊगली कट

गई है। (१६) मेरा माथा, मेरा कान मेरे ३२ दांत हैं। (१७) मैं मनुष्य, मैं त्रियंच, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य हूं। (१८) ये मेरे मां-बाप हैं। ये मेरी धर्मपत्नी और बच्चे हैं। (२०) ये मेरे मित्र हैं ये मेरे दुश्मन है। इत्यादि जो अजीव की अवस्थाये है उन्हे अपनी मानने रूप मिथ्या मान्यताओं को अजीव तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥" अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्या दर्शन बताया है ॥२॥ " अनादि-काल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्या ज्ञान बताया है ॥३॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ वर्तमान मे विशेष रुप से मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओं को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ वर्तमान मे विशेपरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओ को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥६॥ वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुदेव कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी मान्यताओ को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र० १४–शरीर की उत्पत्ति (संयोग) होने से मै उत्पन्न हुआ और शरीर का नाश (वियोग) होने से मै मर जाऊंगा–आदि ऐसी अजीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि को प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे–इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उ०–चेतन को है उपयोगरुप, बिनमूरत, चिन्मूरत अ पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२)मेरा कार्य ज्ञाता दृष्टा है

नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोकप्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—इनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरुप जानते-मानते ही तत्काल अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है। यह एक मात्र अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० १५—आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या-क्या बताया है?

उ०—रागादि प्रगट ये दु ख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन ॥ (१) पापास्रव और पुण्यास्रव दोनो हेय है। इस बात को न जानकर (१)हिसा का भाव हेय है और अहिसा का भाव उपादेय है।(२) झूठ का भाव हेय है और सत्य का भाव उपादेय है। (३) चोरी का भाव हेय है और अचौर्य का भाव उपादेय है। (४) कुशील का भाव हेय है और ब्रह्मचर्य का भाव उपादेय है। (५) परिग्रह रखने का भाव हेय है और परिग्रह न रखने का भाव उपादेय है। (६) दूसरे को मारने का भाव हेय है और बचाने का भाव उपादेय है। (७) दूसरे को सुख देने का भाव उपादेय है और दूसरे को दु ख देने का भाव हेय है।

(८) उपवास न करने का भाव हेय है और उपवास करने का भाव उपादेय है। (९) कुगुरु की भक्ति का भाव हेय है और गुरु की भक्ति का भाव उपादेय है। (१०) कुदेव के दर्शन का भाव हेय है और देव के दर्शन का भाव उपादेय है (११) १२ अणुव्रतादि पालने का भाव हेय है और १२ अणुव्रतादि पालने का भाव उपादेय है। (१२) २८ मूलगुण पालने का भाव उपादेय है और २८ मूलगुण न पालने का भाव हेय है।" इत्यादि मान्यताओ को आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥ 'अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥२॥ " अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ ' वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है। वर्तमान मे विशेपरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥७॥

प्र० १६–आस्रव तत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत–गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे–इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढ़ाल मे क्या बताया है ?

उ०–चेतन को है उपयोगरुप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल

नभ धर्म-अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ।। (१) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ (२) मेरा कार्य ज्ञाता दृष्टा है। (३) आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म आकाश एकेक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोकप्रमाण असरयात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्व का स्वरुप जानते-मानते ही तत्काल आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है। यह एक मात्र आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० १७–बन्ध तत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या–क्या बताया है ?

उ०–शुभ-अशुभ बन्ध के फल मझार, रति-अरति करै निजपद विसार। अशुद्ध भावो से अर्थात् शुभाशुभ भावो से कर्मबन्ध होता है, कर्मबन्ध मे भला-बुरा जानना वही मिथ्या श्रद्धान है। इस बात को भूलकर (१) हिसा के भाव से नरकादि के बन्ध को बुरा जानना और अहिंसा के भाव से देवादि के बन्ध को भला जानना। (२) झूठ के भाव से नरकादि के बन्ध को बुरा जानना और सत्य के भाव से देवादि के बन्ध को भला जानना। (३) चोरी के भाव से नरकादि के

वन्ध को बुरा जानना और अचौर्य के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना। (४) कुशील के भाव से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और ब्रह्मचर्य के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना। (५) परिग्रह रखने के भाव से नरकादि के वन्ध को वुरा जानना और अपरिग्रह के भाव से देवादि के बन्ध को भला जानना।(६)सप्तव्यसन के भाव से नरकादि के वन्ध को बुरा जानना और सप्तव्यसन के भाव के अभाव से देवादि के बन्ध को भला जानना (७) कुगुरु-कुदेव-कुधर्म के मानने से नरकादि के वन्ध को वुरा जानना और सच्चे देव-गुरु-धर्म के मानने से देवादि के वन्ध को भला जानना। (८) दुःखी करने के भाव से नरकादि के वन्ध को वुरा जानना और सुखी करने के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना। (९) अव्रतादि के भाव से नरकादि के वन्ध को वुरा जानना और व्रतादि के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना। (१०) कुदेव को मानने के भाव से नरकादि के वन्ध को वुरा जानना और देव को मानने के भाव से देवादि के वन्ध को भला जानना। इत्यादि मान्यताओ को वन्धतत्त्व सम्वन्धी जीव की भूल वताया है ॥१॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन वताया है ॥२॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान वताया है ॥३॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र वताया है ॥४॥ वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व दिगम्वर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन वताया है ॥५॥ वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान वताया है ॥६॥ वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व दिगम्वर धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी

मान्यताओ के आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है।

प्र० १८–बन्ध तत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत–गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे–इसका उपाय छहढ़ाला की दूसरी ढ़ाल में क्या बताया है ?

उ०–चेतन को है उपयोगरुप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल। इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व हूँ (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। (३) आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है–उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है–उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म-आकाश ऐकेक द्रव्य है—उँनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है।(९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरुप जानते -मानते ही तत्काल बधतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है। यह एक मात्र बधतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० १९–संवर तत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप छहढ़ाला की दूसरी ढ़ाल मे क्या-क्या बताया है ?

उ०–आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान। प्रथम निर्विकल्प शुद्धोपयोग दशा मे अपनी-अपनी भूमिकानुसार मिश्रदशा प्रगट होने से चौथा-पाचवा-सातवा गुणस्थानरुप मोक्ष मार्ग होता है उसका पता न होने से ऐसा मानता है। (१) पाप का चिन्तवन न करने को मनोगुप्ति मान लेना। (२) मौन धारण को वचनगुप्ति मान लेना। (३) गमनादि न करने को कायगुप्ति मान लेना। (४) देखकर चलने को इर्या समिति मान लेना। (५) शुद्ध निर्दोष आहार लेने को एषणा समिति मान लेना। (६) क्रोध न करने को उत्तम क्षमा मान लेना। (७) मान न करने को उत्तम मार्दव मान लेना। (८) माया न करने के भाव को उत्तम मार्दव मान लेना। (९) लोभ न करने को उत्तम शौच धर्म मान लेना। (१०) सत्य बोलने को उत्तम सत्य मान लेना। (११) उपद्रव होने पर दूर न करने को उत्तम तप मान लेना (१२) स्त्री आदि छोड देने को उत्तम त्याग मान लेना। (१३) देहादि पर द्रव्य मेरा नही है ऐसे विचारो को आकिचन्य धर्म मान लेना। (१४) स्त्री को छोड देने को उत्तम ब्रह्मचर्य मान लेना। (१५) ससार अनित्य है ऐसे विचारो को अनित्य भावना मान लेना। (१६) क्षुधा की पीडा सहने को क्षुधापरिषह मान लेना। (१७) देवगुरु-शास्त्र के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन मान लेना। १८) १२ अणुव्रतादि को श्रावकपना मान लेना। (१९) २८ मूल-गुणादि को मुनिपना मान लेना। (२०) शास्त्र के पठनादि को उत्तम स्वाधाय मान लेना। ऐसी-ऐसी मान्यताओ को सवरतत्व सन्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥२॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ •• वर्तमान मे विशेषरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश

मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ वर्तमान मे विशेषरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥६॥ •• वर्तमान मे विशेपरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥७॥

प्र० २०–संवर तत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सखीपना कैसे प्रगट होवे–इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या उताया है ?

उ०–चेतन को उपयोगरूप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल इनतैं न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। (३)आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररूप मेरी मूर्ति नही है। (४)चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञस्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८)मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म आकाश एक-एक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्त्व का स्वरुप जानते-मानते ही तत्काल सवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता। यह एक मात्र सवततत्त्व

सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० २१–निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत मिथ्यादर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या-क्या बताया है ?

उ०–'रोके न चाह निज शक्ति खोय'—(अ) साधक को मिश्रदशा मे अशुद्धि की हानि और शुद्धि की वृद्धि—यह सवर पूर्वक निर्जरा निरन्तर चलती रहती है। ज्ञानानन्द निज स्वरुप मे स्थिर होने से शुभाशुभ इच्छाओ का उत्पन्न न होना ही तप है। (आ) जैसे बालू से कभी भी तेल की उत्पत्ति नही हो सकती है। वैसे ही बाह्य अनशनादि से कभी भी निर्जरा की प्राप्ति नही हो सकती है। किन्तु दिगम्बर धर्मी कहलाने पर भी (१) अनशनादि तप से निर्जरा मानना। (२) अनाज न खाने को निर्जरा मानना। (३) प्रायश्चित, विनय वैय्यावृत आदि तप से निर्जरा मानना। (४) गर्मी मे धूप मे बैठने से निर्जरा मानना। (५) तृषा सहने को निर्जरा मानना। (६) सर्दी सहने को निर्जरा मानना। (७) शरीर पर मच्छर आदि आने पर न हटाने को निर्जरा मानना। (८) महीनो के उपवास को निर्जरा मानना। (९) निर्दोष आहार छोड देने को निर्जरा मानना। (१०) अपनी ज्ञानादि शक्तियो को भूलकर शुभभावो से निर्जरा मानना। (११) पाच इन्द्रियो के लगाम को निर्जरा मानना। (१२) मत्रो के जपने से निर्जरा मानना। (१३) नदी किनारे बरसात मे खडे रहने को निर्जरा मानना। (१४) सिद्धचक्र का पाठ करने से निर्जरा मानना। (१५) सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के आदर के भाव को निर्जरा मानना। (१६) दिगव्रत-देशव्रत आदि विकल्पो से निर्जरा मानना। (१७) प्रोषधोपवास को निर्जरा मानना। (१८) आहारादि देने को निर्जरा मानना। (१९) शुद्ध निर्दोष आहार लेने से निर्जरा मानना। (२०) यात्रा आदि से निर्जरा मानना। • ऐसी-ऐसी

मान्यताओ को निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल बताया है ॥१॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥२॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥३॥ अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥४॥ वर्तमान मे विशेपरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरू-कुदेव कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन बताया है ॥५॥ वर्तमान मे विशेपरुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान बताया है ॥६॥ वर्तमान मे विशेपरूप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने से भी कुगुरू-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र बताया है ॥ ॥

प्र० २२–निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभव्व होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से सुखीपना कैसे प्रगट होवे–इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उ०–चेतन को है उपयोगरुप, बिनमूरत, चिन्मूरत अनूप । पुद्गल नभ धर्म-अधर्म काल इनतै न्यारी है जीव चाल । (१) मैं ज्ञानदर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व हूँ । (२)मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है । (३) आख-नाक-कान औदारिक शरीरोरुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है–उनकी चाल मुझ जीव से

भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीव तत्व का स्वरूप जानते-मानते ही तत्काल निर्जरा तत्व सम्बन्धी जीव की भूल-रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है । यह एक मात्र निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूलरूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्र० २३—मोक्ष तत्त्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत मिथ्या-दर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या-क्या बताया है ?

उ०—"शिवरुप निराकुलता न जोय।" निज आत्मा के आश्रय से सम्पूर्ण अशुद्धि का सर्वथा अभाव और सम्पूर्ण शुद्धि का प्रगट होना मोक्ष है। वह मोक्ष निराकुलतारुप सुख स्वरुप है और सुख का कारण है। किन्तु अज्ञानी (१) निराकुलता सुख को सुख नही माननेरुप मान्यता। (२) मोक्ष होने पर तेज मे तेज मिलने रुप मान्यता। (३) मोक्ष मे शरीर, इन्द्रियो तथा विषयो के बिना सुख कैसे हो सकने रुप मान्यता। (४) मोक्ष से पुन अवतार धारण करने रुप मान्यता। (५) स्वर्ग के सुख की अपेक्षा से अनन्तगुणा सुख मानने रुप मान्यता। (६) सिद्ध स्थान मे पहुँचने रुप मोक्ष रुप मान्यता। (७) जन्म-मरण-रोग-क्लेशादि दुःख दूर होने को मोक्ष मानने रुप मान्यता। (८) लोकालोक जानने से मोक्षपना मानने रुप मान्यता। (९) त्रिलोक पूज्यपना से मोक्ष मानने रुप मान्यता। •• ऐसी-ऐसी

मान्यताओ को मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूल वताया है ॥१॥ ·· अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन वताया है ॥२॥ ·· अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे ज्ञान को अगृहीत मिथ्याज्ञान वताया है ॥३॥ · अनादिकाल से एक-एक समय करके चला आ रहा होने से ऐसे आचरण को अगृहीत मिथ्याचारित्र वताया है ॥४॥ वर्तमान मे विशेप रुप से मनुष्य भव व दिगम्वर धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी ऐसी मान्यताओ के श्रद्धान को गृहीत मिथ्यादर्शन वताया है ॥५॥ ·· वर्तमान मे विशेप रुप से मनुष्यभव व दिगम्वर धर्म धारण करने पर भी कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के ज्ञान को गृहीत मिथ्याज्ञान है ॥६॥ · वर्तमान मे विशेप रुप से मनुष्यभव व दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का उपदेश मानने से ऐसी-ऐसी मान्यताओ के आचरण को गृहीत मिथ्याचारित्र वताया है ॥७॥

प्र० २४—मोक्षतत्व सम्वन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत मिथ्यादर्शनादि और गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना कैसे प्रगट होवे। इसका उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे क्या बताया है ?

उत्तर—चेतन को है उपयोग रुप, विनमूरत चिन्मूरत अनूप। पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतै न्यारी है जीव चाल ॥ (१) मैं ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व हू। (२) मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। (३) आख-नाक-कान औदारिक आदि शरीररुप मेरी मूर्ति नही है। (४) चैतन्य अरुपी असख्यात प्रदेशी मेरा एक आकार है। (५) सर्वज्ञ स्वभावी ज्ञान पदार्थ होने से मुझ आत्मा ही अनुपम है। (६) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्त जीव द्रव्य है-

उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (७) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (८) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। (९) मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व मे लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है—उनकी चाल मुझ जीव से भिन्न ही है। ऐसा निज जीवतत्व का स्वरुप जानते-मानते ही तत्काल मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रूप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रम से पूर्ण सुखीपना प्रगट हो जाता है। यह एक मात्र मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूल रुप अगृहीत–गृहीत मिथ्यादर्शनादि के अभाव का उपाय छहढाला की दूसरी ढाल मे बताया है।

प्रथम ढ़ाल की प्रश्नावली

प्र० १–मंगल का अर्थ अस्ति-नास्ति से क्या है ?

प्र० २–वीतराग-विज्ञानता कितने प्रकार की है ?

प्र० ३–सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का क्या उपाय है ?

प्र० ४–वीतराग-विज्ञानता का एक नाम क्या है ?

प्र० ५–वीतराग-विज्ञानता के दो नाम क्या हैं ?

प्र० ६–वीतराग विज्ञानता के तीन नाम क्या है ?

प्र० ७–वीतराग-विज्ञानता के चार नाम क्या है ?

प्र० ८–वीतराग-विज्ञानता के पांच नाम क्या है ?

प्र० ९–वीतराग का क्या अर्थ है ?

प्र० १०–वीतराग के कितने प्रकार हैं ?

प्र० ११–कषाय किसे कहते हैं ?

प्र० १२–क्रोधादि कितने-कितने प्रकार के है ?

प्र० १३–अनन्तानुबन्धी क्रोध किसे कहते है ?

प्र० १४–अनन्तानुबन्धी मान किसे कहते है ?

प्र० १५–अनन्तानुबन्धी माया किसे कहते हैं ?

प्र० १६–अनन्तानुबन्धी लोभ किसे कहते है ?

प्र० १७–क्रोध-मान को क्या कहते है ?

प्र० १८–माया-लोभ को क्या कहते हैं ?

प्र० १९–अनन्तानुबन्धी क्रोधादि का अभाव कब होता है ?

प्र० २०–अप्रत्याक्यान क्रोधादि का अभाव कब होता है ?

प्र० २१–प्रत्याख्यान क्रोधादि का अभाव कब होता है ?

प्र० २२–संज्वलन क्रोधादि का अभाव कब होता है ?

प्र० २३–विज्ञानता का क्या अर्थ है ?

प्र० २४–विज्ञानता के कितने प्रकार है ?

प्र० २५–चौथे गुणस्थान की वीतराग-विज्ञानता क्या है ?

प्र० २६–पांचवे गुणस्थान की वीतराग-विज्ञानता क्या है ?

प्र० २७–सातवें छठवें गुणस्थान की वीतराग विज्ञानता क्या है?

प्र० २८–१२वें गुणस्थान की वीतराग-विज्ञानता क्या है ?

प्र० २९–१३वें, १४वें, गुणस्थान की वीतराग विज्ञानता क्या है?

प्र० ३०–सिद्धदशा की वीतराग-विज्ञानता क्या है ?

प्र० ३१–वीतराग-विज्ञानता रुप निज शुद्ध आत्मा के अवलम्बन से दश बातें कौन-२ सी है जिनका पता चलता है ?

प्र० ३२–सार का क्या अर्थ है ?

प्र० ३३–परमसार आदि पांच बोल कौन कौन से हैं ?

प्र० ३४–परमसार आदि मे सात तत्व उतारकर बताओ ?

प्र० ३५–परमसारादि मे चार काल उतारकर बताओ ?

प्र० ३६–परमसारादि मे पांच भाव उतारकर बताओ ?

प्र० ३७–परमसारादि मे सुखदायक दु:खदायक उतारकर बताओ ?

प्र० ३८–परमसारादि मे देव-गुरु-धर्म उतार कर बताओ ?

प्र० ३९–परमसारादि मे हेय-ज्ञेय-उपादेय उतारकर बताओ ?

प्र० ४०–परमसारादि में उत्तमक्षमा उतारकर बताओ ?

प्र० ४२–परमसारादि में ईर्या समिति उतारकर बताओ ?

प्र० ४३–परमसारादि मे वचन गुप्ति उतारकर बताओ?

प्र० ४४–परमसारादि में अनित्यभावना उतारकर बताओ ?

प्र० ४५–परमसारादि में काय गुप्ति उतारकर बताओ ?

प्र० ४६–परमसारादि में क्षुधा परिषह जय उतारकर बताओ ?

प्र० ४७–परमसारादि में नमस्कार उतारकर बताओ ?

प्र० ४८–परमसारादि मे चारित्र उतारकर बताओ ?

प्र० ४९–परमसारादि मे प्रतिक्रमण उतारकर बताओ ?

प्र० ५०–परमसारादि मे आलोचना उतारकर बताओ ?

प्र० ५१–परमसारादि मे प्रत्याख्यान उतारकर बताओ ?

प्र० ५२–परमसारादि मे सामायिक उतारकर बताओ ?

प्र० ५३–वीतराग-विज्ञानता कैसी है ?

प्र० ५४–नमहुं त्रियोग सम्हारिकैं का क्या अर्थ है?

प्र० ५५–क्या मन-वचन-काय की सावधानी जीव कर सकता है?

प्र० ५६–मन का कर्ता कौन है और कौन नही है ?

प्र० ५७–वचन का कर्ता कौन है और कौन नही है ?

प्र० ५८–काय का कर्ता कौन है और कौन नही है ?

प्र० ५९–तुम कौन हो ?

प्र० ६०–तुम कौन नही हो ?

प्र० ६१–तुम्हारा कार्य क्या है ?

प्र० ६२–तुम दुःखी क्यो हो ?

प्र० ६३-तीन लोक मे कितने जीव है ?

प्र० ६४–तीन लोक के जीव क्या चाहते है ?

प्र० ६५–तीन लोक के जीव क्या नही चाहते है ।

प्र० ६६–तीन लोक में कितने जीव है !

प्र० ६७–सुख किसे कहते है ?

प्र० ६८–दु ख किसे कहने है ?

प्र० ६९–दुःख का अभाव और सुख के प्राप्ति कैसे हो ?

प्र० ७०-मोहरुपी शराब क्या है ?

प्र० ७१-मै प० कैलाशचन्द्र हूं—मोहरुपी शराब की चार बातें लगाकर लगाओ ?

प्र० ७२-मै व्यापार करता हू । मोहरुपी शराब की चार बातें लगाकर लगाओ ?

प्र० ७३-मै चाय पीता हूं—मोहरुपी शराब की चार बाते लगाकर बताओ ?

प्र० ७४-मेरी धर्मपत्नी है-मोहरुपी की चार बाते लगाकर बताओ?

प्र० ७५-मै सत्य बोलता हू—मोहरुपी शराब की चार बाते लगाकर बताओ ?

प्र० ७६-भविष्य की आयु का बन्ध कब और कैसे होता है ?

प्र० ७७-छहढाला की प्रथम ढाल में प्रथम निगोद के दुःखो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ७८-पृथ्वीकायिक के दुःखो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ७९-जलकायिक के दुःखो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८०-अग्निकायिक के दु.खो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८१-वायुकायिक के दु'खो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८२-वनस्पतिकायिक के दुःखो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८३-असैनी के दु खो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८४-संज्ञी सांप के दु.खो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८५-गधो के दु'खो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८६-कुत्ते के दुःखो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८७-बिल्ली के दु खो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८८—बकरे के दुःखो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ८९—नरकगति के दुःखों का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ९०—मनुष्यगति के दुःखो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ९१—देवगति के दुःखो का वर्णन क्यो किया ?

प्र० ९२—पहली ढाल के अनुसार मिथ्यादर्शन किसे कहते है ?

प्र० ९३—पहली ढाल के अनुसार मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

प्र० ९४—पहली ढाल के अनुसार मिथ्याचारित्र किसे कहते है ?

प्र० ९५—क्या मात्र मोहरुपी शराब ही दुःख का कारण है ?

प्र० ९६—चिद् विलास में दुःख का कारण किसे बताया है?

प्र० ९७—मोक्षमार्ग प्रकाशक मे दुःख का कारण किसे बताया है?

प्र० ९८—समयसार के बन्ध अधिकार मे दुःख का कारण किसे बताया है ?

प्र० ९९—क्या करे तो मोक्ष मार्ग प्रगटे ?

प्र० १००—सांप आदि समझने के लिये चार बातें कौन-२ सी निकालनी चाहिये ?

दूसरी ढ़ाल की प्रश्नावली

प्र० १—संसार परिभ्रमण का कारण कौन है ?

प्र० २—अगृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते है ?

प्र० ३—अगृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते है ?

प्र० ४—अगृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते है ?

प्र० ५—गृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहते है ?

प्र० ६–गृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

प्र० ७–गृहीत मिथ्याचारित्र किसे कहते है ?

प्र० ८–जीवतत्व का स्वरुप क्या है ?

प्र० ९–"ताको न जान, विपरीत मान करि" का भाव क्या है ?

प्र० १०—जीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप क्या है ?

प्र० ११—अजीवतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरूप क्या है ?

प्र० १२—आस्रवतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप क्या है ?

प्र० १३—बन्धतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत–गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप क्या है ?

प्र० १४—सवरतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप क्या है ?

प्र० १५—निर्जरातत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप क्या है ?

प्र० १६—मोक्षतत्व सम्बन्धी जीव की भूलरुप अगृहीत-गृहीत मिथ्यादर्शनादि का स्वरुप क्या है ?

प्र० १७—पर पदार्थों में तेरी-मेरी मान्यता को किस नाम से बताया है ?

प्र. १८—सबसे बड़ा पाप क्या है ?

प्र० १९—मिथ्यात्व को सप्त व्यसन से बड़ा पाप किस शास्त्र में कहां कहा है ?

प्र० २०—मिथ्यादर्शनादि के कितने भेद हैं ?

प्र० २१ – मै ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व हूं—इस वाक्य पर-'ताको न जान' आदि ८ बोलो को समझाओ ?

प्र० २२–मेरा कार्य ज्ञाता-द्रष्टा है—इस पर 'ताको न जान' आदि ८ बोलो को समझाइये ?

प्र० २३–बिनमूरत पर 'ताको न जान' आदि ८ बोलो को समझाइये ?

प्र० २४—चिन्मूरत पर 'ताको न जान' आदि ८ बोलो को समझाइये ?

प्र० २५—अनूप पर 'ताको न जान' आदि आठ बोलो को समझाइये ?

प्र० २६ – शरीर की अनुकूलता से मै सुखी—इस वाक्य पर आठ बोलो को समझाइये ?

प्र० २७—नौ प्रकार का पक्ष कौन कौन सा है ?

प्र० २८ – अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

प्र० २९—आंख-कान-नाक आदि औदारिक शरीर का पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरों को समझाइये ?

प्र० ३०—तैजस-कार्माण के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

प्र० ३१—भाषा-मन के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

प्र० ३२–शुभाशुभ विकारी भावो के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

प्र० ३४–अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय के पक्ष पर तीन प्रश्नो को समझाइये?

प्र० ३४ भेदनय के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये?

प्र० ३५—अभेदनय के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये?

प्र० ३६—भेदाभेदनय के पक्ष पर तीन प्रश्नोत्तरो को समझाइये?

प्र० ३७—पुरुषार्थसिद्धियुपाय गाथा १४ मे क्या बताया है?

प्र० ३८—सात तत्वो मे हेय—उपादेय—ज्ञेय किस प्रकार है ?

प्र० ३९ शुभभावो से जो मोक्ष की प्राप्ति मानते है उन्हे जिनवाणी मे किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

प्र० ४०—जीव द्रव्य और जीवतत्व मे क्या अन्तर है ?

प्र० ४१—अजीवद्रव्य और अजीवतत्व में क्या अन्तर है?

प्र० ४२—जीवतत्व किसे कहते है और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४३—अजीवतत्व किसे कहते है और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४४—आस्रवतत्व किसे कहते हे और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४५—बन्धतत्व किसे कहते है और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४६—सवरतत्व किसे कहते है और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४७—निर्जरातत्व किसे कहते हे और प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४८–मोक्षतत्व किसे कहते है और मोक्षतत्त्व प्रयोजनभूत किस अपेक्षा से है ?

प्र० ४९–चेतन को उपयोग रुप—इसके दो अर्थ क्या है ?

प्र० ५०–बिनमूरत का क्या अर्थ है ?

प्र० ५१–चिन्मूरत का क्या अर्थ है ?

प्र० ५२–अनूप का क्या अर्थ है ?

प्र० ५३–'ताको न जान–विपरीत मान करि'–इस पर कितने बोल निकलते है ?

प्र० ५४–चेतन को उपयोग रुप–इस पर 'ताकों न जान–विपरीत मानकरि' किस प्रकार है ?

प्र० ५५-बिनमूरत पर 'ताको न जान-विपरीत मानकरि' किस प्रकार है ?

प्र० ५६-चिन्मूरत पर–'ताकों न जान–विपरीत मानकरि' किस प्रकार है ?

प्र० ५७–अनूप–पर 'ताकों न जान–विपरीत मानकरि' किस प्रकार है ?

प्र० ५८–मुझ निज आत्मा के अलावा अनन्त जीव है–इस पर 'ताको न जान–विपरीत मानकरि' किस प्रकार है ?

प्र० ५९–मुझ निज आत्मा के अलावा अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य है इस पर 'ताको न जान विपरीत मानकरि' किस प्रकार है ?

प्र० ६०–मुझ निज आत्मा के अलावा असख्यात प्रदेशी एक धर्म-द्रव्य है–इस पर 'ताको न जान विपरीत मानकरि' किस प्रकार है ?

प्र० ६१–मुझ निज आत्मा के अलावा असंख्यात प्रदेशी एक अधर्म द्रव्य है–इस पर 'ताको न जान विपरीत मानकरि' किस प्रकार है ?

प्र० ६२–मुझ निज आत्मा के अलावा अनन्त प्रदेशी एक आकाश द्रव्य है–इस पर 'ताको न जान विपरीत मानकरि' को समझाइये ?

प्र० ६३—मुझ निज आत्मा के अलावा एक प्रदेशी लोकप्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है–इस पर 'ताको न जान विपरीत मानकरि' को समझाइये ?

तीसरी ढ़ाल की प्रश्नावली

प्र० १–आत्मा का हित किसमे है ?

प्र० २–सुख किसे कहते है ?

प्र० ३–दुःख किसे कहते है ?

प्र० ४–दु ख का दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक के नौवें अध्याय मे क्या बताया है ?

प्र० ५–दु ख दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ५२ मे क्या बताया है ?

प्र० ६–दु ख दूर करने का उपाय इष्टोपदेश गाथा ५० मे क्या बताया है ?

प्र० ७–योगसार दोहा ३८ और ५५ मे दु ख दूर करने का क्या उपाय बताया है ?

प्र० ८–दु ख दूर करने का उपाय सामायिक पाठ २८वें दोहे मे क्या बताया है ?

प्र० ९–दु ख दूर करने का उपाय प्रवचनसार गाथा ९४ मे क्या बताया है ?

प्र० १०–दु ख दूर करने का उपाय प्रवचनासार गाथा ९० में क्या बताया है ?

प्र० ११–दु ख दूर करने का उपाय समयसार कलश २३ में क्या बताया है ?

प्र० १२–दु ख दूर करने का उपाय तत्त्वार्थ सूत्र पहले अध्याय के २९वें सूत्र में क्या बताया है ?

प्र० १३–दु ख दूर करने का उपाय तत्वार्थ सूत्र अध्याय पाचवें के सूत्र २९ और ३० में क्या बताया है ?

प्र० १४–दु ख दूर करने का उपाय बुधजन जी ने क्या बताया है?

प्र० १५–दु ख दूर करने का उपाय कार्तिकेय अनुप्रेक्षा गाथा ३२१, ३२२, ३२३ में क्या बताया है ?

प्र० १६–दु ख दूर करने का उपाय छहढाला चौथी ढाल मे क्या बताया है ?

प्र० १७–दु ख दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३८ में क्या बताया हे ?

प्र० १८–दु ख को दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २९३ में क्या बताया है ?

प्र० १९—दु.ख दूर करने का उपाय समयसार कलश १३१ में क्या बताया है ?

प्र० २०––दु ख दूर करने का उपाय प्रवचनसार गाथा १५४ मे क्या बताया है ?

प्र० २१—दु ख दूर करने का उपाय प्रमेयतत्व गुण को मानने से कैसे होता है ?

प्र० २२– दु ख दूर करने का उपाय मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २२९ मे क्या बताया है ?

प्र० २३—दु ख दूर करने का उपाय समयसार कलश ५१-५२ ५३-५४-५५ मे क्या बताया है ?

प्र० २४—दु ख दूर करने का उपाय कलश २०० मे क्या बताया है ?

प्र० २५—दु ख दूर करने का उपाय समयसार गाथा २६ में क्या बताया है ?

प्र० २६—दु ख दूर करने का उपाय समयसार गाथा ६९-७० में क्या बताया है ?

प्र० २७—दु ख दूर करने का उपाय पुरुषार्थ सिद्धि उपाय गाथा १४ में क्या बताया है ?

प्र० २८—दु ख दूर करने का उपाय प्रवचनसार गाथा ८० तथा ८६ मे क्या बताया है ?

प्र० २९—दु ख दूर करने का उपाय प्रवचनसार गाथा ८३ में क्या बताया है ?

प्र० ३०—दु ख दूर करने का उपाय समयसार गाथा ३ में क्या बताया है?

प्र० ३१—आकुलता कहा नही है ?

प्र० ३२—मोक्षदशा के ऊपर से सात तत्व कैसे निकलते है?

प्र० ३३–मोक्ष किसे कहते है और मोक्ष कैसे होता है ?

प्र० ३४–सवर निर्जरा सेकि कहते है और संवर निर्जरा किसके अभावपूर्वक होती है?

प्र० ३५–आस्रव-बन्ध किसे कहते है और आस्रव-बन्ध किसके निमित्त से होता है ?

प्र० ३६-अजीव तत्व किसे कहते हैं और अजीव तत्व में कौन-कौन आया ?

प्र० ३७-आस्रव-बन्ध का अभाव किसके आश्रय से होता है?

प्र० ३८-संवर निर्जरा की प्राप्ति किसके अभाव से होती है ?

प्र० ३९-क्या मोक्ष कहते ही सातो तत्वो की सिद्धि हो जाती है?

प्र० ४०—आकुलता कहा नहीं है ?

प्र०४१—हमें क्या करना चाहिये ?

प्र० ४२—मोक्ष मार्ग क्या है ?

प्र० ४३-मोक्ष मार्ग कितने प्रकार का है ?

प्र० ४४-जब मोक्षमार्ग एक ही है तो उसका कथन दो प्रकार से क्यो किया जाता है ?

प्र० ४५ निश्चय मोक्ष मार्ग क्या है?

प्र० ४६-व्यवहार मोक्षमार्ग क्या है ?

प्र० ४७-क्या सम्यक्चारित्र सम्यग्दर्शन हुये बिना हो सकता है?

प्र० ४८ क्या सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन हुये बिना हो सकता है?

प्र० ४९—सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र मिथ्या है—ऐसा छहढाला में कहा बताया है?

प्र० ५०-निश्चय व्यवहार किसको होता है?

प्र० ५१-निश्चय व्यवहार किसको नहीं होता है?

प्र० ५२-व्यवहार प्रथम निश्चय बाद में क्या यह ठीक है?

प्र० ५३-व्यवहार मोक्षमार्ग कब कहा जाता है?

प्र० ५४–मोक्ष मार्ग कितने है ?

प्र० ५५–मोक्ष मार्ग का कथन कितने प्रकार से किया जाता है ?

प्र० ५६–सम्यग्दर्शन पर निश्चय-व्यवहार लगाकर बताओ ?

प्र० ५७–श्रावकपने पर निश्चय-व्यवहार लगाकर बताओ ?

प्र० ५८–मुनिपने पर निश्चय-व्यवहार लगाकर बताओ ?

प्र० ५९–निश्चय सम्यग्दर्शन किसे कहते है ?

प्र० ६०–निश्चय सम्यग्ज्ञान किसे कहते है ?

प्र० ६१– निश्चय सम्यक्चारित्र किसे कहते है ?

प्र० ६२– व्यवहार सम्यग्दर्शन किसे कहते है ?

प्र० ६३–व्यवहार सम्यग्ज्ञान किसे कहते है ?

प्र० ६४–व्यवहार सम्यक्चारित्र किसे कहते है ?

प्र० ६५–जीव द्रव्य का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ६६–अजीव द्रव्य का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ६७–आस्रव तत्त्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान क्या है ?

प्र० ६८–बन्धतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ६९–संवरतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ७०–निर्जरातत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ७१–मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान क्या है ?

प्र० ७२–व्यवहार सम्यग्दर्शन क्या है ?

प्र० ७३–निश्चय सम्यग्दर्शन का निमित्त कौन है ?

प्र० ७४–निश्चय सम्यग्दर्शन के निमित्त कारणों को क्या कहा जाता है ?

प्र० ७५–सम्यग्दर्शन के आठ अग क्या-क्या है ?

प्र० ७६–सम्यग्दर्शन के आठ दोष कौन-कौन से है ?

प्र० ७७–आठ मद क्या-क्या है ?

प्र० ७८–छह अनायतन क्या-क्या है ?

प्र० ७९–तीन मूढ़ता क्या-क्या है ?

प्र० ८०–सम्यग्दृष्टि की पहचान क्या है ?

प्र० ८१–पच्चीस दोष क्या-क्या है ?

प्र० ८२–क्या अव्रती सम्यग्दृष्टि का देव भी आदर करते है ?

प्र० ८३–सम्यग्दृष्टि की ग्रहस्थपने मे प्रीति नही है उसके दृष्टान्त देकर समझाइये ?

प्र० ८४–सम्यक्त्व की महिमा से सम्यग्दृष्टि कहां-कहां उत्पन्न नही होता है ?

प्र० ८५–सम्यग्दृष्टि जीव कहां-कहां उत्पन्न होता है ?

प्र० ८६–सर्वधर्मो का मूल क्या है ?

प्र० ८७–सम्यग्दर्शन के बिना व्रतादि क्या है ?

प्र० ८८–सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान को क्या कहते है ?

प्र० ८९–सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र को क्या कहते है ?

प्र० ९०–आत्मार्थी को क्या करना चाहिए ?

प्र० ९१–दौलतराम जी ने तीसरी ढ़ाल के अन्त मे क्या शिक्षा दी है ?

प्र० ९२–यदि मनुष्य पर्याय मे सम्यग्दर्शन प्राप्त न किया तो क्या होगा ?

प्र० ९३-सम्यग्दर्शन कितने प्रकार का है ?

प्र० ९४–सम्यग्ज्ञान कितने प्रकार है ?

प्र० ९५–श्रावकपना कितने प्रकार का है ?

प्र० ९६–मुनिपना कितने प्रकार का है ?

प्र० ९७–वहिरात्मा की पहिचान क्या है ?

प्र० ९८–अन्तरात्मा की पहचान क्या है ?

प्र० ९९–क्या निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर २५ दोषों का अभाव करना पड़ता है ?

प्र० १००–निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर क्या-क्या होता है ?

चौथी ढ़ाल की प्रश्नावली

प्र० १–सम्यग्ज्ञान का लक्षण क्या है ?

प्र० २–सम्यकदर्शन और सम्यग्ज्ञान मे क्या अन्तर है ?

प्र० ३–ज्ञान-श्रद्धान तो एक साथ होता है तो उसमे कारण कार्यपना क्यो कहते है ?

प्र० ४–सम्यकज्ञान के कितने भेद है ?

प्र० ५–परोक्ष ज्ञान कौन-कौन से हैं ?

प्र० ६–क्या मति-श्रुत ज्ञान प्रत्यक्ष भी कह जा सकते हैं ?

प्र० ७–देश प्रत्यक्ष कौन-कौन से ज्ञान हैं ?

प्र० ८–केवल ज्ञान किसे कहते हैं ?

प्र० ९–ज्ञानी और अज्ञानी के कर्मनाशो के विषय मे क्या अन्तर है ?

प्र० १०–भेद विज्ञान के लिये क्या करना चाहिये ?

प्र० ११–सम्यग्ज्ञान होने पर तीन दोषो को अभाव हो जाता है उनके नाम क्या-क्या हैं ?

प्र० १२–आत्मा को सहायक कौन नही है ?

प्र० १३–आत्मा को सहायक कौन है ?

प्र० १४–भूत भविष्य वर्तमान मे मोक्ष जा रहे हैं, जावेंगे, जा चुके हैं वह किसका प्रभाव है ?

प्र० १५–सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

प्र० १६–जीव का कर्त्तव्य क्या है ?

प्र० १७–जीव की भूल क्या है ?

प्र० १८–जैन धर्म का सार क्या है ?

—००—

चौथा अधिकार

(जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नामाला भाग तीसरा पृष्ठ १८६ पर ३७ प्रश्न लिखे हैं यह ३८ प्रश्नोत्तर से वहां पर जोड़ने है।)

जीवतत्त्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान

प्र० ३८–छहढ़ाला मे जीवतत्त्व का 'ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे क्या कहा है ?

उ०–वहिरातम, अन्तरआनम, परमातम जीव त्रिधा है,
देह जीव को एक गिने वहिरातम तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर आतम ज्ञानी;
द्विविध सग विन शुद्ध उपयोगी मुनि उत्तम निज ध्यानी ।।४।।
मध्यम अन्तर आतम है जे देशव्रती अनगारी,
जघन कहे अविरतसमदृष्टि, तीनो शिवमग चारी ॥
सकल निकल परमातम द्वै विध तिन मे घाति निवारी,
श्री अरिहन्त सकल परमातम लोकालोक निहारी ।।५।।
ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्म मल वर्जित सिद्ध महन्ता,
ते हैं निकल अमल परमातम भोगै शर्म अनन्ता ॥
वहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै,
परमातम को ध्याय निरन्तर जो नित आनन्द पूजै ।।६।।

भावार्थ –प्रत्येक आत्मा ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व है। पर्याय मे तीन प्रकार के है–वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। (१) जो शरीर और आत्मा को एक मानते है उन्हे वहिरात्मा कहते है और वे तत्त्व मूढ मिथ्यादृष्टि है। (२) जो शरीर और आत्मा को अपने भेद-विज्ञान से भिन्न-भिन्न मानते है वे अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा के तीन भेद है–उत्तम, मध्यम और जघन्य। अन्तरग

तथा वहिरंग दोनो प्रकार के परिग्रहो से रहित सातवे गुणस्थान से लेकर बारहवे गुणस्थान तक वर्तते हुये शुद्ध उपयोगी आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि उत्तम अन्तरात्मा है। छठवे और पाचवें गुणस्थानवर्ती जीव मध्यम अन्तरात्मा है । और चौथे गुणस्थानवर्ती जघन्य अन्तरात्मा है । (३) परमात्मा के दो भेद है—अरिहन्त परमात्मा और सिद्ध परमात्मा । वे दोनो सर्वज्ञ होने से लोक और अलाक सहित सर्व पदार्थों का त्रिकालवर्ती सम्पूर्ण स्वरुप एक समय मे एक साथ जानने-देखने वाले, सबके ज्ञाता-दृष्टा है। (४) इसलिये आत्म हितैषियो को चाहिये वहिरात्मपने को छोडकर अन्तरात्मा बनकर परमात्मपना प्राप्त करे, क्योकि उससे सदैव सम्पूर्ण और अनन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। यह 'जीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' छहढाला मे बताया है।

प्र०३९—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' क्या बताया है ?

उत्तर—(१)प्रत्येक जीव ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व है और पर्याय मे तीन प्रकार के है। (२) जो शरीर आत्मा को एक मानते है वे वहिरात्मा है। (३) जो शरीर और आत्मा को अपने भेद-विज्ञान से भिन्न-भिन्न मानते है, वे अन्तरात्मा है। अन्तरात्मा के तीन भेद है—उत्तम, मध्यम और जघन्य। (४) सम्पूर्ण अशुद्धि का अभाव और सम्पूर्ण शुद्धि की प्राप्ति वह परमात्मा है। परमात्मा के दो भेद है—अरहन्त और सिद्ध। (५) ऐसा जानकर निज जीवतत्व का आश्रय लेकर वहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर क्रम से परमात्मा बनना - यह 'जीवतत्व का 'ज्यो का त्यो श्रद्धान' हुआ, ऐसा जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने बताया है।

प्र० ४०—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित, 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर - अनन्त ज्ञानियो का एक मत है-यह पता चल जाता है।

प्र०४१—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' को सुनकर ज्ञानी क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर- केवली के समान 'जीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान करते है, केवली व ज्ञानी के जानने मे मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर रहता है। ज्ञानी निज ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा वन जाते है।

प्र० ४२—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर सम्यक्त्व के सम्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर—अहो-अहो! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो द्वारा कथित, 'जीवतत्त्व का ज्यो का त्यो' श्रद्धान' महान उपकारी है, मुझे तो इसका पता ही नही था। ऐसा विचार कर निज ज्ञान—दर्शन उपयोगी जीवतत्त्व का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभावकर अन्तरात्मा वनकर ज्ञानी की तरह विशेप एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते है।

प्र० ४३—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'जीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते है और करते है ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'जीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान', का विरोध करते है और मिथ्यात्व की पुष्टि करके चारो गतियो मे घूमते हुए निगोद मे चले जाते है।

प्र० ४४–जिन जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'जीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे विशेष स्पष्टीकरण कहां देखें?

उत्तर–जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ तीन विश्व के प्रकरण मे प्रश्नोत्तर ७६ से १०५ तक देखियेगा।

अजीवतत्त्व का ज्यों का त्यो श्रद्धान

प्र० ४५–छहढाला मे, 'अजीवतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे क्या बताया है?

उत्तर-चेतनता विन सो अजीव है पच भेद ताके है,
पुद्गल पच वरन - रस, गन्ध - दो फरस वसू जाके है।
जिय पुद्गल को चलन सहाई धर्म द्रव्य अनुरुपी,
तिष्ठत होय अधर्म सहाई जिन विन मूर्ति निरुपी ॥७॥
सकल द्रव्य को वास जास मे, सो आकाश पिछानो,
नियत वर्तना निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो।
यो अजीव, ...

भावार्थ- (१) जिसमे ज्ञान-दर्शन की शक्ति नही होती उसे अजीव कहते है। उस अजीव के पाच भेद है - (१) पुदगल धर्म-अधर्म-आकाश और काल। (२) जिसमे स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण होते है उसे पुद्गल द्रव्य कहते है। (३) जो स्वय स्वत गति करते है ऐसे जीव और पुद्गल को चलने मे निमित्त कारण होता है वह धर्म द्रव्य है। (४) जो स्वय स्वत गति पूर्वक स्थिर रहे हुए जीव और पुद्गल को स्थिर रहने मे निमित्तकारण होता है वह अधर्म द्रव्य है। (५) जिसमे छह द्रव्यो का निवास है उस स्थान को आकाश कहते है। (६) जो स्वय स्वत अपने आप वदलते हुये सव द्रव्यो को वदलने मे निमित्त है उसे निश्चयकाल कहते है। रात-दिन घडी, घण्टा आदि को व्यवहार काल कहा जाता है। जिनेन्द्र भगवान ने धर्म-अधर्म-आकाश और काल द्रव्यो को अमूर्तिक कहा है। इस प्रकार 'अजीव

तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' बताया है।

प्र० ४६–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' क्या बताया है ?

उत्तर–(१) जिनमे ज्ञान-दर्शन न हो वे अजीव द्रव्य है और वे पाच है–पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। (२) जिनमे मेरा ज्ञान-दर्शन नही है वे अजीवतत्त्व है। मुझ निज आत्मा के अलावा अनन्त जीवद्रव्य, अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक द्रव्य और लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य है ये सब अजीवतत्व है। (३) जिसमे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण पाया जावे वह पुद्गल द्रव्य है। उसमे स्पर्श की आठ पर्याये, रस की पाच पर्याये, गन्ध की दो पर्याये, वर्ण की पाच पर्याये और शब्द की सात पर्याये, इस तरह २७ प्रकार की पर्याये होती है। (४) इन २७ पर्यायो से जीवतत्व का किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का सर्वथा सम्बन्ध नही है, क्योकि जीव अस्पर्श अरस, अगन्ध, अवर्ण और अशब्द स्वभावी है। (५) जीव-पुद्गल जब अपनी-अपनी क्रियावती शक्ति से स्वय स्वत गमन रुप परिणमते है तब धर्म द्रव्य निमित्त होता है। (६) जीव-पुद्गल जब अपनी-अपनी क्रियावती शक्ति से स्वय स्वत चलकर स्थिर होते है तब अधर्म द्रव्य निमित्त होता है। (७) सर्व द्रव्य अनादिकाल से अपने-अपने क्षेत्र मे रहते है, उसमे आकाश द्रव्य निमित्त है। (८) सर्व द्रव्य निज परिणमन स्वभाव के कारण स्वय स्वत परिणमते है, उसमे काल द्रव्य निमित्त है। (९) मुझ निज आत्मा का इन सब अजीव तत्वो से सर्वथा सम्बन्ध नही है, क्योकि इनकी चाल मुझ जीव तत्त्व से भिन्न ही है। (१०) अजीवतत्व से सर्वथा भिन्न अपने को आप रुप जानकर पर का अश भी अपने मे न मिलाना और अपना अश भी पर मे न मिलाना। यह 'अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' जिन जिनवर और जिनवर वृषभो ने बताया है।

प्र० ४७–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर–अनन्त ज्ञानियों का एक मत है-ऐसा पता चलता है।

प्र० ४८–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' को सुनकर ज्ञानी क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर–केवली के समान अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान करते है, जानने मे मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर रहता है। अजीवतत्व से सर्वथा भिन्न निज ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्त्व मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते है।

प्र० ४९–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' को सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर–अहो! अहो! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'अजीवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है, मुझे तो इसका पता ही नही था। अजीव तत्त्व से सर्वथा भिन्न निज ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीवतत्व का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव कर अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते है।

प्र० ५०–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'अजीवतत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान' सुनकर दीर्घ ससारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर–जिन-जिनवर और निजवर वृपभो से कथित, 'अजीव तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करते है और मिथ्यात्व की

पुष्टि करते हुए चारो गतियो मे घूमकर निगोद मे चले जाते हैं।

प्र० ५१–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'अजीव-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे विशेष स्पष्टीकरण कहां देखें ?

उत्तर–जैन सिद्धान्त प्रवेशरत्नमाला भाग तीसरा पाठ तीन विश्व के प्रकरण मे प्रश्नोत्तर १०६ से २५१ तक देखियेगा।

आस्रवतत्त्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान

प्र० ५२–'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे छह्-ढ़ाला मे क्या बताया है ?

उत्तर– ` , अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा,
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥८॥
ये ही आतम को दु ख कारण, तातै इनको तजिये,

भावार्थ –अब आस्रवतत्वो का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का वर्णन करते है। (१)जीव के मिथ्यात्व-मोह-राग-द्वेष रुप परिणाम भाव आस्रव है। भाव आस्रव के पाच भेद है—मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग। (२) मिथ्यात्वादि ही आत्मा को दु ख का कारण है, किन्तु पर पदार्थ दु ख का कारण नही है। इसलिये अपने दोष रहित त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर दोष रुप मिथ्या भावो का अभाव करना चाहिये।

प्र० ५३–मोक्षमार्ग प्रकाशक मे, 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान' के विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर—(१) अन्तरग अभिप्राय मे मिथ्यात्वादि रुप जो रागादि-भाव है वे ही आस्रव है। ये सव मिथ्या अध्यवसाय है, वे त्याज्य है।

इसलिये हिंसादिवत् अहिंसादिक को भी बन्ध का कारण जानकर हेय ही मानना। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २२६) (२) तथा अघाति कर्मो के उदय से बाह्य सामग्री मिलती है, उसमे शरीरादिक तो जीव के प्रदेशो से एक क्षेत्रावगाही होकर एक बन्धान रुप होते है और धन, कुटुम्बादिक आत्मा से (सर्वथा) भिन्न रुप है इसलिये वे सब बन्ध के कारण नही है, क्योकि पर द्रव्य बन्ध का कारण नही होता। उनमे आत्मा को ममत्वादिरुप मिथ्यात्वादिभाव होते है वही बन्ध का कारण जानना। (मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २७)

प्र० ५४–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' क्या बताया है ?

उत्तर–पुण्य-पाप दोनो विभाव परिणति से उत्पन्न हुये है–इस लिये दोनो बन्ध रुप ही है। (१) व्यवहार दृष्टि से (मिथ्यादृष्टि की खोटी मान्यता होने से) भ्रमवश उनकी प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न भासित होने से, वे अच्छे और बुरे दो प्रकार के दिखाई देते है। (२) परमार्थ दृष्टि तो उन्हे (पुण्य-पाप भावो को) एक रुप ही– बन्ध रुप ही बुरा ही जानती है। (समयसार कलश १०१) तथा प्रवचनसार गाथा ७७ मे कहा है कि जो पुण्य-पाप मे अन्तर डालता है वह घोर ससार मे भ्रमण करता है। यह आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान है।

प्र० ५५–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'आस्रव तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर–अनन्त ज्ञानियो का एक मत है—ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ५६–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' को सुनकर ज्ञानी क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर—केवली के समान 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' करते है और पुण्य-पाप रहित ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी अवन्ध स्वभावी निज आत्मा मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते है।

प्र० ५७—जिन जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान' सुनकर सम्यक्त्व के सम्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर—अहो! अहो! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है। मुझे तो इसका पता ही नही था—ऐसा विचार कर पुण्य-पाप रहित ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी अवन्ध स्वभावी निज आत्मा का आश्रय लेकर वहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह निज आत्मा मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा वन जाता है।

प्र० ५८—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान' सुनकर दीर्घ ससारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यौ का त्यौ श्रद्धान' का विरोध करते है और चारौं गतियौ मे घूमते हुए निगोद मे चले जाते है।

प्र० ५९—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'आस्रवतत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान' का विशेष स्पष्टीकरण कहा देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले मे ३४७ प्रश्नोत्तार से ३६० प्रश्नोत्तारो तक देखियेगा।

बन्धतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान

प्र० ६०—छहढाला मे 'बन्धतत्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—जीव प्रदेश बधै विधि सो सो, बन्धन कबहुँ न सजिये।

भावार्थ-(१) राग परिणाम मात्र ऐसा जो भावबन्ध है वह द्रव्यबन्ध का हेतु होने से वही निश्चय बन्ध है जो छोड़ने योग्य है। (२) तत्व दृष्टि से तो पुण्य-पाप दोनो बन्धन कर्ता ही है—यह 'बन्ध तत्व का ज्यों का त्यो श्रद्धान' छहढाला मे बताया है।

प्र० ६१-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों ने 'बन्धतत्व का ज्यों का त्यों का श्रद्धान किसे बताया है?

उत्तर-(१) अघाति कर्म के फल अनुसार पदार्थो की सयोग-वियोग रुप अवस्थाये होती है। सम्यग्दृष्टि उनको व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय मानता है। (२)पुण्य-पाप का बन्ध वह पुद्गल की अवस्थाये है। उनके उदय से जो संयोग प्राप्त हो वे भी क्षणिक सयोग रुप से आते-जाते है जितने काल तक वे निकट रहे उतने काल भी वे सुख-दु ख देने को समर्थ नही है। (३) शुभाशुभ भाव वह ससार है। इसलिये उसकी रुचि छोडकर, स्वोन्मुख होकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान पूर्वक निज आतम स्वरुप मे लीन होना ही जीव का कर्तव्य है।

पुण्य-पाप-फल माहि, हरख बिलखौ मत भाई,
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई।
लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ,
तोरी सकल जग दंद-फन्द, नित आतम ध्याओ ॥६॥

(४) (अ) कर्म योग्य पुद्गलो से भरा हुआ लोक है सो भले रहो, (आ) मन-वचन-काय का चलन स्वरूप कर्म (योग) है सो भी भले

रहो, (इ) वे (पूर्वोक्त) करण भी उसके भले रहो, (ई) और वह चेतन-अचेतन का घात भी भले हो। परन्तु अहो! यह सम्यग्दृष्टि आत्मा रागादि को उपयोगभूमि मे न लाता हुआ, केवल (एक) ज्ञान रुप परिणमित होता हुआ, किसी भी कारण से निश्चयत. बन्ध को प्राप्त नही होता। (अहो! देखो! यह सम्यग्दर्शन की अद्भुत महिमा है) (समयसार कलश १६५ श्लोकार्थ) यह जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित बन्धतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान है।

प्र० ६२-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'बन्धतत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान' के जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर-अनन्त ज्ञानियो का एकमत है-ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ६३-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'बन्धतत्व का ज्यों का त्यो श्रद्धान' सुनकर ज्ञानी क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर-केवली के समान वन्धतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान करते है और निज अबन्ध स्वभावी ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी आत्मा मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते है।

प्र० ६४-जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्ध तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख पात्रभव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर-अहो! अहो! जिन जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्धतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है। मुझे तो इसका पता नही था—ऐसा विचार कर अबन्ध स्वभावी ज्ञान-दर्शन उपयोग मयी आत्मा का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह निज आत्मा मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाता है।

प्र० ६५–निज–जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'बन्ध-तत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान' सुनकर दीर्घ ससारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर–जिन–जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्धतत्व का ज्यौ का त्यो श्रद्धान' का विरोध करते है और चारो गतियो मे घूमते हुये निगोद मे चले जाते है।

प्र० ६६–जिन–जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'बन्ध तत्व का ज्यो का त्यों का श्रद्धान' का विशेष स्पष्टीकरण कहां देखें ?

उत्तर–जैन सिद्धात प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले मे ३६१ प्रश्नोत्तर से ३७६ प्रश्नोत्तर तक देखियेगा।

प्र० ६७–छहढाला मे 'संवरतत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान' के विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर– (१) शम–दम तै जो कर्म न आवै, सो सवर आदरिये ॥
कषाय के अभाव को शम कहते है और द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रियो के विषयभूत पदार्थ से आत्मा को भिन्न जानने को दम कहते है। कषाय के अभाव से और द्रव्येन्द्रिय–भावेन्द्रिय–इन्द्रियो के विषय भूत पदार्थो से निज आत्मा को भिन्न जानना मानना–यह 'सवर-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' है। अशुद्धि का उत्पन्न न होना और शुद्धि का प्रगट होना–यह प्रगट करने योग्य उपादेय है।

(२) जिन पुण्य–पाप नहि कीना, आतम अनुभव चित दीना,
तिनही विधि आवत रोके, सवर लहि सुख अव लोके ॥१०॥

अर्थ · जिन्होने शुभभाव और अशुभभाव नही किये तथा मात्र आत्मा के अनुभव मे (शुद्धोपयोग मे) ज्ञान को लगाया है । उन्होने आते

हुये कर्मों को रोका है और संवर प्रगट करके सुख का साक्षात्कार किया है। (३) 'आतम हित हेतु विराग ज्ञान' अर्थात निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र ही जीव को हितकारी है। स्वरूप में स्थिरता द्वारा राग का जितना अभाव वह वैराग्य है और वह ही सुख का कारण है। यह संवर तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान है।

प्र० ६८–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों ने 'संवरतत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान' किसे बताया है ?

उत्तर–शुद्धोपयोग मे निश्चय सम्यग्दर्शन के काल मे चारित्रगुण मे दो धारा शुरु हो जाती है। जिसे मिश्रभाव कहते है। मिश्रभाव मे जो वीतरागता है वह संवर है और राग है वह बन्ध है। अतः जितनी वीतरागता है वह ही संवर है। वीतरागता को ही संवर मानना–यह 'सवरतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' है।

प्र० ६९– जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'संवर-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान के जानने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर–अनन्त ज्ञानियो का एकमत है–ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ७०–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'संव-रतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर ज्ञानी क्या जानते है और क्या करते हैं ?

उत्तर-केवली के समान 'सवरतत्व का ज्यो का त्यों श्रद्धान करते है और अवन्ध स्वभावी निज भगवान मे विशेष एकाग्रता करके पर-मात्मा बन जाते हे।

प्र० ७१–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'संवर-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर-सम्यक्त्व के सन्मुख पात्र भव्य मिथ्या दृष्टि जीव क्या जानते है और क्या करते हैं ?

उत्तर-अहो! अहो! जिन-जिनवर औ जिनवर वृषभो से कथित 'सवरतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है। मुझे तो इस बात का पता ही नही था। ऐसा विचार कर अबन्ध स्वभावी ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी निज जीवतत्व का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह निज आत्मा मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा वन जाता है।

प्र० ७२–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित 'संवर-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानते हैं और क्या करते है?

उत्तर–जिन-जिनवर और जिनवर वृपभो से कथित 'सवरतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करते है और चारो गतियो मे घूमते हुये निगोद मे चले जाते है।

प्र० ७३–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'संवर-तत्त्व का ज्यों का त्यो श्रद्धान' का विशेष स्पष्टीकरण कहा देखें ?

उत्तर-जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले मे ३७७ प्रश्नोत्तार से ३९२ प्रश्नोत्तर तक मे देखियेगा।

निर्जरातत्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान

प्र० ७४–छहढाला मे 'निर्जरातत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर–(१)तप-बल से विधि झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये ।८।
भावार्थ–शुभाशुभ इच्छाओ के अभाव रुप तप की शक्ति से कर्मो का एकदेश खिर जाना सो निर्जरा है। उस निर्जरा को सदैव प्राप्त करना चाहिए।

(२) निज काल पाय विधि झरना, तासो निज काज न सरना,
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसोवे ॥

भावार्थ —अपनी-अपनी स्थिति पूर्ण होने पर कर्मों का खिर जाना तो प्रति समय अज्ञानी को भी होता है। वह कही शुद्धि का कारण नही होता है। आत्मा के शुद्ध प्रतपन द्वारा जो कर्म खिर जाते है वह अविपाक अथवा सकाम निर्जरा कहलाती है। तदनुसार शुद्धि की वृद्धि होते-होते सम्पूर्ण निर्जरा होती है तब जीव सुख की पूर्णता रुप मोक्ष प्राप्त करता है— यह निर्जरा तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान छहढाला मे बताया है।

प्र० ७५—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'निर्जरातत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' किसे बताया है ?

उत्तर—जैसे गीला कम्बल को टाग दो उसमे पानी झरता रहता है और कम्बल सूख जाता है; उसी प्रकार आत्मा मे अशुद्धि की हानि शुद्धि की वृद्धि निर्जरा है।

प्र० ७६—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'निर्जरा-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान से क्या लाभ रहा ?

उत्तर—अनन्त ज्ञानियो का एक मत है—ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ७७—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'निर्जरा तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर ज्ञानी क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर—केवली के समान 'निर्जरा तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' करते है और अबन्ध स्वभावी निज भगवान मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते है।

प्र० ७८–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'निर्जरा-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते है और क्या करते है ?

उत्तर–अहो! अहो! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'निर्जरा तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है मुझे तो इस बात का पता नही था। ऐसा विचार कर अबन्ध स्वभावी निज भगवान आत्मा का आश्रय लेकर बहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह निज आत्मा मे विशेप एकाग्रता करके परमात्मा बन जाता है।

प्र० ७९–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'निर्जरा-तत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानता है और क्या करता है ?

उत्तर–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'निर्जरातत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करता है और चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्र० ८०–जिन-जिनवर-जिनवर वृषभो से कथित निर्जरातत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विशेष स्पष्टीकरण कहा देखें।

उत्तर–जन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले मे ३९३ प्रश्नोतर से ४११ प्रश्नोत्तर तक देखियेगा।

मोक्षतत्त्व का ज्यों का श्रद्धान

प्र० ८१–छहढाला मे, 'मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' के विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर–(१)सकल कर्म तै रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।

भावार्थ –आठ कर्मो के सर्वथा नाशपूर्वक आत्मा की जो सम्पूर्ण शुद्ध दशा प्रकट होती है उसे मोक्ष कहते है। वह दशा अविनाशी तथा अनन्त सुखमय है।

प्र० ८२–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो ने 'मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' किसे बताया है?

उत्तर–आत्मा की परिपूर्ण शुद्ध दशा का प्रगट होना मोक्षतत्व है। मोक्ष मे सम्पूर्ण आकुलता का अभाव है और पूर्ण स्वाधीन निराकुल सुख है।

प्र० ८३–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' से क्या लाभ रहा।

उत्तर–अनन्त ज्ञानियो का एक मत है-ऐसा पता चल जाता है।

प्र० ८४–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान, सुनकर ज्ञानी क्या जानते है और क्या करते है?

उत्तर–केवली के समान 'मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान करते है और त्रिकाल मोक्षस्वरुप निज भगवान आत्मा मे विशेष एकाग्रता करके परमात्मा बन जाते है।

प्र० ८५–जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान,' सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख पात्र भव्य मिथ्यादृष्टि जीव क्या जानते है और क्या करते है?

उत्तर–अहो-अहो! जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, 'मोक्षतत्त्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' महान उपकारी है, मुझे तो इस बात का पता ही नही था–ऐसा विचारकर त्रिकाल मोक्ष स्वरूप निज

भगवान आत्मा का आश्रय लेकर वहिरात्मपने का अभाव करके अन्तरात्मा बनकर ज्ञानी की तरह मोक्षस्वरुप निज आत्मा मे विशेप एकाग्रता करके परमात्मा वन जाता है।

प्र० ८६—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, मोक्ष-तत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' सुनकर दीर्घ संसारी मिथ्यादृष्टि क्या जानता है और क्या करता है ?

उत्तर—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित 'मोक्षतत्व का ज्यो का त्यो श्रद्धान' का विरोध करता है और चारो गतियो मे घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्र० ८७—जिन-जिनवर और जिनवर वृषभो से कथित, मोक्ष तत्व का ज्यों का त्यो श्रद्धान, का विशेष स्पष्टीकरण कहा देखें ?

उत्तर—जैन सिद्धात प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरा पाठ पहिले मे ४१२ प्रश्नोत्तर से ४२६ प्रश्नोत्तर तक देखियेगा।

प्र० ८८—मोक्षमार्ग प्रकाशक नवमे अधिकार मे, 'साततत्वो का ज्यो का त्यो श्रद्धान के विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर—'तत्वार्थ श्रद्धान करने का अभिप्राय केवल उनका निश्चय करना मात्र ही नही है। वहा अभिप्राय ऐसा है कि (१) जीव-अजीव को पहिचानकर अपने को तथा पर को जैसा का तैसा माने अर्थात् अपने को आप रुप जानकर पर का अश भी अपने मे न मिलाना और अपना अश भी पर मे न मिलाना। (२) आस्रव को पहिचानकर उसे हेय माने। (३) तथा बन्ध को पहिचानकर उसे अहित माने। (४) तथा सवर को पहिचानकर उसे प्रगट करने योग्य उपादेय माने।(५) तथा निर्जरा को पहिचानकर उसे हित का कारण माने। (६) तथा

मोक्ष को पहिचानकर उसको अपना परम हित प्रगट करने योग्य माने – ऐसा तत्त्वार्थ श्रद्धान का ज्यो का त्यो अभिप्राय है।

प्र० ८९–'इहिविध जो सरधा तत्वन कों, सो समकित व्यवहारी' इसका भाव क्या है ?

उत्तर—इस प्रकार प्रश्नोत्तर ३८ से ८८ प्रश्नोत्तर तक सात तत्त्वो का भेद सहित श्रद्धा न करना सो व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

प्र० ९०–निश्चय सम्यग्दर्शन का निमित्त कारण कौन है और उसे व्यवहार से क्या कहा जाता है ?

उत्तर- देव, जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो। ये हु मान समकित को कारण। भावार्थ –जिनेन्द्रदेव, वीतरागी दिगम्बर जैन गुरु तथा जिनेन्द्रप्रणीत अहिसामय धर्म भी उस व्यवहार सम्यग्दर्शन के (निमित्त) कारण है। अर्थात इन तीनो का यथार्थ श्रद्धान भी व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है।

प्र० ९१–सम्यक्त्व को किससे सहित और किससे रहित धारण करना चाहिये ?

उत्तर–अष्ट-अग-जुत धारो। वसुमद टारि, निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो। शकादिक वसु दोष विना, सवेगादिक चित्त पागो। भावार्थ –(१) उस सम्यग्दर्शन को आठ अगो सहित धारण करना चाहिए। (२) आठ मद, तीन मूढता, छह अनायतन, और आठ शकादि दोप–इस प्रकार सम्यक्त्व के पच्चीस दोषो का त्याग करना चाहिए। (३) सवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य और प्रशम सम्यग्दृष्टि मे पाए जाते है।

प्र० ९२–जब जीव को सम्यक्त्व होता है जो उसमे आठ अंग

प्रगट होते है और पच्चीस दोष होने ही नही हैं तब फिर सम्यक्त्व को आठ अंग सहित और पच्चीस दोषो से रहित का वर्णन क्यो करते हैं ?

उत्तर–अष्ट अग अरु दोष पच्चीसो, तिन सक्षेपै कहिये।
विन जाने तै दोप गुनन को, कैसे तजिए गहिये ॥११॥

भावार्थ –सम्यक्त्व के आठ अगो और पच्चीस दोषो का सक्षेप मे वर्णन किया जाता है, क्योकि जाने और समझे विना दोपो को कैसे छोडा जा सकता है तथा गुणो को कैसे ग्रहण किया जा सकता है।

प्र० ९३–आत्मज्ञानी सम्यग्दृष्टि को कौन से आठ अंग प्रगट होते है और कौन से दोष उत्पन्न नही होते है?

उत्तर—(१) जिन वच मे शका न धार (२) वृष, भव-सुख वाछा भानै (३) मुनि-तन मलिन न देख घिनावै (४) तत्त्व-कुतत्त्व पिछानै (५) निज गुण अरु पर औगुण ढाके, वा निज धर्म वढावै। (६) कामादिक कर वृष तै चिगते, निज–पर को सु दिढावै ॥१२॥ धर्मी सो गौ–वच्छ प्रीति सम, (८) कर जिन धर्म दिपावै। इन गुण तै विपरीत दोप वसु, तिनको सतत खिपावै ॥

भावार्थ —[अ] आत्म ज्ञानी जीव के मन मे कभी भी (१) तत्वार्थ श्रद्धान मे शका नही होती और मुक्ति मार्ग साधने मे रत रहते है। (२) चित्त मे दूसरी अन्य कोई वाछा उत्पन्न नही होती है। (३)मुनिजनो के देह की मलिनता देखकर जरा भी ग्लानि नही करते हैं। (४) तत्त्व और कुतत्त्व के निर्णय मे मूर्ख नही रहते है। (५) अन्तर हृदय मे सर्व जीवो के प्रति विशेष दया रूप कोमल परिणाम रहता है। धर्मात्मा के गुणो को प्रसिद्ध करते है तथा अवगुणो को ढांकते है। (६) धर्मात्मा जीवो को धर्म मे शिथिल होता जाने तो हर सम्भव उपाय के द्वारा उन्हे मोक्षमार्ग मे स्थिर करते हैं।

(७)साधर्मी बन्धुओ को देखकर उनके प्रति गौ-वत्स समान प्रीति करते है। (८) ऐसे सभी धर्म कार्यो को करते है कि जिससे धर्म की अतिशय महिमा प्रसिद्ध हो-इत्यादि प्रमाण सम्यक्त्व होने पर नि शकितादि आठ गुण तत्काल प्रगट हो जाते है। [आ] इन आठ गुणो से विपरीत (१) शका, (२) काक्षा, (३) विचिकित्सा, (४) मूढ दृष्टि, (५) अनूपगूहन, (६) अस्थितिकरण (७) अवात्सल्य और (८) अप्रभावना रुप आठ दोष उत्पन्न ही नही होते है।

प्र० ९४-सम्यग्दृष्टि जीव को कौन-कौन से आठ मद नही होते है और क्यो नही होते है ? और होते है तो क्या होता है?

उत्तर-पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तौ मद ठानै।
मद न रुप कौ मद न ज्ञान कौ, धन वल कौ मद भानै।१३
तप कौ मद न मद जु प्रभुता को, करै न सौ निज जानै।
मद धारे तो यही दोष वसु समकित कौ मल ठानै ॥

भावार्थ–[अ] सम्यग्दृष्टि जीव का (१) पिता राजा होवे तो उसका भी कुलमद नही होता है। (२) मामा राजा होवे तो उसका भी जातिमद नही होता है। (३) वैभव धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति होने का भी मद नही होता है। (४) सुन्दर रुप का भी मद नही होता है। (५) ज्ञान का भी मद नही होता है। (६) शरीर मे विशेष बल हो तो उसका भी मद नही होता है। (७) लोक मे कोई मुखिया–प्रधान पद आदि अधिकार का भी मद नही होता है। (८) धन–सम्पत्ति कोष का भी मद नही होता है। [आ] जिसने रागादि विभाव भावो को छोडकर उनसे भिन्न आत्मा का ज्ञान प्रगट किया है उसको जाति आदि आठ प्रकार के अस्थिर नाशवान वस्तुओ का मद कैसे हो सकता है ? कभी भी नही हो सकता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को आठ प्रकार के मदो का अभाव वर्तता है। [इ] यदि उनका गर्व करता है तो यह मद सम्यग्दर्शन के आठ दोप बनकर उसे दूषित करते है।

प्र० ६५–छह अनायतन और तीन मूढता दोष क्या-क्या है जो सम्यग्दृष्टि मे नही पाये जाते है ?

उत्तर–कुगुरू-कुदेव-कुवृष सेवक की नहि प्रशस उचरै है।
जिन मुनि जिन श्रुत बिन कुगुरूादिक, तिन्है न नमन करै है ॥१४।

भावार्थ – (१) कुगुरू, कुदेव, कुधर्म, कुगुरूसेवक, कुदेव सेवक तथा तथा कुधमसेवक—यह छह अनायतन दोप कहलाते है। उनकी भक्ति विनय और पूजनादि तो दूर रही, किन्तु सम्यग्दृष्टि जीव उनकी प्रशसा भी नही करता, क्यो कि उनकी प्रशसा करने से भी सम्यक्त्व मे दोष लगता है। (२) सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्रदेव, वीतरागीमुनि, और जिनवाणी के अतिरिक्त कुदेव, कुगुरु और कुशास्त्रादि को भय-आशा-लोभ और स्नेह आदि के कारण भी नमस्कार नही करता, क्यो कि उन्हे नमस्कार करने मात्र से भी सम्यक्त्व दूपित हो जाता है। (३) कुगुरू सेवा, कुदेव सेवा तथा कुधर्म सेवा—यह तीन भी सम्यक्त्व के मूढता नामक दोष है।

प्र० ६६–सम्यग्दृष्टि जीव कौन हैं ?

उत्तर-शकादि आठ दोप, आठ मद तीन मूढता और छह अनायतन–ये पच्चीस दोप जिसमे नही पाये जाते है—वह जीव सम्यग्दृष्टि है।

प्र० ६७-(१) क्या अव्रती सम्यग्दृष्टि की देवो द्वारा पूजा (२) और गृहस्थपने मे अप्रीति होती है ?

उत्तर–दोप रहित गुण सहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजै है।
चरित मोहवश लेश न सजम, पै सुरनाथ जजै है।
गेही, पै गृह मे न रचै ज्यो जलतै भिन्न कमल है।
नगर नारि कौ प्यार यथा, कादे मे हेम अमल है ॥१५॥

भावार्थः—(१) जो विवेकी पच्चीस दोष रहित तथा आठ गुण सहित

सम्यग्दर्शन धारण करते है, उन्हे अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के तीव्र उदय मे युक्त होने के कारण यद्यपि सयमभाव लेशमात्र भी नही दिखता है तथापि इन्द्रादि उनका आदर करते है। (२) [अ] जिस प्रकार पानी मे रहने पर भी कमल पानी से अलिप्त रहता है; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि घर मे रहते हुये भी गृहस्थपने मे लिप्त नही होता परन्तु उदासीन रहता है। [आ] जिस प्रकार वेश्या का प्रेम मात्र पैसे मे ही होता है, मनुष्य पर नही होता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का प्रेम निज आत्मा मे ही होता है, किन्तु गृहस्थपने मे नही होता है। [इ] जिस प्रकार सोना कीचड मे पडे रहने पर भी निर्मल रहता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थपने मे दीखने पर भी उसमे लिप्त नही होता है, क्योकि वह उसे त्यागने योग्य मानता है। [ई] जैसे रोगी औषधि सेवन को अच्छा नही मानता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थ सम्बन्धी राग को अच्छा नही मानता है। (३) जैसे बन्दी कारागृह मे रहना नही चाहता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि गृहस्थपने मे रहना नही चाहता है।

प्र० ६८–(१) सम्यग्दृष्टि जीव कहा-कहा उत्पन्न नही होते है, (२) कहां-कहां उत्पन्न होते है (३) सुखदायक वस्तु कौन है (४) और सर्व धर्मो का मूल कौन है ?

उत्तर–प्रथम नरक विन षट् भू ज्योतिष वान भवन षड नारि;
थावर विकलत्रय पशु मे नहि, उपजात सम्यक धारी।
तीन लोक तिहुँ काल माँहि नहि, दर्शन सो सुखकारी,
सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ॥१६॥

भावार्थ –सम्यग्दृष्टि जीव आयु पूर्ण होने पर जब मृत्यु प्राप्त करते है तब दूसरे से सातवे नरक के नारकी, ज्योतिषी व्यन्तर, भवनवासी, नपुसक, सब प्रकार की स्त्री, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और कर्मभूमि के पशु नही होते है। (नीच फल वाले, विकृत अंग वाले, अल्पायु वाले तथा दरिद्री नही होते है। (२) विमानवासी देव, भोग-

भूमि के मनुष्य या भोगभूमि के तिर्यंच होते है। कदाचित नरक मे जाये तो पहले नरक से नीचे नही जाते है। (३) तीन लोक और तीन काल मे सम्यग्दर्शन के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नही है। (४) और सम्यग्दर्शन ही सब धर्मो का मूल है। सम्यग्दर्शन के बिना जितने क्रियाकाड है वे सब दु खदायक है।

प्र० ९९-(१) मोक्षमहल मे पहुंचने की प्रथम सीढी कौन सी है? (२) सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान-चारित्र क्या है? (३) पात्र जीव को क्या करना चाहिए (४) पं० जी की सीख क्या है? (५) और सम्यक्त्व प्राप्त न किया तो क्या होगा?

उत्तर—मोक्ष महल की प्रथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा,
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।
'दौल' समझ, सुन, चेत, सयाने, काल वृथा मत खोवै,
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक नहि हौवे ॥१७॥

भावार्थ – (१) सम्यग्दर्शन ही मोक्षरुपी महल मे पहुँचने की प्रथम सीढी है। (२) सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्या चारित्र कहलाता है। (३) इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी को निज आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिये (४) दौलतराम जी कहते है–'हे विवेकी आत्मा! तू पवित्र सम्यग्दर्शन के स्वरूप को स्वय सुनकर अन्य अनुभवी ज्ञानियो से प्राप्त करने मे सावधान हो, अपने मनुष्य जीवन को व्यर्थ न खो। (५) और इस मनुष्य जन्म मे यदि सम्यक्त्व प्राप्त न किया तो फिर मनुष्य पर्याय आदि अच्छे योग पुन पुन प्राप्त नही होते है।

प्र० १००–मोक्षमार्ग प्रकाशक नवमे अधिकार मे इस विषय मे क्या बताया है?

उत्तर–(१) जो विचारशक्ति सहित हो और जिसके रागादिक मन्द हो वह जीव पुरुषार्थ से उपदेशादिक के निमित्त से तत्त्व निर्ण-

यादि मे उपयोग लगाये तो उसका उपयोग वहाँ लगे और तब उसका भला हो। (२) यदि इस अवसर मे भी तत्त्व निर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गवाये, या तो मन्द रागादि सहित विषय कषायो के कार्यो मे ही प्रवर्ते या व्यवहार धर्म कार्यो मे प्रवर्ते, तब अवसर तो चला जावेगा और ससार मे ही भ्रमण होगा। (३) इसलिये अवसर चूकना योग्य नही है। अब सर्व प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। इसलिये श्री गुरु दयालु होकर मोक्ष मार्ग का उपदेश दे, उसमे भव्य जीवो को प्रवृत्ति करना।

चौथी, पांचवी, छठी ढ़ाल के सारांश पर
२० प्रश्नोत्तर

प्र० १–सम्यग्दर्शन के अभाव मे जो ज्ञान होता है उसे क्या कहा जाता है (२) और सम्यग्दर्शन होने के पश्चात जो ज्ञान होता है उसे क्या कहा जाता है ?

उत्तर–(१) सम्यग्दर्शन के अभाव मे जो ज्ञान होता है उसे मिथ्या ज्ञान कहा जाता है (२) और सम्यग्दशन होने के पश्चात जो ज्ञान होता है उसे सम्यग्ज्ञान कहा जाता है।

प्र० २–सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रकट होते है फिर उनमे अन्तर किस-किस कारण से है ?

उत्तर–(१) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनो भिन्न-भिन्न गुणो की पर्यायि है। सम्यग्दर्शन श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय है और सम्यग्ज्ञान ज्ञान गुण की शुद्ध पर्याय है। (२) दोनो के लक्षण मे अन्तर है–सम्यग्दर्शन का लक्षण विपरीत अभिप्राय रहित तत्वार्थ श्रद्धा है और सम्यग्ज्ञान् का लक्षण सशय आदि दोष रहित स्व–पर का यथार्थतया निर्णय है। (३) दोनो मे कारण—कार्य भाव से भी अन्तर है। सम्यग्दर्शन निमित्त कारण है और सम्यग्ज्ञान नैमित्तिक कार्य है।

प्र० ३—ज्ञान-श्रद्धान तो एक साथ होते है, तो उनमें कारण-कार्यपना क्यो कहते हो?

उत्तर—"वह हो तो वह होता है" इस अपेक्षा से कारण—कार्यपना कहा है। जिस प्रकार दीपक और प्रकाश दोनो एक साथ होते है, तथापि दीपक हो तो प्रकाश होता है इसलिये दीपक कारण है और प्रकाश कार्य है, उसी प्रकार ज्ञान—श्रद्धान भी है।

प्र० ४—केवल ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—जो ज्ञान तीन काल और तीन लोकवर्ती सर्व पदार्थो को प्रत्येक समय मे यथास्थित, परिपूर्ण रुप से स्पष्ट और एक साथ जानता है उस ज्ञान को केवल ज्ञान कहते है।

प्र० ५—सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर—(१) इस ससार मे सम्यग्ज्ञान के समान सुखदायक अन्य कोई वस्तु नही है। (२) सम्यग्ज्ञान ही जन्म-जरा और मृत्यु रुपी तीनो रोगो का नाश करने के लिये उत्तम अमृत समान है।

प्र० ६—ज्ञानी और अज्ञानी के कर्म नाश के विषय मे क्या अन्तर है ?

उत्तर—(१) मिथ्यादृष्टि जीव को सम्यग्ज्ञान के बिना करोडो जन्म तक तप तपने से जितने कर्मो का नाश होता है। उतने कर्म सम्यग्ज्ञानी जीव के त्रिगुप्ति से क्षणमात्र मे नष्ट हो जाते है।

प्र० ७—सम्यग्ज्ञान का क्या प्रभाव है ?

उत्तर—पूर्वकाल मे जो जीव मोक्ष गये है, भविष्य मे जायेगे और वर्तमान मे महा विदेह क्षेत्र से जा रहे है। यह सब सम्यग्ज्ञान का ही प्रभाव है।

प्र० ८—और सम्यग्ज्ञान कैसा है ?

उत्तर—जिस प्रकार मूसलाधार वर्षा वन की भयकर अग्नि को क्षण मात्र मे बुझा देती है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान विषय वासना को

क्षणमात्र मे नष्ट कर देता है।

प्र० ६–आत्मार्थी को क्या करना चाहिये?

उत्तर–आत्मा और पर वस्तुओ का भेद विज्ञान होने पर सम्यग्ज्ञान होता है। इसलिये सशय, विपर्यय और अनध्यवसाय का त्याग करके तत्त्व के अभ्यास द्वारा सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

प्र० १०–आत्मार्थी को सम्यग्ज्ञान क्यो प्राप्त करना चाहिये ?

उत्तर–मनुष्य पर्याय, उत्तम श्रावक कुल और जिनवाणी का सुनना आदि सुयोग बारम्बार प्राप्त नही होते है–ऐसा दुर्लभ सुयोग प्राप्त करके सम्यग्ज्ञान प्राप्त न करना मूर्खता है।

प्र० ११—प्रत्येक आत्मार्थी को प्रथम क्या करना चाहिये ?

उत्तर–धन समाज गज बाज, राज तो काम न आवै,
ज्ञान आपको रुप भये, फिर अचल रहावै,
तास ज्ञान को कारन, स्व-पर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनौ ॥७॥

भावार्थ -(१) धन-सम्पत्ति, परिवार, नौकर-चाकर, हाथी-घोडा तथा राज्यादि कोई भी पदार्थ आत्मा को सहायक नही होते, किन्तु सम्यग्ज्ञान आत्मा का स्वरुप है। वह एक बार स्वभाव का आश्रय लेकर प्राप्त कर लिया जाय, कभी नष्ट नही होता, अचल एक रुप रहता है। (२) निज आत्मा और पर वस्तुओ का भेद विज्ञान ही उस सम्यग्ज्ञान का कारण है। (३) इसलिये प्रत्येक आत्मार्थी भव्य जीव को करोडो उपाय करके उस भेद विज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए।

प्र० १२—छहढाला मे पुण्य-पाप मे हर्ष-विषाद का निषेध क्यो किया है ?

उत्तर—पुण्य-पाप फल माहि हरख विलखौ मत भाई,
यह पुद्गल पर जाय उपजि विनसै हर थाई।

भावार्थ–(१) आत्मार्थी जीव का कर्तव्य है कि धन-मकान-दुकान,

कीर्ति, निरोगी शरीरादि पुण्य के फल है। उनसे अपने को लाभ है या हानि है-ऐसा न माने (२) पर पदार्थ सर्वथा भिन्न है, ज्ञेय मात्र है- उनमे किसी को अनुकूल-प्रतिकूल मानना मात्र जीव की भूल है। (३) इसलिए पुण्य-पाप के फल मे हर्ष-शोक नही करना चाहिए ।

प्र० १३-सर्व शास्त्रो का सार क्या है ?

उत्तर-लाख बात की बात यही निश्चय उर लाओ।
तोरि सकल जग दद-फद, नित आतम ध्याओ ॥९॥

भावार्थ-जैन धर्म के समस्त उपदेश का सार यही है कि शुभाशुभ ही ससार है। उसकी रुचि छोडकर स्वोन्मुख होकर निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान पूर्वक निज आत्मस्वरुप मे एकाग्र होना ही जीव का परम कर्तव्य है ।

प्र० १४-सम्यग्ज्ञान प्राप्त करके फिर क्या करना चाहिये ?

उत्तर-सम्यक्चारित्र प्रगट करना चाहिए। साधक को जितनी शुद्धि होती है वह चारित्र है और अशुद्धि है वह पुण्य बन्ध का कारण होने से हेय है। अपने मे पूर्ण लीन होकर पूर्ण परमात्मदशा प्राप्त करनी चाहिये।

प्र० १५-स्वरुपाचरण चारित्र किसे कहते है ?

उत्तर-जिस चारित्र के होने से समस्त पर पदार्थो से वृत्ति हट जाती है। वर्णादि तथा रागादि से चैतन्य भाव को पृथक कर लिया जाता है। अपने आत्मा मे, आत्मा के लिये, आत्मा द्वारा, अपने आत्मा का ही अनुभव होने लगता है। वहा नय, प्रमाण, निक्षेप, गुण-गुणी, ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय, ध्यान-ध्याता-ध्येय, कर्ता-कर्म और क्रिया आदि भेदो का किंचित् विकल्प नही रहता है। शुद्ध उपयोग रुप अभेद रत्नत्रय द्वारा शुद्ध चैतन्य का ही अनुभव होने लगता है उसे स्वरुपाचरण चारित्र कहते है।

प्र० १६-यहा स्वरुपाचरण चारित्र किसे किसे कहा है ?

उत्तर-(१) अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव रुप दशा को। (२)

दो चौकडी कषाय के अभाव रुप देश चारित्र को। (३) तीन चौकडी कषाय के अभाव रूप सकलचारित्र को। (४) और सज्वलनादि के अभाव रूप यथाख्यात चारित्र को स्वरुपाचरण चारित्र कहा है।

प्र० १७–स्वरुपाचरण चारित्र कौन से गुणस्थान से शुरु होकर पूर्ण होता है ?

उत्तर–चौथे गुणस्थान से प्रारम्भ होकर मुनिदशा मे अधिक उच्च होकर १२वे गुणस्थान मे पूर्ण होता है।

प्र० १८—यदि शान्ति की इच्छा हो तो क्या करना ?

उत्तर–आलस्य को छोडकर, आत्मा कर्तव्य समझकर, रोग और वृद्ध अवस्था आदि आने से पूर्व ही मोक्षमार्ग मे प्रवृत्त हो जाना चाहिए।

प्र० १६—प्रत्येक अज्ञानी जीव ने अनादि से क्या किया और उससे क्या नही हुआ ?

उत्तर–(१) प्रत्येक ससारी जीव मिथ्यात्व, कषाय और विषयो का सेवन तो अनादिकाल से करता आया है, किन्तु उससे उसे किंचित् शान्ति प्राप्त नही हुई।

प्र० २०— छहढ़ाला मे अन्तिम शिक्षा क्या दी है ?

उत्तर–मनुष्यपर्याय, सत्समागम आदि सुयोग बारम्बार प्राप्त नही होते है। इसलिए उन्हे व्यर्थ न गवाकर अवश्य ही आत्महित साध लेना चाहिए।

———

पांचवा अधिकार

चार प्रकार की इच्छाओं का स्पष्टीकरण

प्र० १–चार प्रकार की इच्छाओ का वर्णन किस शास्त्र से आपने प्रश्नोत्तारो के रुप मे संग्रह किया है ?

उत्तर—सत्ता स्वरुप से प्रश्नोत्तरो के रुप मे सग्रह किया है।

प्र० २–सत्ता स्वरुप से प्रश्नोत्तरों के रुप मे क्यो संग्रह किया है?

उत्तर—अज्ञानी जीव को अपनी भूल का पता लगे और वह भूल रहित अपने स्वभाव का आश्रय लेकर भूल का अभाव करके सुखी हो-ऐसी भावना से ही सग्रह किया है।

प्र० ३–इच्छा रुप रोग क्या है और कब से है ?

उत्तर-अज्ञान से उत्पन्न होने वाली इच्छा ही निश्चय से दुख है वह तुम्हे बतलाते है। यह ससारी जीव अनादि से अष्ट कर्म के उदय से उत्पन्न हुई जो अवस्था उस रूप परिणमित होता है। वहाँ भिन्न परद्रव्य, सयोगरूप परद्रव्य, विभाव परिणाम तथा ज्ञेयश्रुतज्ञान के षड्रूप भावपर्याय के धर्म उनके साथ अहकार–ममकाररूप कल्पना करके परद्रव्यो को मिथ्या इष्ट-अनिष्टरूप मानकर मोह-राग-द्वेष के वशीभूत होकर किसी परद्रव्य को आपरूप मान लेता है। जिसे इष्ट-रूप मान लेता है उसे ग्रहण करना चाहता है तथा जिसे पररूप-अनिष्ट मान लेता है उसे दूर करना चाहता है, इस प्रकार जीव को अनादिकाल से एक इच्छारूप रोग अन्तरग मे शक्तिरूप उत्पन्न हुआ है उसके चार भेद है।

प्र० ४–इच्छा के चार भेद कौन-कौन से है ?

उत्तर-(१) मोहइच्छा (२) कषाय इच्छा (३) भोग इच्छा (४) रोगाभाव इच्छा।

प्र० ५–क्या चार प्रकार की इच्छा एक ही साथ होती है ?

उत्तर–वहा इन चार मे से एक काल मे एक ही की प्रवृत्ति होती है। किसी समय किसी इच्छा की और किसी समय किसी इच्छा की होती रहती है।

प्र० ६–चार प्रकार की इच्छा किसके पाई जाती है, किसके नही पाई जाती है ?

उत्तर–वहा मूल तो मिथ्यात्वरूप मोहभाव एक सच्चे जैन बिना सर्व संसारी जीवो को पाया जाता है।

प्र० ७–मोह इच्छा क्या है ?

उत्तर–प्रथम मोह इच्छा कार्य इस प्रकार है–स्वय तो कर्मजनित पर्यायरूप बना रहता है, उसी मे अहकार करता रहता है कि मै मनुष्य हूँ, तिर्यच हूँ इस प्रकार जैसी-जैसी पर्याय होती है उस-उस रूप ही स्वय होता हुआ प्रवर्तता है। तथा जिस पर्याय मे स्वय उत्पन्न होता है उस सम्बन्धी सयोगरूप व भिन्न रूप परद्रव्य जो हस्तादि अगरूप व धन, कुटुम्ब, मन्दिर ग्राम आदि को अपना मानकर उनको उत्पन्न करने के लिये व सम्बन्ध सदा बना रहे उसके लिये उपाय करना चाहता है। तथा सम्बन्ध हो जाने पर सुखी होना, मग्न होना व उनके वियोग मे दु खी होना शोक करना अथवा ऐसा विचार आए कि मेरे कोई आगे-पीछे नही इत्यादिरूप आकुलता का होना उसका नाम मोह इच्छा है।

प्र० ८–क्रोध क्या है ?

उत्तर–किसी परद्रव्य को अनिष्ट मानकर उसे अन्यथा परिणमन कराने की, उसे बिगाडने की व सत्तानाश कर देने की इच्छा वह क्रोध है।

प्र० ९–मान क्या है ?

उत्तर–किसी परद्रव्य का उच्चपना न सुहाये व अपना उच्चपना प्रगट होने के अर्थ परद्रव्य से द्वेष करके उसे अन्यथा परिणमन कराने की इच्छा हो उसका नाम मान है।

प्र० १०—माया क्या है ?

उत्तर-किसी परद्रव्य को इष्ट मानकर उसे प्राप्त करने के लिये व सम्बन्ध बना रखने के लिए व उसका विघ्न दूर करने के लिए जो छल-कपटरूप गुप्त कार्य करने की इच्छा का होना उसे माया कहते है।

प्र० ११—लोभ क्या है ?

उत्तर-अन्य किसी परद्रव्य को इष्ट मानकर उससे सम्बन्ध मिलाने व सम्बन्ध रखने की इच्छा होना सो लाभ है।

प्र० १२—कषाय इच्छा क्या है ?

उत्तर—इस प्रकार उन चार प्रकार की प्रवृत्ति का नाम कषाय इच्छा है।

प्र० १३—भोग इच्छा क्या है ?

उत्तर—पाच इन्द्रियो को प्रिय लगनेवाले जो परद्रव्य उनको रति-रूप भोगने की इच्छा का होना उसका नाम भोग इच्छा है।

प्र० १४ रोगाभाव इच्छा क्या है ?

उत्तर-क्षुधा-तृषा, शीत-उष्णादि व कामविकार आदि को मिटाने के लिये अन्य परद्रव्यो के सम्बन्ध की इच्छा होना उसका नाम रोगा-भाव इच्छा है।

प्र० १५—जब मोह इच्छा की प्रबलता हो तब बाकी तीन इच्छाओं का क्या होता है ?

उत्तर- इस प्रकार चार प्रकार की इच्छा है, उनमे से किसी एक ही इच्छा की प्रबलता रहती है तथा शेष तीन इच्छाओ की गौणता रहती है।

प्र० १६—जब मोह इच्छा प्रबल हो तब कषाय इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर— जैसे-मोह इच्छा प्रबल हो तो तब पुत्रादिक के लिये पर-

देश जाता है, वहा भूख-तृषा, शीत-उष्णतादि का दुःख सहन करता है, स्वय भूखा रहता है और अपना मान-मद खोकर भी कार्य करता है, अपना अपमानादिक करवाता है, छलादिक करता है तथा धनादिक खर्च करता है, इस प्रकार मोहइच्छा प्रबल रहने पर कषाय इच्छा गौण रहती है।

प्र० १७—जब मोह इच्छा प्रबल हो तब भोग इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—अपने हिस्से का भोजन, वस्त्रादि पुत्रादि, कुटुम्बियो को अच्छे-अच्छे लाकर देता है, अपने को रूखा-सूखा-बासी खाने को मिले तो भी प्रसन्न रहता है। जिस-तिस प्रकार अपने भी भागो को जबर-दस्ती देकर उनको प्रसन्न रखना चाहता है। इस प्रकार भोग इच्छा की भी गौणता रहती ।

प्र० १८—जब मोह इच्छा प्रबल हो तब रोगाभाव इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—तथा अपने शरीरादि मे रोगादि कष्ट आने पर भी पुत्रादि के लिए परदेश जाता है। वहा क्षुधा-तृषा, शीत-उष्णादि की अनेक बाधाए सहन करता है। स्वय भूखा रहकर भी उनको भोजनादि खिलाता है। स्वय शीतकाल मे भीगे तथा कठोर बिस्तर पर सोकर भी उनको सूखे तथा कोमल बिस्तरो पर सुलाता है, इस प्रकार रोगाभाव इच्छा गौण रहती है। इस प्रकार मोहइच्छा की प्रबलता रहती है।

प्र० १९—जब कषाय इच्छा प्रबल हो तब मोह इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—कषाय इच्छा की प्रबलता होने पर पितादि, गुरुजनो को मारने लग जाता है, कुवचन कहता है, नीचे गिरा देता है, पुत्रादि को मारता, लडता है, बेच देता है, अपमानादि करता है, अपने शरीर को भी कष्ट देकर धनादि का सग्रह करता है तथा कषाय के वशीभूत

होकर प्राण तक भी दे देता है इत्यादि इस प्रकार कपाय इच्छा प्रबल होने पर मोह इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० २०–क्रोध कपाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर–कोध कषाय प्रबल होने पर अच्छा भोजनादि नही खाता. वस्त्रा-भरणादि नही पहिनता है, सुगन्ध आदि नही सू घता, सुन्दर वर्णादि नही देखता, सुरीला रागरागणी आदि नही सुनता, इत्यादि विपय-सामग्री को बिगाड देता है, नष्ट कर देता है अन्य का घात कर देता है तथा नही बोलने योग्य निद्य वाक्य बोल देता है इत्यादि कार्य करता है।

प्र० २१–मान कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर–मान कपाय तीव्र होने पर स्वय उच्च होने का, दूसरो को नीचा दिखाने का सदा उपाय करता रहता है। स्वय अच्छा भोजन लेने पर, सुन्दर वस्त्र पहिनने पर, सुगन्ध सू घने पर, अच्छा वर्ण देखने पर मधुर राग सुनने पर अपने उपयोग को उसमे नही लगाता, उसका कभी चितवन नही करता तथा अपने को वे चीजे कभी प्रिय नही लगती, मात्र विवाहादि अवसरो के समय अपने को ऊचा रखने के लिए अनेक उपाय करता है।

प्र० २२–लोभ कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर–लोभ कषाय तीव्र होने पर अच्छा भोजन नही खाता है, अच्छे वस्त्रादि नही पहिनता, सुगन्ध विलेपनादि नही लगाता, सुन्दर रूप को नही देखता तथा अच्छा राग नही सुनता, मात्र धनादि सामग्री उत्पन्न करने की बुद्धि रहती है। कजूस जैसा स्वभाव होता है।

प्र० २३–माया कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर–माया कषाय तीव्र होने पर अच्छा नही खाता, वस्त्रादि अच्छे नही पहिनता, सुगन्धित वस्तुओ को नही सू घता, रूपादिक नही देखता, सुन्दर रागादिक नही सुनता। मात्र अनेक प्रकार के

छल-कपटादि मायाचार का व्यवहार करके दूसरो को ठगने का कार्य किया करता है।

प्र० २४-क्रोधादि कषाय इच्छा प्रबल होने पर भोग इच्छा और रोगाभाव इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—इत्यादि प्रकार से क्रोध-मान-लोभ कषाय की प्रवलता होने पर भोग-इच्छा गौण हो जाती है तथा रोगाभाव इच्छा मन्द हो जाती है।

प्र० २५- जब भोग इच्छा प्रबल हो तब मोह इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—जव भोग इच्छा प्रबल हो जाती है तब अपने पिता आदि को अच्छा नही खिलाता, सुन्दर वस्त्रादि नही पहिनाता इत्यादि। स्वय ही अच्छी-अच्छी मिठाइया आदि खाने की इच्छा करता है, खाता है,सुन्दर पतले बहुमूल्य वस्त्रादि पहिनता है और घरके कुटुम्बी आदि भूखे मरते रहते है, इस प्रकार भोग इच्छा प्रबल होने पर मोह-इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० २६- जब भोगइच्छा प्रबल हो तब कषाय इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—अच्छा खाने-पहिनने, सू घने, देखने, सुनने की इच्छा करता है,वहा कोई बुरा कहे तो भी क्रोध नही करता, अपना मानादि न करे तो भी नही गिनता, अनेक प्रकार की मायाचारी करके भी दु खो को भोगकर कार्य सिद्ध करना चाहता है तथा भोग इच्छा की प्राप्ति के लिये धनादि भी खर्च करता है । इस प्रकार भोग इच्छा प्रबल होने पर कषाय इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० २७- जव भोग इच्छा प्रबल हो तब रोगाभाव इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—अच्छा खाना, पहिनना, सू घना, देखना, सुनना आदि कार्य होने पर भी रोगादि का होना तथा भूख-प्यासादि कार्य प्रत्यक्ष

उत्पन्न होते जानकर भी उस विषय-सामग्री से अरुचि नही होती, जिस प्रकार स्पर्शन इन्द्रिय की प्रबल इच्छा के वश होकर हाथी गड्ढे मे गिरता है, रसनाइन्द्रिय के वश मे होकर मछली जाल मे फस मरती है, घ्राण इन्द्रिय के वश मे होकर भ्रमर कमल मे जीवन दे देता है, मृग कर्णइन्द्रिय के वश मे होकर शिकार की गोली से मरता है तथा नेत्रइन्द्रिय के वश होकर पतगा दीपक मे प्राण दे देता है। इस प्रकार भोग इच्छा के प्रबल होने पर रोगाभाव इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० २८—जब रोगाभाव इच्छा प्रबल हो तब मोह इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—जब रोगाभाव इच्छा प्रबल रहती है तब कुटुम्बादि को छोड देता है, मन्दिर मकान, पुत्रादि को भी बेच देता है, इत्यादि रोग की तीव्रता होने पर मोह पैदा होने से कुटुम्बादि सम्बन्धियो से भी मोहका सम्बन्ध छूट जाता है तथा अन्यथा परिणमन करता है। इस प्रकार रोगाभाव इच्छा प्रबल होने पर मोह इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० २९—जब रोगाभाव इच्छा प्रबल हो तब कषाय इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—कोई बुरा कहे तथा अपमानादि करे तब भी अनेक छल-पाखण्ड कर व धन खर्च करके भी अपने रोग को मिटाना चाहता है। इस प्रकार रोगाभाव इच्छा के प्रबल होने पर कषाय इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० ३०—जब रोगाभाव इच्छा प्रबल हो तब भोगइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर—तथा भूख-तृषा, शीत-गर्मी लगे व पीडा इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाए तब अच्छा-बुरा, मीठा-खारा और खाद्य-अखाद्य का भी विचार नही करता, खराब अखाद्य वस्तु को खाकर भी रोग मिटाना चाहता है, जैसे पत्थर व वाडके काटादि खाकर भी भूख

मिटाना चाहता है, इस प्रकार रोगाभाव इच्छा होने पर भोग इच्छा गौण हो जाती है।

प्र० ३१–अज्ञानी के इच्छा नामक रोग सदा क्यों बना रहता है?

उत्तर–एक काल मे एक इच्छा की मुख्यता रहती है और अन्य इच्छा की गौणता हो जाती है, परन्तु मूल मे इच्छा नामक रोग सदा बना रहता है।

प्र० ३२–ससार मे दु खी होता हुआ जीव क्यो भ्रमण करता है ?

उत्तर–जिनको नवीन-नवीन विपयो की इच्छा है उन्हे दु ख स्वभाव ही से होता है यदि दु ख मिट गया हो तो वह नवीन विषयो के लिए व्यापार किसलिये करे? यही बात श्री प्रवचनसार गाथा ६४ मे कही है कि —

भावार्थ – जिस प्रकार रोगी को एक औषधि के खाने से आराम हो जाना है तो वह दूसरी औषधि का सेवन किसलिए करे? उसी प्रकार एक विषय सामग्री के प्राप्त होने पर ही दु ख मिट जाये तो वह दूसरी विषय सामग्री किसलिए चाहे ? क्योंकि इच्छा तो रोग है और इच्छा मिटाने का इलाज विपय सामग्री है। अब एक प्रकार की विषय सामग्री की प्राप्ति से एक प्रकार की इच्छा रुक जाती है परन्तु तृष्णा इच्छा नामक रोग तो अतर मे से नही मिटता है, इसलिये दूसरी अन्य प्रकार की इच्छा और उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार सामग्री मिलाते-मिलाते आयुपूर्ण हो जाती है और इच्छा तो बराबर तब तक निरन्तर बनी रहती है। उसके बाद अन्य पर्याय प्राप्त करते है तब उस पर्याय सम्बन्धी वहा के कार्यो की नवीन इच्छा उत्पन्न होती है। इस प्रकार संसार मे दु खी होता हुआ भ्रमण करता है।

प्र० ३३–दु ख का मूल कारण कौन है ?

उत्तर–अनिष्ट सामग्री के सयोग के कारण क और इष्ट सामग्री के वियोग के कारणो को विघ्न मानते हो, परन्तु आपने कुछ विचार

भी किया है ? यदि यही विघ्न हो तो मुनि आदि त्यागी तपस्वी तो इन कार्यो को अगीकार करते है, इसलिये विघ्न का मूल कारण अज्ञान-रागादि है, इस प्रकार दु ख व विघ्न का स्वरूप जानो ।

प्र० ३४—इच्छा के अभाव का क्या उपाय है ?

उत्तर-उसका इलाज सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है ।

प्र० ३५-आपने इच्छा के अभाव का उपाय सम्यग्दर्शनादि बताया है उसकी प्राप्ति कैसे हो ?

उत्तर-(१) केवलज्ञानी के केवलज्ञान को मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है । (२) निज आत्मा से परद्रव्यो का सर्वथा सम्बन्ध नही है-ऐसा मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है । (३) जैसा वस्तु स्वरुप है वैसा माने—जाने तो इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है । (४) मुझ आत्मा ज्ञायक और लोकालोक व्यवहार से ज्ञेय है-ऐसा मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है । (५) पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित होने से क्रोधादिकषाये होती है जब तत्त्व ज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट न हो तब चारो प्रकार की इच्छा का अभाव होकर स्वयमेव ही धर्म की प्राप्ति हो जाती है ।

पचास प्रश्नोत्तरों के रुप में
"समाधि–मरण का स्वरूप"

प्र० १- इस समाधिमरण का स्वरूप किस शास्त्र मे से लिया है ?

उत्तर–आचार्य कल्प श्री प० टोडरमल जी के सहपाठी और धर्म प्रभावना मे उत्साह प्रेरक श्रीयुत ब्र० रायमलजी कृत "ज्ञानानन्द निर्भर निजरस श्रावकचार" नामक ग्रथ (पृ० २२४ से २४३) मे से

यह अधिकार अति उपयोगी जानकर धर्म-जिज्ञासुओ के लिये यहाँ दिया गया ।

प्र० २- यह समाधिमरण किसने बनाया है ?

उत्तर–श्री 'बुधजन' जी के शब्दो मे—"यह समाधि–मरण स्वरुप प० श्री टोडरमल जी के सुपुत्र श्री प० गुमानीरामजी कृत ही है।"

प्र० ३- समाधिमरण किसे कहते है ?

उत्तर–हे भव्य ! तू सुन ! समाधि नाम नि कषाय का है, शान्त परिणामो का है, कषाय रहित शात परिणामो से मरण होना समाधि-मरण है। सक्षिप्त रुप से समाधिमरण का यही वर्णन है विशेष रूप से कथन आगे किया जा रहा है।

प्र० ४- सम्यग्ज्ञानी क्या इच्छा करता है ?

उत्तर—सम्यक्ज्ञानी पुरुष का यह सहज स्वभाव ही है कि वह समाधिमरण ही की इच्छा करता है, उसकी हमेशा यही भावना रहती है, अन्त मे मरण समय निकट आने पर वह इस प्रकार साव-धान होता है जिस प्रकार वह सोया हुआ सिह सावधान होता है जिसको कोई पुरुष ललकारे कि हे सिह! तुम्हारे पर बैरियो की फौज आक्रमण कर रही है, तुम पुरुपार्थ करो और गुफा से बाहर निकलो! जब तक बैरियो का समूह दूर है तब तक तुम तैयार हो जाओ बैरियो की फौज को जीत लो। महान् पुरुषो की यही रीति है कि वे शत्रु के जागृत होने से पहले तैयार होते है।

उस पुरुष के ऐसे वचन सुनकर शार्दूल तत्क्षण ही उठा और उस ने ऐसी गर्जना की कि मानो आषाढ मास मे इन्द्र ने ही गर्जना क हो ! सिह की गर्जना सुनकर बैरियो की फौज मे जो हाथी घोडा आदि थे वे सब कम्पायमान हो गये और वे सिह को जीतने मे समर्थ नही हुए। हाथियो ने आगे कदम रखना बन्द कर दिया उनके हृदय मे सिह के आकार की छाप पड गई है इसलिये वे धैर्य नही धारण कर रहे, क्षण-क्षण मे निहार करते है, उनसे सिह के पराक्रम का मुक

बला नही किया जा सकता। (इस उदाहरण को अब सम्यक्ज्ञानी की अपेक्षा से बताते है) सम्यक्ज्ञानी पुरुष तो शार्दूलसिह है और अष्ट-कर्म बैरी है। सम्यक्ज्ञानीरूपी सिह मरण के समय इन अष्टकर्मरूपी बैरियो को जीतने के लिए विशेप रुप से उद्यम करता है। मृत्यु को निकट जानकर सम्यक्ज्ञानी पुरुष सिह की तरह सावधान होता है और कायरपने को दूर ही से छोड देता है।

प्र० ५- सम्यग्दृष्टि कैसा होता है और कैसा नहीं होता है ?

उत्तर-उसके हृदय मे आत्मा का स्वरुप दैदीप्यमान प्रकट रूप से प्रतिभासता है। वह ज्ञान ज्योति को लिये आनन्दरस से परिपूर्ण है।

वह अपने को साक्षात् पुरुषाकार अमूर्तिक, चैतन्य धातुका पिड, अनन्त गुणो से युक्त चैतन्यदेव ही जानता है। उसके अतिशय से ही वह परद्रव्य के प्रति रचमात्र भी रागी नही होता है।

प्र० ६- सम्यग्दृष्टि रागी क्यो नही होता है ?

उत्तर-वह अपने निज-स्वरूप को वीतराग ज्ञाता-दृष्टा, पर द्रव्य से भिन्न, शाश्वत और अविनाशी जानता है और परद्रव्य को क्षण-भगुर, अशाश्वत, अपने स्वभाव से भली भाति भिन्न जानता है। इसलिये सम्यक्ज्ञानी रागी नही होता है और वह मरण से कैसे डरे ? न डरे।

प्र० ७-ज्ञानी पुरूष मरण के समय किस प्रकार की भावना व विचार करता है ?

उत्तर-"मुझे ऐसे चिन्ह दिखाई देने लगे है जिनसे मालूम होता है कि अव इस शरीर की आयु थोडी है इसलिये मुझे सावधान होना उचित है इसमे (देर) विलम्ब करना उचित नही है। जैसे योद्धा युद्ध की भेरी सुनने के बाद बैरियो पर आक्रमण करने मे क्षण मात्र की भी देर नही करता है और उसके वीर रस प्रकट होने लगता है कि "कब बैरियो से मुकाबला करु और कब उनको जीतू ।"

प्र० ८–काल को जीतने की इच्छा वाला सम्यग्दृष्टि क्या विचारता है ?

उत्तर–हे कुटुम्ब परिवार वालो! सुनो! देखो! इस पुद्गल पर्याय का चरित्र! यह देखते देखते उत्पन्न होती है और देखते ही नष्ट हो जाती है सो मैं तो पहले ही विनाशीक स्वभाव जानता था। अब इसके नाश का समय आ गया है। इस शरीर की आयु तुच्छ रह गई है और उसमे भी प्रति समय क्षण-क्षण कम हुआ जाता है किन्तु मैं ज्ञाता-दृष्टा हुआ इसके (शरीरका) नाश को देख रहा हूँ। मैं इसका पडौसी हूँ न कि कर्त्ता या स्वामी। मैं देखता हूँ कि इस शरीर की आयु कैसे पूर्ण होती है और कैसे इसका(शरीरका) नाश होता है यही मै तमाशगीर की तरह देख रहा हूँ। अनन्त पुद्गल परमाणु इकट्ठे होकर शरीर की पर्याय रुप परिणमते है, शरीर कोई भिन्न पदार्थ नही है और मेरा स्वरुप भी नही है! मेरा स्वरुप तो एक चेतन-स्वभाव शाश्वत अविनाशी है उसकी महिमा अद्भुत है सो मै किससे कहूँ ?

प्र० ९–पुद्गल पर्याय का महात्म्य क्या है ?

उत्तर–देखो! इस पुद्गल पर्याय का महात्म्य! अनन्त परमाणुओ का परिणमन इतने दिन एक-सा रहा, यह बडा आश्चर्य है। अब वे ही पुद्गल के विभिन्न परमाणु अन्य अन्य रुप परिणमन करने लगे है तो इसमे आश्चर्य क्या! लाखो मनुष्य इकट्ठे होकर मिलने से 'मेला' होता है। यह मेला पर्याय शाश्वत रहने लगे तो आश्चर्य समझना चाहिए। इतनेदिन तक लाखो मनुष्यो का परिणमन एक-सा रहा, ऐसा विचार करने वाला मनुष्य आश्चर्य मानता है। तत्पश्चात वे लाखो मनुष्य भिन्न-भिन्न दशो दिशाओ मे चले जाते है तब 'मेला' नाश हो जाता है। यह तो इन पुरुषो का अपना–अपना परिणमन ही है जोकि इनका स्वभाव है इसमे आश्चर्य क्या? इसी प्रकार शरीर का परिणमन नाश रुप होता है यह स्थिर कैसे रहेगा ?

प्र० ११–शरीर पर्याय को रखने मे कोई समर्थ न होने का क्या कारण है ?

उत्तर–तीन लोक मे जितने पदार्थ है वे सव अपने-अपने स्वभाव रूप परिणमन करते है। कोई किसी का कर्त्ता नही है, कोई किसी का भोक्ता नही, स्वय ही उत्पन्न होता हे स्वय ही नष्ट होता है, स्वय ही मिलता है, स्वय ही बिछुडता है, स्वय ही गलता है तो मैं इस शरीर का कर्त्ता और भोक्ता कैसे ? और मेरे रखने से यह (शरीर) कैसे रहे ? और उसी प्रकार मेरे दूर करने से यह दूर कैसे हो जाय ? मेरा इसके प्रति कोई कर्तव्य नही है, पहले झूठा ही अपना कर्त्तव्य मानता था। मै तो अनादिकाल से आकुल-व्याकुल होकर महादु ख पा रहा था। सो यह वात न्याय युक्त ही है। जिसका किया कुछ नही होता, वह परद्रव्य का कर्त्ता होकर उसे अपने स्वभाव के अनुसार परिणमाना चाहे तो वह दु ख पावे ही पावे।

प्र० ११–सम्यग्दृष्टि किसका कर्त्ता और भोक्ता है ?

उत्तर–मै तो इस ज्ञायकस्वभाव ही का कर्त्ता और भोक्ता हूँ और उसी का वेदन और अनुभव करता हूँ। इस शरीर के जाने से मेरा कुछ भी विगाड नही और इसके रहने से कुछ भी सुधार नही है। यह तो प्रत्यक्ष ही काष्ठ या पाषाण की तरह अचेतन द्रव्य है। काष्ठ, पाषाण और शरीर मे कोई भेद नही है। इस शरीर मे एक जानने का ही चमत्कार है सो वह मेरा स्वभाव है न कि शरीरका। शरीर तो प्रत्यक्ष ही मुर्दा है। मेरे निकल जाने पर इसे जला देते हैं। मेरे ही मुलाहिजे से इस शरीरका जगत द्वारा आदर किया जाता है।

प्र० १२–जगत को क्या खबर नही है कि आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न है?

उत्तर–आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न ही है। इसीसे जगतके लोग भ्रम के कारण ही, इस शरीरको, अपना जानकर, ममत्व करते है और इसको नष्ट होते देखकर दुखी होते है और शोक करते है। कि "हाय! हाय! मेरा पुत्र, तू कहाँ गया ? हाय! हाय!! मेरा पति तू कहा गया ?, हाय! हाय!! मेरी पुत्री तू कहा गई ? हाय पिता! तू कहा गया ? हाय इष्ट भ्रात! तू कहा गया?" इस प्रकार

अज्ञानी पुरुष पर्यायो को नष्ट होते देखकर दु खी होते है और महा-दु ख एव क्लेश पाते है।

प्र० १३–ज्ञानी पुरुष क्या विचार करते है ?

उत्तर–किसका पुत्र? किसकी पुत्री? किसका पति? किसकी स्त्री? किसकी माता ? किसका पिता ? किसकी हवेली ? किसका मन्दिर? किसका माल? किसका आभूपण और किमका वस्त्र? ये सव सामग्री झूठी, विनाशीक है अत ये सव उसी प्रकारसे अस्थिर है जैसे स्वप्न मे दिखा हुआ राज्य, इन्द्र जाल द्वारा बनाया हुआ तमाशा, भूतोकी माया या आकाश मे वादलो की शोभा। ये सव वस्तुयें देखने मे रमणीक लगती है किन्तु इनका स्वभाव विचारे तो कुछ भी नही है। यदि वस्तु होती तो स्थिर रहती और नष्ट क्यो होती? ऐसा जानकर मै त्रिलोक मे जितनी पुद्गल की पर्यायें है उन सवसे ममत्व छोडता हूँ और अपने शरीर से भी ममत्व छोडता हूँ इसीसे इसके नष्ट होने से मेरे परिणामो मे अशमात्र भी खेद नही है। ये शरीरादि सामग्री चाहे जैसे परिणमे मेरा कुछ प्रयोजन नही है। चाहे ये कम हो, चाहे भोगो, चाहे नष्ट हो जावो मेरा कुछ भी प्रमोजन नही है।

प्र० १४–मोह का स्वभाव कैसा है ?

उत्तर–अहो देखो ! मोह का स्वभाव ? ये सव सामग्री प्रत्यक्ष ही परवस्तु है और उसमे भी ये विनाशीक है और इस भव और परभव मे दु खदाई है तो भी यह ससारी जीव इन्हे अपना समझकर रखना चाहता है।

प्र० १५–ऐसा चरित्र देखकर ही ज्ञान-दृष्टि वाला जीव क्या जानता है ?

उत्तर–मेरा केवल 'ज्ञान' ही अपना स्वभाव है और उसे ही मै देखता हूँ और मृत्यु का आगमन देखकर नही डरता हूँ। काल तो इस शरीरका ग्राहक है मेरा ग्राहक नही है। जैसे मक्खी, मिठाई आदि स्वादिष्ट वस्तुओ पर ही जाकर वैठती है किन्तु अग्नि पर कदाचित् भी नही वैठती है उसी प्रकार काल (मृत्यु) भी दौड-दौडकर शरीर

ही को पकडता है। और मेरे से दूर ही भागता है। मै तो अनादि-काल से अविनाशी चतन्यदेव त्रिलोक द्वारा पूज्य पदार्थ हूँ। उस पर काल का जोर नही चलता। इस प्रकार कौन मरता है? और कौन जन्म लेता है? और कौन मृत्यु का भय करे? मुझे तो मृत्यु दीखती नही है। जो मरता है वह तो पहले ही मरा हुआ था और जीता है वह पहले ही जीता था। जो मरता है वह जीता नही और जो जीता है वह मरता नही है। किन्तु मोह दृष्टि के कारण विपरीत मालूम होता था अब मेरा मोहकर्म नष्ट हो गया इसलिये जैसा वस्तु का स्वभाव है वैसा ही मुझे दृष्टिगोचर होता है उसमे जन्म, मरण, दु ख, सुख दिखाई नही पडते। अत मै अब किस बात का सोच-विचार करूं? मै तो चैतन्यशक्ति वाला शाश्वत बना रहनेवाला हूँ उसका अवलोकन करते हुये दु ख का अनुभव कैसे हो ?

प्र० १६–मै कैसा हूं ?

उत्तर–मै ज्ञानानन्द, स्वात्म रससे परिपूर्ण हूँ, और शुद्धोपयोगी हुआ ज्ञानरस का आचरण करता हूँ और ज्ञानाजलि द्वारा उस अमृत का पान करता हूँ। वह अमृत मेरे स्वभाव से उत्पन्न हुआ है इसलिये वह स्वाधीन है पराधीन नही है इसलिये मुझे उसके आस्वादन मे खेद नही है।

प्र० १७–और मै कैसा हू ?

उत्तर–मै अपने निजस्वभाव मे स्थित हूँ, अकप हूँ। मै ज्ञानामृत से परिपूर्ण हूँ। मै दैदीप्यमान ज्ञानज्योति युक्त अपने ही निज स्वभाव मे स्थित हूँ।

प्र० १८–चैतन्य स्वरुप की महिमा क्या है ?

उत्तर—देखो! इस अद्‌भुत चैतन्य स्वरुप की महिमा! उसके ज्ञानस्वभाव मे समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव झलकते हैं किन्तु वह स्वय ज्ञेयरुप नही परिणमता है और उस झलकने मे (जानने मे) विकल्प का अश भी नही है इसीलिये उसके निर्विकल्प, अतीन्द्रिय, अनुपम, बाधारहित और अखड सुख उत्पन्न होता है। ऐसा सुख ससार मे

नही है, ससार मे तो दु ख ही है। अज्ञानी जीव इस दु ख मे भी सुख का अनुमान करते है किन्तु वह सच्चा सुख नही है।

प्र० १९–और मै कैसा हूं ?

उत्तर–मै ज्ञानादि गुणो से परिपूर्ण हूँ और उन गुणो से एकमय हुआ अनन्त गुणो की खान बन गया हूँ।

प्र० २०–मेरा चैतन्य स्वरुप कैसा है ?

उत्तर–सर्वांग मे चैतन्य ही चैतन्य उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार नमक की डली (टुकडे मे)मे सर्वत्र क्षार रस है या जिस प्रकार शक्कर की डली मे सर्वत्र अमृतरस व्याप्त हो रहा है। वह शक्कर की डली पूर्णत अमृतमय पिड ही है वैसे ही मैं एक ज्ञानमय पिड बना हुआ हूँ। मेरे सर्वांग मे ज्ञान ही ज्ञान है। जितना-जितना शरीर का आकार है उतना-उतना ही आकार के निमित्त मेरा आकार है किन्तु अवगाहन शक्ति द्वारा मेरा इतना बडा आकार इतने से आकार मे समा जाता है। समा जाने मे असख्यात प्रदेश भिन्न-भिन्न रहते है। उनमे सकोच विस्तार की शक्ति है ऐसा सर्वज्ञ देव ने देखा है।

प्र० २१–और मेरा निजस्वरूप कैसा है ?

उत्तर–वह अनन्त आत्मीक सुख का भोक्ता है तथा एक सुख की ही मूर्ति है, वह चैतन्यमय पुरुषाकार है। जैसे मिट्टी के साचे मे एक शुद्ध चादी की प्रतिमा बनाई जाय वैसे ही इस शरीर के साचे मे आत्मा को जानना चाहिये। मिट्टी का साचा समय पाकर गल जाता है, जल जाता है, टूट जाता है किन्तु चादी की प्रतिमा ज्यो की त्यो बनी रहे वह आवरण रहित होकर सबको प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो जाय। साचे के नाश होने से प्रतिमा का नाश नही होता है वस्तु पहले से ही दो थी इसलिये एक के नाश होने से दूसरे का नाश कैसे हो? यह तो सर्वमान्य नियम है। वैसे ही समय पाकर शरीर नष्ट होता है तो होओ मेरे स्वभाव का नाश होता नही, मै किस बात का सोच करू ?

प्र० २२–मेरा चैतन्यरूप कैसा है ?

उत्तर—वह आकाश के समान निर्मल है,आकाश मे किसी प्रकार

का विकार नही है। विल्कुल वह स्वच्छ निर्मल है। यदि कोई आकाश को तलवार से तोडना, काटना चाहे या अग्नि से जलाना चाहे या पानी से गलाना चाहे तो वह आकाश कैसे तोडा, काटा जावे या जले या गले ? उसका विल्कुल नाश नही हो सकता। यदि कोई आकाश को पकडना या तोडना चाहे तो वह पकडा या तोडा नही जा सकता। वैसे ही मै आकाश की तरह अमूर्तिक, निर्विकार, पूर्ण निर्मलता का पिण्ड हूँ। मेरा नाश किस प्रकार हो ? किसी भी प्रकार नही हो, यह नियम है। यदि आकाश का नाश हो तो मेरा भी हो, ऐसा जानना। किन्तु आकाश के और मेरे स्वभाव मे इतना विशेष अन्तर है कि आकाश तो जड अमूर्तिक पदार्थ है और मै चैतन्य अमूर्तिक पदार्थ हूँ मै चैतन्य हूँ इसीलिये ऐसा विचार करता हूँ कि आकाश जड है और मैं चैतन्य। मेरे द्वारा जानना प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है और आकाश नही जानता है।

प्र० २३—और मै कैसा हूं ?

उत्तर—मै दर्पण की तरह स्वच्छ शक्ति का ही पिड हूँ। दर्पण की स्वच्छ शक्ति मे घट-पटादि पदार्थ स्वयमेव ही झलकते है। दर्पण मे स्वच्छ शक्ति व्याप्त रहती है वैसे ही मै स्वच्छ शक्तिमय हूँ। मेरी स्वच्छ शक्ति मे (कर्म रहित अवस्था मे) समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव ही झलकते है ऐसी स्वच्छ शक्ति मेरे स्वभाव मे विद्यमान है। मेरे सर्वांग मे एक स्वच्छता भरी हुई है मानो ये ज्ञेय पदार्थ भिन्न है। यह स्वच्छता शक्ति का स्वभाव ही है कि उसमे अन्य पदार्थो का दर्शन होता है।

प्र० २४-और मै कैसा हूं ?

उत्तर—मै अत्यन्त अतिशय निर्मल, साक्षात् प्रकट ज्ञान का पुन्ज बना हुआ हूँ और अनन्त शान्तिरस से परिपूर्ण और एक अभेद निराकुलता से व्याप्त हूँ।

प्र० २५-और मेरा चैतन्यस्वरुप कैसा है ?

उत्तर—वह अपनी अनन्त महिमा से युक्त है, वह किसी की

सहायता नही चाहता है, वह असहाय स्वभाव को धारण किये हुये है। वह स्वयभू है, वह एक अखण्ड ज्ञान मूर्ति, पर द्रव्य से भिन्न, शाश्वत, अविनाशी और परमदेव है और इसके अतिरिक्त उत्कृष्ट देव किसे माने ? यदि त्रिकाल मे कोई हो तो माने? नही है।

प्र० २६–मेरा ज्ञान स्वरूप कैसा है ?

उत्तर–वह अपने स्वभाव को छोडकर अन्यरूप नही परिणमता है। वह अपने स्वभाव की मर्यादा उसी प्रकार नही छोडता जिस प्रकार जल से परिपूर्ण समुद्र सीमा को छोडकर अन्यत्र गमन नही करता। समुद्र अपनी लहरो की सीमा मे भ्रमण करता है। उसी प्रकार ज्ञानरुपी समुद्र अपनी शुद्ध परिणतिरुप तरगावलि युक्त अपने सहज स्वभाव मे भ्रमण करता है। ऐसी अद्भुत महिमा युक्त मेरा ज्ञान स्वरुप परमदेव, अनादिकाल से इस शरीर से भिन्न है।

प्र० २७–आत्मा का शरीर के साथ कैसा सम्बन्ध है ?

उत्तर–मेरे और इस शरीर के पडौसी के समान सयोग है। मेरा स्वभाव अन्य प्रकार का है और इसका स्वाभाव अन्य प्रकार का है, मेरा परिणमन और इसका परिणमन भिन्न प्रकार का है। इसलिये यदि यह शरीर अभी गलन रुप परिणमता है तो मै किस बात का शोक करु और किसका दुःख करु? मै तो तमाशगीर पडौसी की तरह इसका गलन देख रहा हूँ। मेरे इस शरीर से राग-द्वेष नही है। राग-द्वेप इस जगत मे निद्य समझे जाते है और ये परलोक मे भी दुखदाई है। ये राग-द्वेष-मोह ही से उत्पन्न होते है। जिसके मोह नष्ट हो गया उसके राग-द्वेष नष्ट हो गये। मोह के द्वारा ही परद्रव्य मे अहकार और ममकार उत्पन्न होते है। यह द्रव्य है सो मैं हूँ ऐसा भाव तो अहकार है और यह द्रव्य मेरा है ऐसा भाव ममकार है। पर सामग्री चाहने पर मिलती नही और छोडी जाती नही तव यह आत्मा खेद खिन्न होता है। यदि सर्व सामग्री को दूसरो की जाने तो इसके (सामग्री) आने और जाने का विकल्प क्यो उत्पन्न हो? मेरे तो मोह पहले ही नष्ट हो गया है और मैने शरीरादिक सामग्री को पहले ही पराई जान ली है इसलिये अब इस शरीर के जाने से किस

बात का विकल्प उठे? कदाचित नही उठे। मैने विकल्प उत्पन्न कराने वाले व्यक्ति का (मोहवत) पहले ही भली भाति नाश कर दिया इस लिए मै निर्विकल्प आनन्दमय निज स्वरुप को बार-बार सम्हालता एव याद करता हुआ अपने स्वभाव मे स्थित हूँ ।"

प्र० २८–कोई चतुर सम्यग्दष्टि को इस प्रकार समझता है कि यह शरीर तो तुम्हारा नहीं है किन्तु इस शरीर के निमित्त से मनुष्य पर्याय मे शुद्धोपयोग का साधन भली प्रकार होता था उसका उपकार जानकर इसे रखने का उद्यम करना उचित है इसमे हानि नही है ?

उत्तर–'हे भाई ! तुमने यह बात कही सो तो हम भी जानते है। मनुष्य पर्याय मे शुद्धोपयोग का साधन, ज्ञानाभ्यास का साधन, और ज्ञान वैराग्य की वृद्धि आदि अनेक गुणो की प्राप्ति होती है जो कि अन्य पर्याय मे दुर्लभ है, किन्तु अपने सयमादि गुण रहते हुये शरीर रहे तो रहो वह तो ठीक ही है हमारे से कोई वैर तो है नही और यदि शरीर न रहे तो अपने सयमादि गुण निर्विघ्न रूप से रखना और शरीर से ममत्व छोडना चाहिये। हमे शरीर के लिए सयमादि गुण कदाचित् भी नही खोने है।

प्र० २९–सम्यग्दष्टि ने क्या दष्टान्त दिया है ?

उत्तर – जैसे कोई रत्नो का लोभी पुरुप परदेश से रत्नद्वीप में फूस की झोपडी मे रत्न ला लाकर इकट्ठा करता है। यदि उस झोपडी मे अग्नि लग जावे तो वह विचक्षण पुरुष ऐसा विचार करे कि किसी प्रकार इस अग्नि का निवारण करना चाहिए रत्नो सहित इस झोपडी को बचाना चाहिए। यह झोपडी रहेगी तो इसके सहारे बहुत रत्न और इकट्ठे कर लूगा। इस प्रकार वह पुरुष अग्नि को बुझती हुई जाने तो रत्न रखकर उसे बुझावे और यदि वह समझे कि रत्न जाने से झोपडी रहे तो यह कदाचित् झोपडी रखने का उपाय नही करता। उस अवस्था मे वह झोपडी को जलने दे और सम्पूर्ण रत्नो को लेकर अपने देश आ जावे। तत्पश्चात् वह एक दो रत्न बेचकर

अनेक तरह की विभूति भोगता है और अनेक प्रकार के स्वर्ण के महल, मकानादि व बागादिक बनाता है और राग, रग, सुगन्ध आदि से युक्त क्रीडा करता हुआ अत्यन्त सुख भोगता है ।

प्र० ३०–भेदविज्ञानी पुरुष कैसा है ?

उत्तर–रत्नो के लोभी उक्त पुरुप की तरह भेदविज्ञानी पुरुप है। वह शरीर के लिये सयमादि गुणो मे अतिचार नही लगाता और ऐसा विचार करता है कि "सयमादि गुण रहेगे तो मै विदेह क्षेत्र मे देव बनकर जाऊगा और सीमधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकरो और अनेक केवलियो एव मुनियो के दर्शन करु गा और अनेक जन्मो के सचित पाप नष्ट करु गा और मनुष्य पर्याय मे अनेक प्रकार के सयम धारणा करु गा। मै श्री तीर्थंकर केवली भगवान के चरण कमल मे क्षायिक सम्यक्त्व की साधना करु गा और अनेक प्रकार के मनवाछित प्रश्न कर तत्वो का यथार्थ स्वरुप जानू गा। राग–द्वेप ससार के कारण है मै उनका शीघ्रतापूर्वक आमूल नाश करु गा। मै श्री परम दयाल, आनन्दमय केवल लक्ष्मी सयुक्त श्री जिनेन्द्र भगवान की छविका दर्शन रूपी अमृत का निरन्तर लाभ लेऊगा। तत्पश्चात् मै शुद्धाचरण द्वारा कर्म-कलक को धोने का प्रयत्न करू गा। मै पवित्र होकर श्री तीर्थंकर देव के निकट दीक्षा धारण करू गा। तत्पश्चात् मैं नाना प्रकार के दुर्द्धर तपश्चरण करू गा और तत्परिणाम स्वरूप मेरा शुद्धोपयोग अत्यन्त निर्मल होगा और मै अपने स्वरूप मे लीन होऊगा। मै उसके बाद क्षपकश्रेणी के सन्मुख होऊगा और कर्मरूपी शत्रुओसे युद्धकर जन्म-जन्म के कर्मो का उन्मूलन करू गा और केवलज्ञान प्रगट करू गा और मुझे एक समयमे समस्त लोकालोक के त्रिकालीन चराचर पदार्थ दृष्टिगोचर हो जायेगे। तत्पश्चात मेरा यह स्वभाव शाश्वत् रहेगा। मै ऐसी केवलज्ञान लक्ष्मी का स्वामी हूँ तब इस शरीर से कैसे ममत्व करू ?

प्र० ३१–सम्यक्ज्ञानी पुरुष क्या विचार करता है ?

उत्तर—मुझे दोनो ही तरह आनन्द है-शरीर रहेगा तो फिर

शुद्धोपयोगकी आराधना करूगा और शरीर नही रहेगा तो परलोक मे जाकर शुद्धोपयोग की आराधना करूगा। इस प्रकार दोनो ही स्थिति मे मेरे शुद्धोपयोग के सेवन मे कोई विघ्न नही दिखता है इसलिये मेरे परिणामो मे सक्लेश क्यो उत्पन्न हो।

प्र० ३२–ज्ञानी अपने शुद्ध भावो को कैसा जानता है ?

उत्तर–"मेरे परिणामो मे शुद्ध" स्वरूप से अत्यन्त आसक्ति है। उस आसक्तिको छुडाने मे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र आदि कोई भी समर्थ नही है। इस आसक्ति को छुडाने मे केवल मोह कर्म ही समर्थ है जिसे मैने पहले ही जीत लिया। इसलिए अब तीन लोक मे मेरा कोई शत्रु नही रहा और शत्रुओ विना त्रिकाल-त्रिलोक मे दु ख नही है इसलिए मरण से मुझे भय कैसे हो ? इस प्रकार मै आज पूर्णत निर्भय हुआ हूँ। यह वात अच्छी तरह जाननी चाहिये इसमे कुछ सन्देह नही है।

प्र० ३३–क्या ज्ञानी पुरुष शरीर की स्थिति से परिचित होता है?

उत्तर–शुद्धोपयोगी पुरुष इस प्रकार शरीर की स्थिति से पूर्णत परिचित है और ऐसा विचार करने से उसके किसी भी प्रकार की आकुलता नही होती है। आकुलता ही ससार का वीज है इस आकुलता से ही ससारकी स्थिति एव वृद्धि होती है। अनन्तकाल से किए हुये सयमादि गुण आकुलता से इस प्रकार नष्ट हो जाते है जिस प्रकार अग्नि मे रुई नष्ट हो जाती है।

प्र० ३४–सम्यग्दृष्टि को आकुलता क्यो नही होती है ?

उत्तर–सम्यक्दृष्टि पुरुष को किसी भी प्रकार की आकुलता नही करनी चाहिये और वस्तुतः एक निजस्वरूपका ही वारम्वार विचार करना चाहिए उसीको देखना चाहिये और उसीके गुणो का सस्मरण, चिन्तवन निरन्तर करना चाहिए ! उसी मे स्थित रहना चाहिए और कदाचित् शुद्ध स्वरुप से चित्त चलायमान हो तो ऐसा विचार करना चाहिये।" यह ससार अनित्य है। इस ससार मे कुछ भी सार नही है। यदि इसमे कुछ सार होता तो तीर्थंकर देव इसे क्यो छोडते?

प्र० ३५—सम्यग्दृष्टि को किसका शरण है ?

उत्तर—"इसलिये निश्चयत मुझे मेरा स्वरूप ही शरण है और बाह्यत पचपरमेष्ठी, जिनवाणी और रत्नत्रयधर्म शरण है और मुझे इनके अतिरिक्त स्वप्नमे भी और कोई वस्तु शरणरूप नही, ऐसा मैने नियम लिया है"

प्र० ३६—सम्यग्दृष्टि का उपयोग स्व मे ना लगे तो तब वह क्या करता है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि पुरुप ऐसा नियम कर स्वरूप मे उपयोग लगावे और उसमे उपयोग नही लगे तो अरिहत और सिद्धके स्वरूप का अवलोकन करे और उनके द्रव्य, गुण, पर्याय का विचार करे। ऐसा विचार करते हये उपयोग निर्मल हो तब फिर उसे (उपयोगको)अपने स्वरूप मे लगावे। अपने स्वरूप जैसा अरिहतो का स्वरूप हैऔर अरिहत सिद्ध का स्वरुप जैसा अपना स्वरुप है। अपने (मेरी आत्मा के) और अरिहत-सिद्धो के द्रव्यत्व स्वभाव मे अन्तर नही है किन्तु उनके पर्याय स्वभाव मे अन्तर है ही। मै द्रव्यत्व स्वभाव का ग्राहक हूँ इसलिये अरिहत का ध्यान करते हुए आत्मा का ध्यान भली प्रकार सधता है और आत्मा का ध्यान करते हुए अरिहंतो का ध्यान भली प्रकार सधता है। अरिहतो और आत्मा के स्वरूप मे अन्तर नही है चाहे अरिहत का ध्यान करो या चाहे अत्मा का ध्यान करो दोनो समान है।" ऐसा विचार हुआ सम्यग्दृष्टि पुरुप सावधानीपूर्वक स्वभाव मे स्थित होता है।

प्र० ३७—सम्यग्दृष्टि क्या विचार करता है और कैसे कुटुम्ब, परिवार आदि से ममत्व छुडाता है ?

उत्तर—पहले अपने माता-पिता को समझाता है—अहो! इस शरीरके माता-पिता! आप यह अच्छी तरह जानते हो कि यह शरीर इतने दिनो तक तुम्हारा था अब तुम्हारा नही है। अव इसकी आयु पूरी होनेवाली है सो किसी के रखने से वह रखा नही जा सकता। इसकी इतनी ही स्थिति है सो अब इससे ममत्व छोडो! अब इससे

ममत्व करने से क्या फायदा ? अब इससे प्रीति करना दु ख ही का कारण है । इन्द्रादिक देवो की शरीर पर्याय भी विनाशीक है । जब मृत्यु समय आवे तब इन्द्रादिक देव भी दु खी होकर मु ह ताकते रह जाते है और अन्य देवो के देखते-देखते काल के किकर उन्हे उठा ले जाते है, किसीकी यह शक्ति नही है कि काल के किकरो से उन्हे क्षणमात्र भी रोक ले । इस प्रकार ये काल के किकर एक-एक करके सबको ले जायेगे । जो अज्ञान वश होकर काल के अधीन रहेगे उनकी यही गति होगी । सो तुम मोह के वश होकर इस पराये शरीरसे ममत्व करते हो और इसे रखना चाहते हो, तुम्हे मोह के वश होने से ससार का चरित्र झूठा नही लगता है । दूसरे का शरीर रखना तो दूर तुम अपना शरीर तो पहले रखो फिर औरो के शरीरके रखने का उपाय करना । आपकी यह भ्रम बुद्धि है जो व्यर्थ ही दु ख का कारण है किंतु यह प्रत्यक्ष होते हुए भी तुम्हे नही दिख रहा है ।

प्र० ३८–ज्ञानी माता–पिता से और क्या कहता है ?

उत्तर—ससार मे अब तक काल ने किसको छोडा है ! और अब किसको छोडेगा? हाय! हाय!! देखो, आश्चर्य की बात कि आप निर्भय होकर बैठे हो, यह आपकी अज्ञानता ही है । आपका क्या होन-हार है ? यह मै नही जानता हूँ । इसीलिये आपसे पूछता हूँ कि आप को अपना और परका कुछ ज्ञान भी है । हम कौन है ? कहा से आए है ? यह पर्याय पूर्ण कर कहा जायेगे ? पुत्रादि से प्रेम करते है सो ये भी कौन है ? हमारा पुत्र इतने दिन तक (जन्म लेने से पहले) कहा था जो इसके प्रति हमारी ममत्व बुद्धि हुई और हमे इसके वियोग का शोक हुआ ? इन सब प्रश्नो पर सावधानी पूर्वक विचार करो और भ्रमरूप मत रहो ।

प्र० ३९–ज्ञानी सुखी होने के लिये माता–पिता को क्या बताता है ?

उत्तर–आप अपना कर्तव्य विचारने और करने मे सुखी होओगे ।

परका कार्य या अकार्य उसके (परके) हाथ है (आधीन है) उसमे आपका कर्तव्य कुछ भी नही है। आप व्यर्थ ही खेद खिन्न हो रहे है। आप मोह के वश मे होकर ससार मे क्यो डूबते है? ससार मे नरकादि के दु ख आप ही को सहने पडेगे, आपके लिये और कोई उन्हे नही सहेगा। जैनधर्म का ऐसा उपदेश नही है कि पाप कोई करे और उसका फल भोगे दूसरा। अत मुझे आपके लिये बहुत दया आती है, आप मेरा यह उपदेश ग्रहण करे। मेरा यह उपदेश आपके लिये सुखदाई है।

प्र० ४०–ज्ञानी माता–पिता से और क्या कहता है ?

उत्तर-मैने तो यथार्थ जिनधर्म का स्वरूप जान लिया है और आप उससे विमुख हो रहे है इसी कारण मोह आपको दु ख दे रहा है। मैने जिन धर्म के प्रताप से सरलतापूर्वक मोह को जीत लिया है। इसे जिनधर्म का ही प्रभाव जानो। इसलिये आपको भी इसका स्वरूप विचारना कार्यकारी है। देखो ! आप प्रत्यक्ष ज्ञाता-दृष्टा आत्मा है और शरीरादिक परवस्तु है। अपना स्वरूप अपने स्वभावरूप सहज ही परिणमता है किसीके रखने से वह (परिणमन) रुकता नही है किन्तु भोला जीव भ्रम रखता है आप भ्रम बुद्धि छोडे और स्व–पर का भेदविज्ञान समझे अपना हित विचार कर कार्य करे। विलक्षण पुरुषोकी यही रीति है कि वे अपना हित ही चाहते है, वे निष्प्रयोजन एक कदम भी नही रखते।

प्र० ४१–ज्ञानी माता-पिता से और फिर क्या कहता है?

उत्तर—आप मुझसे जितना ममत्व करेगे उतना ज्यादा दु ख होगा, उससे कार्य कुछ भी बनेगा नही। इस जीव ने अनन्त बार अनन्त पर्यायो मे भिन्न-भिन्न माता-पिता पाये थे, वे अब कहा गये ? इस जीवको अनन्तबार स्त्री, पुत्र-पुत्रीका सयोग मिला था वे कहा गये ? इस जीव को पर्याय-पर्यायमे अनेक भाई, कुटुम्ब परिवारादि मिले थे वे सब अब कहा गये? यह ससारी जीव पर्याय बुद्धि वाला है। इसे जैसी पर्याय मिलती है वह उसी को अपना स्वरूप मानता है और

उसमे तन्मय होकर परिणमने लगता है। वह यह नही जानता है कि जो पर्याय का स्वरुप है वह विनाशीक है और मेरा स्वरुप नित्य, शाश्वत और अविनाशी है उसे ऐसा विचार ही नही होता । इसमे उस जीव का दोप नही है यह तो मोह का महात्म्य है जो प्रत्यक्ष सच्ची वस्तु को झूठी दिखा देता है। जिसके मोह नष्ट हो गया है ऐसा भेदविज्ञानी पुरुप इस पर्याय मे अपनत्व कैसे माने और वह कैसे इसे सत्य माने? वह दूसरे द्वारा चलित कैसे हो? कदाचित नही हो।

प्र० ४२–ज्ञानी माता–पिता को समझाते हुए और क्या कहता है ?

उत्तर–अब मुझे यथार्थ ज्ञानभाव हुआ है। मुझे स्व–परका विवेक हो गया है। अब मुझे ठगने मे कौन समर्थ है ? मैं अनादिकालसे पर्याय–पर्याय मे ठगाता चला आया हूँ, तत्परिणाम स्वरूप मैंने भव-भव मे जन्म–मरण के दु ख सहे। इसलिये अब आप अच्छी तरह जान लें कि आपके और हमारे इतने दिनो का ही सयोग सम्बन्ध था जो अब पूर्ण प्राय हो गया। अब आपको आत्मकार्य करना उचित है न कि मोह करना ।।

प्र० ४३–ज्ञानी माता–पिता को क्या उपदेश देता है ?

उत्तर—इसलिये अब अपने शास्वत निज स्वरूप को सम्हाले। उसमे किसी तरह का खेद नही है। हमारे अपने ही घर मे अमूल्य निधि है उसको सम्हालने से जन्म–जन्म के दु ख नष्ट हो जाते है। ससारमे जन्म–मरण का जो दु ख है वह सब अपना स्वरूप जाने विना है इसलिये सबको ज्ञान ही की आराधना करनी चाहिये। ज्ञानस्वभाव अपना निज स्वरूप है, उसकी प्राप्ति से यह जीव महा सुखी होता है। आप प्रत्यक्ष देखने-जानने वाले ज्ञायक पुरुष शरीर से भिन्न ऐसा अपना स्वभाव उसे छोडकर और किससे प्रीतिकी जावे ? मेरी स्थिति तो इस सोलहवे स्वर्ग के कल्पवासी देव की तरह है जो तमाशा हेतु मध्य-लोक मे आवे और किसी गरीब आदमी के शरीर मे प्रविष्ट हो जावे और उसकी-सी क्रिया करने लगे। वह कभी तो लकडी का गट्ठर

सिर पर रखकर बाजार मे बेचने जाता है और कभी मिट्टी का तसला सिर पर रख स्त्रियो से रोटी मागने लगता है, कभी पुत्रादिक को खिलाने लगता है, कभी धान काटने जाता है, कभी राजादि बडे अधिकारियो के पास जाकर याचना करता है कि महाराजा ! मै आजीविका के लिये बहुत ही दु खी हूँ मेरी प्रतिपालना करे, कभी दो पैसे मजदूरी के लेकर दाती कमर मे लगाकर काम करने के लिए जाता है, कभी रुपए दो रुपये की वस्तु खोकर रोता है हाय ! अब मै क्या करू गा ? मेरा धन चोर ले गए ! मैने धीरे-धीरे धन इकट्ठा किया और उसे भी चोर ले गये, अब मै अपना समय कैसे विताऊगा? कभी नगर मे भगदड हो तो वह पुरुष एक लडके को अपने काधे पर बैठाता है और एक लडके की अगुली पकड लेता है और स्त्री तथा पुत्री को अपने आगे कर, सूप, चालणी, मटकी, झाड़ू आदि सामान को एक टोकरी मे भरकर अपने सिर पर रखकर, एक दो गुदडो की गठरी बाधकर उस टोकरी पर रख आधी रात के समय नगर से बाहर निकलता है। उसे मार्ग मे कोई राहगीर मिलता है, वह(राहगीर) उस पुरुष को पूछता है हे भाई आप कहा जाते है? तब वह उत्तर देता है कि इस नगरमे शत्रुओ की सेना आई है इसलिए मै अपना धन लेकर भाग रहा हूँ और दूसरे नगरमे जाकर अपना जीवन यापन करू गा इत्यादि नाना प्रकारका चरित्र करता हुआ **वह कल्पवासी देव उस गरीब के शरीर मे रहते हुए भी अपने सोलहवें स्वर्ग की विभूति को एक क्षणमात्र भी नही भूलता है, वह अपनी विभूति का अवलोकन करता हुआ सुखी हो रहा है । उसने गरीब पुरुष के वेष मे जो नाना प्रकार की क्रियायें की है-वह उनमे थोडासा भी अहंकार-ममकार नही करता,** वह सोलहवे स्वर्गकी देवागना आदि विभूति और देव स्वरूप मे ही अहकार-ममकार करता है। उस देवकी तरह मै सिद्ध समान आत्मा द्रव्य, मै पर्याय मे नाना प्रकार की चेष्टा करता हुआ भी अपनी मोक्ष-लक्ष्मीको नही भूलता हूँ तब मै लोकमे किसका भय करू ?"

प्र० ४४—ज्ञानी स्त्री से ममत्व कैसे छुड़ाता है ?

उत्तर—तत्पश्चात् सम्यग्दृष्टि स्त्रीसे ममत्व छुडाता है—"अहो! इस शरीरसे ममत्व छोड! तेरे और इस शरीर के इतने दिनो का ही सयोग सम्बन्ध था सो अव पूर्ण हो गया। अव इस शरोर से तेरा कुछ भी स्वार्थ नही सधेगा इसलिये तू अव मेरे से मोह छोड और विना प्रयोजन खेद मतकर। यदि तेरा रखा हुआ यह शरीर रहे तो रख, मै तो तुझे रोकता नही और यदि तेरा रखा यह शरीर न रहे तो मै क्या करू ? यदि तू अच्छी तरह विचार करे तो तुझे ज्ञात होगा कि तू भी आत्मा है और मै भी आत्मा हूँ। स्त्री-पुरुष की पर्याय तो पुद्गल का रूप है अत पौद्गलिक पर्याय से कैसी प्रीति? यह जड और आत्मा चैतन्य, ऊट-वैलका सा इन दोनो का सयोग कैसे वने? तेरी पर्याय है उसे भी चचल ही जान। तू अपने हित का विचार क्यो नही करती ? हे स्त्री! मैने इतने दिन तक तुम्हारे साथ सहवास किया उससे क्या सिद्धि हुई और इन भोगो से क्या सिद्धि होनी है। व्यर्थ ही भोगो से हम आत्मा को ससार चक्र मे घुमाते है। भोग करते समय हम मोहवश होकर यह नही जानते कि मृत्यु आवेगी और तत्पश्चात् तीन लोककी सम्पदा भी मिथ्या हो जाती है इसलिये तुझे हमारी पर्याय के लिये खेद खिन्न होना उचित नही है। यदि तू हमारी प्रिय स्त्री है तो हमे धर्म का उपदेश दे यही तेरा वैयावृत्य करना है। अव हमारी देह नही रहेगी, आयु तुच्छ रह गई है इसलिये तू मोह कर आत्मा को ससार मे क्यो डुबोती है! यह मनुष्य-जन्म दुर्लभ है। यदि तू मतलव ही के लिये हमारी साथिन है तो तू तेरी जाने। हम तुम्हारे डिगाने से डिगेगे नही। हमने तुझे दया कर उपदेश दिया है। तू मानना चाहे तो मान, नही माने तो तेरा जैसा होनहार होगा वैसा होगा। हमारा अब तुमसे कुछ भी मतलब नही है इसलिये अब हमसे ममत्व मत कर। हे प्रिये! परिणामो को शान्त रख, आकुल मत हो। यह आकुलता ही ससार का बीज है। इस प्रकार स्त्री को समझाकर सम्यग्दृष्टि उसे विदा करता है।

प्र० ४५—वह कुटुम्ब परिवार के अन्य व्यक्तियो को बुलाकर उन्हे क्या सम्बोधित करता है ?

उत्तर—"अहो कुटुम्बीगण ! अब इस शरीर की आयु तुच्छ रही है। अब हमारा परलोक नजदीक है इसलिये हम आपको कहते है कि आप हमसे किसी बात का राग न करे। आपके और हमारे चार दिन का सयोग था कोई तल्लीनता तो थी नही। जैसे सराय मे अलग अलग स्थानो के राही दो रात ठहरे और फिर बिछुडते समय वे दुखी हो ! इसमे कौन सा सयानापन है। इस प्रकार हमे बिछुडते समय दुख नही है किन्तु आप सबसे हमारा क्षमाभाव है। आप सब आनन्दमयी रहे। यदि आपकी आयु बाकी है तो आप धर्म सहित व राग रहित होकर रहो। अनुक्रम से आप सबकी हमारी सी स्थिति होनी है। इस ससार का ऐसा चरित्र जानकर ऐसा बुधजन कौन है जो इससे प्रीति करे! कुटुम्ब-परिवार वालो को इस प्रकार समझाकर सम्यग्दृष्टि उन्हे सीख देता है।

प्र० ४६—वह अपने पुत्रो को बुलाकर क्या समझाता है ?

उत्तर—अहो ! पुत्रो ! आप सब बुद्धिमान है, हमसे किसी प्रकार का मोह नही करे। जिनेश्वर देव के धर्म का भली प्रकार पालन करे। आपको धर्म ही सुखकारी होगा। कोई व्यक्ति माता-पिता को सुखकारी मानता है यह मोहका ही माहात्म्य है। वस्तुत कोई किसी का कर्त्ता नही। कोई किसी का भोक्ता नही है सब पदार्थ अपने-अपने स्वभाव के कर्त्ता-भोक्ता है इसलिये अब हम आपको पुन समझाते है कि यदि आप व्यवहारत हमारी आज्ञा मानते है तो हम जैसे कहे वैसे करे। "सच्चे देव, धर्म, गुरु की दृढ प्रतीति करो, साधर्मियो से मित्रता करो, पराश्रयकी श्रद्धा छोडो, दान, शील तप सयम से अनुराग करो, स्व-पर भेदविज्ञान का उपाय करो और ससारी पुरुषो के ससर्ग को छोडो। यह जीव ससार मे सरागी जीवो की सगति से अनादिकाल से ही दुख पाता है इसलिये उनकी सगति अवश्य छोडनी चाहिए। धर्मात्मा पुरुषो की सगति इस लोक और परलोक दोनो मे

महासुखदाई है। इस लोक मे तो निराकुलतारूपी सुख की और यश की प्राप्ति होती है और परलोक मे वह स्वर्गादिक का सुख पाकर मोक्ष मे शिवरमणी का भर्त्ता होता है और वहाँ पूर्ण निराकुल, अतीन्द्रिय, अनुपम बाधारहित, शाश्वत अविनाशी सुख भोगता है। इसलिए हे पुत्रो! यदि तुम्हे हमारे वचनो की सत्यता प्रतीत हो तो करो और यदि हमारे वचन झूठे लगे और इनमे तुम्हारा अहित होता दिखे तो हमारे वचन अगीकार मत करो। हमारा तुमसे कोई प्रयोजन नही किन्तु तुम्हे दया बुद्धि से ही यह उपदेश दिया है इसलिये इसे मानो तो ठीक और न मानो तो तुम अपनी जानो।"

प्र० ४७–सम्यग्दृष्टि फिर क्या करता है ?

उत्तर—(१) तत्पश्चात् सम्यक्दृष्टि पुरुप अपनी आयु थोडी जानकर दान, पुण्य, जो कुछ उसे करना होता है, स्वय करता है। (२) तदनन्तर उसे जिन पुरुषो से परामर्श करना होता है उनसे कर वह नि शल्य हो जाता है और सासारिक कार्यो से सम्बन्धित जो स्त्री–पुरुप है उनको विदाकर देता है और धार्मिक कार्यो से सम्बन्धित पुरुपो को अपने पास बुलाता है और जब वह अपनी आयु का अन्त अति निकट समझता है तब वह आजीवन सर्व प्रकार के परिग्रह और चारो प्रकारके आहारका त्याग करता है और समस्त परिग्रहका भार पुत्रो को सौपकर स्वय विशेप रूप से नि शल्य-वीतरागी हो जाता है। अपनीआयु के अन्त के सम्बन्धमे सन्देह होने पर दो-चार घडी, प्रहर, दिन आदि की मर्यादापूर्वक त्याग करता है।

प्र० ४८–सम्यग्दृष्टि और फिर क्या करता है ?

उत्तर—तत्पश्चात् वह चारपाई से उतरकर जमीन पर सिह की तरह निर्भय होकर बैठता है जैसे शत्रुओ को जीतने के लिये सुभट उद्यमी होकर रण-भूमि मे प्रविष्ट होता है। इस स्थिति मे सम्यग्दृष्टि के अशमात्र आकुलता भी उत्पन्न नही होती।

प्र० ४९–सम्यग्दृष्टि के किसकी इच्छा होती है ?

उत्तर–उस शुद्धोपयोगी सम्यग्दृष्टि पुरुष के मोक्षलक्ष्मी का पाणि-

ग्रहण करने की तीव्र इच्छा रहती है कि अभी मोक्ष मे जाऊ । उसके हृदय पर मोक्षलक्ष्मी का आकार अङ्कित रहता है और इस कारण वह किंचित् भी राग परिणति नही होने देता है और इस प्रकार विचार करता है "राग परिणति ने मेरे स्वभाव मे थोडा सा भी प्रवेश किया तो मुझे वरण करने को उद्धत मोक्षलक्ष्मी लौट जायेगी,इसलिए मै राग परिणति को दूर से छोडता हूँ ।" वह ऐसा विचार करता हुआ अपना काल पूर्ण करता है उसके परिणामो मे निराकुल आनन्दरस रहता है, वह शान्तिरस से अत्यन्त तृप्त रहता है। उसके आत्मिक सुख के अतिरिक्त किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा नही है। उसे केवल अतीन्द्रिय सुख की वाँछा है और उसी को भोगना चाहता है इस प्रकार वह स्वाधीन और सुखी हो रहा है।

उसे यद्यपि साधर्मियो का सयोग सुलभ है तो भी उसे उनका सयोग पराधीन होने से आकुलतादायी ही लगता है और वह यह जानता है कि निश्चयत इनका सयोग सुख का कारण नही है। सुख का कारण एक मेरा शुद्धोपयोग ही है जो मेरे पास ही है अत मेरा सुख मेरे आधीन है। सम्यग्दृष्टि इस प्रकार आनन्दमयी हुआ शान्त परिणामो से युक्त समाधिमरण करता है।

प्र० ५०–आपने इस समाधिकरण मे प्रश्न क्यो डाले है ?

उत्तर–स्वय और दूसरे पात्र भव्य जीवो को समझने–समझाने मे कठिनता न हो--इस विचार से प्रश्न डालकर इस समाधिमरण की प्रश्नोत्तरी बना दी है।

एक क्षण भी जी, स्वभाव सन्मुख जी ।
तू स्वय भगवान है, भगवान बनकर जी ॥ १ ॥
अशुभ कर्म के उदय से, जिनवाणी न सुहाय ।
कै ऊघै, कै लड मरै, कै उठ घर को जाये ॥ २ ॥
भाग्य हीन को न मिले, भली वस्तु का योग ।
दाख पके जब काग के होत कन्ठ मे रोग ॥ ३ ॥

छठवाँ अधिकार

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त देव रचित

द्रव्य सग्रह

प्र० १–द्रव्य सग्रह मे कितनी गाथायें है, और कितने अधिकार है ?

उत्तर–अट्ठावन गाथाये है। और अट्ठावन गाथाओ को तीन अधिकार मे बाँटा गया है।

प्र० २–प्रथम अधिकार मे क्या बताया है ?

उत्तर–प्रथम अधिकार मे २७ गाथाये है और सत्ताईस गाथाओ मे छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय का प्रतिपादन करने वाला प्रथम अधिकार है।

प्र० ३–दूसरे अधिकार मे क्या बताया है ?

उत्तर–दूसरे अधिकार मे ११ गाथाये है और ग्यारह गाथाओ मे सात तत्त्व और नव पदार्थ का प्रतिपादन करने वाला दूसरा अधिकार है।

प्र० ४ – तीसरे अधिकार मे क्या बताया है ?

उत्तर–तीसरे अधिकार मे २० गाथाये है और बीस गाथाओ मे मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करने वाला तीसरा अधिकार है।

जीवमजीवं द्रव्व जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठ ।
देविदविद वदे त सव्वदा सिरसा ॥ १ ॥

अर्थ –(जेण जिणवरवसहेण) जिन, जिनवर और जिनवर वृषभ भगवान ने (जीवमजीव द्रव्व) जीव और अजीव द्रव्य का (णिद्दिट्ठ) वर्णन किया है। (देविदविदवद) भवनवासी देव के ४०, व्यन्तर देव के ३२, कल्पवासी देव के २४, ज्योतिषी देव के सूर्य और चन्द्रमा, मनुष्य से चक्रवर्ती तथा तिर्यंच से सिह, इस प्रकार देवेन्द्रो के समूह से वन्दनीय (त) उन प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव को मै (सव्वदा) सदा (सिरसा) नत॰ मस्तक होकर (वदे) वन्दना करता हूँ ॥१॥

भावार्थ :-प्र० ५-जिन किसे कहते हैं और जिन में कौन-कौन आते है ?

उत्तर-निज शुद्धात्म द्रव्य के आश्रय से मिथ्यात्व राग-द्वेषादि को जीतने वाली निर्मल परिणति जिसने प्रगट की है वही जैन है। मिथ्यात्व के नाशपूर्वक जितने अश मे जो रागादि का नाश करता है उतने अश मे वह जैन है। वास्तव मे जैनत्व का प्रारम्भ निश्चय सम्यग्दर्शन से ही होता है, जो चतुर्थ गुणस्थान मे प्रगट होता है। (३) असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरत श्रावक और भावलिंगी मुनि जिन मे आते हैं।

प्र० ६-जिनवर किसे कहते हैं और जिनवर मे विशेषरुप से कौन आते हैं ?

उत्तर-जो जिनो मे श्रेष्ठ होते है वे जिनवर है और विशेप रूप से श्री गणधर देव जिनवर मे आते है।

प्र० ७-जिनवरवृषभ किसे कहते हैं और जिनवरवृषभ मे कौन-कौन आते है। तथा ग्रन्थ कर्ता ने विशेष रुप से मंगलाचरण मे किसको याद किया है ?

उत्तर-(१) जो जिनवरो मे भी श्रेष्ठ होते है वे जिनवरवृषभ है। (२) प्रत्येक तीर्थंकर भगवान जिनवरवृषभ मे आ जाते है। (३) यहा ग्रयकर्ता ने मंगलाचरण मे प्रथम तीर्थ कर ऋषभदेव को याद किया है।

प्र० ८-जिन-जिनवर-जिनवर वृषभो ने किसका वर्णन किया है ?

उत्तर-जीव और अजीव द्रव्यो का वर्णन किया है।

प्र० ९-विश्व किसे कहते है ?

उत्तर-संख्या अपेक्षा अनन्त द्रव्य और जाति अपेक्षा छह द्रव्यो के समूह को विश्व कहते है।

प्र० १०–विश्व को जानने के कितने लाभ है ?

उत्तर--अनेक लाभ है, परन्तु मुख्य सात लाभ है।

प्र० ११–मुख्य सात लाभ कौन-कौन से हैं और इनका स्पष्टीकरण कहाँ देखे ?

उत्तर–जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरे मे विश्व के पाठ मे सात लाभ के नाम और स्पष्टीकरण देखे।

प्र० १२–द्रव्य किसे कहते है ?

उत्तर–गुणो के समूह को द्रव्य कहते है।

प्र० १३–द्रव्य को जानने के कितने लाभ है ?

उत्तर–अनेक लाभ है, परन्तु मुख्य सात लाभ है।

प्र० १४–द्रव्य को जानने के मुख्य सात लाभ कौन-कौन से हैं और इनका स्पष्टीकरण कहाँ देखे ?

उत्तर–जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग तीसरे मे द्रव्य के पाठ मे सात लाभ के नाम और स्पष्टीकरण देखे।

प्र० १५–गुण किसे कहते है ?

उत्तर–जो द्रव्य के सम्पूर्ण भाग और उसकी समस्त अवस्थाओ मे मे रहता है उसको गुण कहते है।

प्र० १६–गुण को जानने के कितने लाभ है ?

उत्तर–अनेक लाभ है, परन्तु मुख्य छह लाभ है।

प्र० १७–गुण जानने के मुख्य छह लाभ कौन-कौन से है और इनका स्पष्टीकरण कहाँ देखें ?

उत्तर–जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला भाग पहिले मे गुण के पाठ मे छह लाभो के नाम और स्पष्टीकरण देखे।

प्र० १८–द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर—दो द्रव्य है, जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य।

प्र० १९–जीव द्रव्य किसे कहते है और जीव द्रव्य कितने है ?

उत्तर—जिसमे सहज शुद्ध चैतन्यपना पाया जावे वे जीवद्रव्य है और वे जीवद्रव्य निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक अनन्त है।

प्र० २०–अजीव द्रव्य किसे कहते है और अजीवद्रव्य कितने है ?

उत्तर–जिनमे ज्ञानदर्शन न पाया जावे उसे अजीवद्रव्य कहते है और अजीवद्रव्य जाति अपेक्षा पाच है और सख्या अपेक्षा पुद्‌गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोकप्रमाण असख्यात कालद्रव्य, अनन्तानन्त है।

प्र० २१–जीव द्रव्य और जीव तत्त्व मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–(१) जीवद्रव्य मे निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक सब जीव आ गये। और जीवतत्व मे जिसमे मेरा ज्ञान-दर्शन पाया जावे, वह एक ही जीव आता है।

प्र० २२–जीव तत्त्व किसे कहते है ?

उत्तर–जिसमे निज सहज शुद्ध चैतन्यपना पाया जावे—वह जीव तत्त्व है।

प्र० २३–अजीव तत्त्व किसे कहते है और अजीव तत्त्व मे कौन-कौन आते है ?

उत्तर–(१) जिनमे मेरा ज्ञान-दर्शन न पाया जावे वे अजीवतत्व है। मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व के अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्‌गल धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य, ये सब अजीव तत्व मे आते है।

प्र० २४–जीव द्रव्य और जीव तत्त्व मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–जीवद्रव्य मे विश्व के सब जीव आ गये और जीवतत्त्व मे एक मात्र अपना जीव ही आता है।

प्र० २५–अजीव द्रव्य और अजीव तत्त्व मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–अजीव तत्त्व मे अनन्तानन्त पुद्‌गल, धर्म-अधर्म-आकाश

एकेक और लोक प्रमाण असख्यात काल द्रव्य आते है और अजीव तत्त्व मे इन सब द्रव्यो के साथ मुझ निज आत्मा के अलावा विश्व के समस्त जीव द्रव्य भी आ जाते है।

प्र० २६–जीव तत्त्व और अजीव तत्त्व प्रयोजनभूत किस प्रकार है ?

उत्तर–[१] निज जीवतत्त्व एकमात्र आश्रय करने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है [२] अजीवतत्व एकमात्र जानने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है।

प्र० २७–निज जीवतत्त्व का आश्रय लेने से और अजीवतत्त्व को जानने योग्य मानने से क्या लाभ होता है ?

उत्तर–दुःख का अभाव और सुख की प्राप्ति होती है अर्थात आश्रव–बन्ध का भागना प्रारम्भ हो जाता है, सवर-निर्जराकी प्राप्ति होकर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्र० २८–प्रत्येक जीव की सत्ता कितनी-कितनी है ?

उत्तर–अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और ज्ञान-दर्शनादि अनन्त विशेष गुण। एक व्यजन पर्याय और अनन्त अर्थ पर्याय सहित एक जीव की सत्ता है। इसी प्रकार प्रत्येक जीव की सत्ता जानना।

प्र० २९–प्रत्येक पुद्गल की सत्ता कितनी-कितनी है ?

उत्तर–अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और स्पर्श–रस–गन्ध-वर्णादि अनन्त विशेष गुण। एक व्यजन पर्याय और अनन्त अर्थ पर्याय सहित एक परमाणु की सत्ता है। इसी प्रकार प्रत्येक परमाणु की सत्ता जानना।

प्र० ३०–धर्म द्रव्य की सत्ता कितनी है ?

उत्तर–अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और गति हेतुत्वादि अनन्त विशेष गुण। एक स्वभाव व्यजन पर्याय और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्याय सहित धर्म द्रव्य की सत्ता है।

प्र० ३१–अधर्म द्रव्य की सत्ता कितनी है ?

उत्तर–अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और स्थिति हेतुत्वादि अनत विशेष गुण। एक स्वभाव व्यजन पर्याय और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्याय सहित अधर्म द्रव्य की सत्ता है।

प्र० ३२–अकाश द्रव्य की सत्ता कितनी है ?

उत्तर–अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और अवगाहन हेतुत्वादि अनन्त विशेष गुण। एक स्वभाव व्यजन पर्याय और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्याय सहित आकाशद्रव्य की सत्ता है।

प्र० ३३–प्रत्येक कालाणु की सत्ता कितनी-कितनी है ?

उत्तर–अस्तित्वादि अनन्त सामान्य गुण और स्थिति हेतुत्वादि अनन्त विशेष गुण। एक स्वभाव व्यजन पर्याय और अनन्त स्वभाव अर्थ पर्याय सहित एक कालाणु की सत्ता है। इसी प्रकार प्रत्येक कालाणु की सत्ता जानना।

प्र० ३४–जीव दु खी क्यो है ?

उत्तर-(१) जीव-अजीव का यथार्थ ज्ञान न होने से ही संसारी मिथ्यादृष्टियो को स्व–पर का विवेक नही हो पाता है। (२) स्व-पर का विवेक ना होने से वे आत्म स्वरुप की प्राप्ति से वचित रहने के कारण ही दुःखी है।

प्र० ३५–दु ख दूर करने के लिये संसारी जीवो को क्या करना चाहिये ?

उत्तर—उन्हे स्व-पर यथार्थ विवेक प्रगट करने के लिये जीव-अजीव का यथार्थ ज्ञान करना चाहिये।

प्र० ३६–भाव नमस्कार क्या है ?

उत्तर–निज शुद्ध आत्मा की आराधना भाव नमस्कार है और भक्ति नमस्कार है जिनेन्द्र भगवान की निश्चय स्तुति, वन्दना, प्रणाम (द्रव्य) नमस्कार है।

प्र० ३७–नमस्कार कितने है ?

उत्तर—पाच है–(१) शक्ति रुप नमस्कार, (२) एकदेश भाव नमस्कार, (३) द्रव्य नमस्कार, (४) जड नमस्कार, (५) पूर्ण भाव नमस्कार।

प्र० ३८–इन पांच नमस्कार को थोडे में समझाइये ?

उत्तर—(१) शक्ति रुप नमस्कार के आश्रय से ही एकदेश भाव नमस्कार प्रगट होता है। (२) एक देश भाव नमस्कार के साथ अपनी-अपनी भूमिका अनुसार साधक धर्मी जीव को जो राग होता है वह द्रव्य नमस्कार पुण्य बध का कारण है। (३) द्रव्य नमस्कार के साथ शरीरादि की क्रियाओ को जड नमस्कार व्यवहार का व्यवहार कहा जाता है। (४) शक्ति रुप नमस्कार का परिपूर्ण आश्रय लेने से नमस्कार का फल पूर्ण भाव नमस्कार प्रगट होता है।

प्र० ३९–द्रव्य नमस्कार कौन से गुण स्थान तक होता है ?

उत्तर—चौथे गुण स्थान से लेकर छट्टे गुण स्थान तक होता है।

प्र० ४०–जिनेन्द्र भगवान को कौन नमस्कार कर सकता है ?

उत्तर—साधक धर्मी जीव ही नमस्कार कर सकता है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि भगवान को नमस्कार नही कर सकता है, क्यो कि अज्ञानी को भाव नमस्कार की प्राप्ति नही है ॥ १ ॥

जीवद्रव्य के नौ अधिकार

जीवो उवओगमओ अमूत्ति कत्ता सदेह परिणामो ।
भोक्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥ २ ॥

अर्थ —इस गाथा मे जीव के नौ अधिकारो के नाम दिये गये है। वह जीव (१) प्राणो से जीता है, (२) उपयोगमय है, (३) अमूर्तिक है, (४) कर्ता है, (५) भोक्ता है, (६) स्वदेह परिमाण है, (७) ससारी है, (८) सिद्ध है, (९) स्वभाव से उर्ध्वगमन करने वाला है ॥ २ ॥

प्र० ४१-इन नौ अधिकारो का मर्म जानने के लिये क्या जानना आवश्यक है ?

उत्तर—नय सम्बन्धी ज्ञान का होना आवश्यक है, क्योकि नय ज्ञान हुये बिना नव अधिकारो का मर्म समझ मे नही आसकता है।

प्र० ४२–प्रमाण ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर– प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होती है इसी वस्तु के सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते है।

प्र० ४३–नय किसे कहते है ?

उत्तर—प्रमाण द्वारा निश्चित हुई अनन्त धर्मात्मक वस्तु के एक-एक अग का ज्ञान मुख्यरुप से कराये उसे नय कहते है।

प्र० ४४ नय का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। वस्तु मे किसी धर्म की मुख्यता करके अविरोध रुप से साध्य पदार्थ को जानना ही नय का तात्पर्य है।

प्र० ४५–नय किसको होते है और किसको नही होते है ?

उत्तर—साधक सम्यग्दृष्टि को नय होते है मिथ्यादृष्टि को नय नही होते है।

प्र० ४६–सम्यग्यदृष्टि को ही नय क्यो होने है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि के सम्यक श्रुतज्ञान प्रमाण प्रगट होने से उसके नय होते है।

प्र० ४७–मिथ्यादृष्टि को नय क्यो नहीं होते है ?

उत्तर—मिथ्यादृष्टि का श्रुतज्ञान मिथ्या होने से उसके नय नही होते है।

प्र० ४८–क्या पहले व्यवहार नय होता है ?

उत्तर—नही होता है, क्योकि "निरपेक्षा नया मिथ्या.–सापेक्षा

वस्तु तेऽर्थंकृतः।" निश्चयनय की अपेक्षा ही व्यवहारनय होता है। केवल व्यवहार पक्ष ही मोक्ष मार्ग में नही है।

प्र० ४९–जिन भगवन्तों की वाणी की पद्धति क्या है ?

उत्तर—दो नयो के आश्रय से सर्वस्व कहने की पद्धति है।

प्र० ५०–नय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद है, निश्चयनय और व्यवहारनय।

प्र० ५१–निश्चय-व्यवहार का लक्षण क्या है ?

उत्तर—(१) यथार्थ का नाम निश्चय हैं।

(२) उपचार का नाम व्यवहार है।

प्र० ५२–यथार्थ का नाम निश्चय और उपचार का नाम व्यवहार को किस-किस प्रकार जानना चाहिये ?

उत्तर—(१) जहाँ अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा निर्मल पर्याय को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है। (२) जहाँ निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा भूमिका अनुसार शुभभावो को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है। (३) जहाँ जीव के विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो, वहाँ उसकी अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है।

प्र० ५३–अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक को यथार्थ का नाम निश्चय क्यो कहा है ?

उत्तर—एक मात्र आश्रय करने योग्य की अपेक्षा से अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है। क्योकि इसी के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति-वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्र० ५४ निर्मल शुद्ध परिणति को यथार्थ का नाम निश्चय क्यो कहा है ?

उत्तर—प्रगट करने योग्य की अपेक्षा से निर्मल शुद्ध परिणति को

यथार्थ का नाम निश्चय कहा है।

प्र० ५५–जीव के विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है?

उत्तर—पर्याय मे दोष अपने अपराध से है। द्रव्यकर्म-नोकर्म के कारण नही है। इसका ज्ञान कराने के लिये विकारी भावो को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है।

प्र० ५६–निर्मल शुद्ध परिणति को उपचार का नाम व्यवहार क्यो कहा है ?

उत्तर—अनादि अनन्त ना होने की अपेक्षा से तथा आश्रय करने योग्य ना होने की अपेक्षा से निर्मल शुद्ध परिणति को उपचार का नाम व्यवहार कहा है।

प्र० ५७–भूमिका अनुसार शुभ भावो को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर—मोक्ष मार्ग मे शुद्ध अश के साथ किस-किस प्रकार का राग होता है और किस-किस प्रकार का राग नही होता है। यह ज्ञान कराने के लिये भूमिका अनुसार शुभभावो को उपचार का नाम व्यवहार कहा है।

प्र० ५८–द्रव्यकर्म नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर—जब-जब पर्याय मे विभाव भाव उत्पन्न होते है, तब-तब द्रव्यकर्म-नोकर्म का निमित्त होता है-इस अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा है।

प्र० ५९—निश्चयनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के किसी असली (मूल) अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को निश्चयनय कहते है। जैसे–मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना।

प्र० ६०—व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

उत्तर—किसी निमित्त कारण से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ रूप जानने वाले ज्ञान को व्यवहारनय कहते है। जैसे–मिट्टी के घडे को घी रहने के निमित्त से घी का घडा कहना।

प्र० ६१–व्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—सद्भूत व्यवहारनय और असद्भूत व्यवहारनय।

प्र० ६२–सद्भूत व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

उत्तर-जो एक पदार्थ मे गुण-गुणी को भेद रुप ग्रहण करे–उसे सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं।

प्र० ६३–सद्भूत व्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं। उपचरित सद्भूत व्यवहारनय और अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय।

प्र० ६४–उपचरित सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो उपाधि सहित गुण-गुणी को भेदरुप से ग्रहण करे–उसे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहते है। जैसे ससारी जीव के मतिज्ञानादि पर्याय और नर-नारकादि पर्याये।

प्र० ६५–अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो नय निरुपाधिक गुण-गुणी को भेद रुप ग्रहण करे–उसे अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहते है। जैसे जीव के केवलज्ञान-केवलदर्शन।

प्र० ६६–असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मिले हुये भिन्न पदार्थों को अभेदरुप से कथन करे–उसे असद्भूत व्यवहारनय कहते है। जैसे यह शरीर मेरा है।

प्र० ६७–असद्भूत व्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद है। उपचरित असद्भूत व्यवहारनय और

अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय ।

प्र० ६८–उपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते है ?

उत्तर—अत्यन्त भिन्न पदार्थो को जो अभेदरुप से ग्रहण करे–उसे उपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते है। जैसे–जीव के महल-घोडा-वस्त्रादि।

प्र० ६९–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय किसे कहते है ?

उत्तर–जो नय सयोग सम्बन्ध से युक्त दो पदार्थो के सम्बन्ध को विषय बनावे–उसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय कहते है। जैसे–जीव का शरीर, जीव का कर्म कहना।

प्र० ७०–चार प्रकार का अध्यात्म व्यवहार किस प्रकार है ?

उत्तर–(१) **उपचरित असद्भूत व्यवहारनय** – साधक ऐसा जानता है कि मेरी पर्याय मे विकार होता है। उसमे जो व्यक्त बुद्धि पूर्वक राग प्रगट ख्याल मे लिया जा सकता है–ऐसे राग को आत्मा का कहना। (२) **अनुपचरित प्रसद्भूत व्यवहारनय** –जिस समय बुद्धि पूर्वक राग है, उसी समय अपने ख्याल मे न आ सके–ऐसा अबुद्धि पूर्वक राग भी है–उसे जानना। (३) **उपचरित सद्भूत व्यवहारनय** —ज्ञान पर को जानता है अथवा ज्ञान मे राग ज्ञात होने से "राग का ज्ञान है"—ऐसा कहना। अथवा ज्ञाता स्वभाव के भान पूर्वक ज्ञानी "विकार को भी जानता है" ऐसा कहना। (४) **अनुपचरित सदभूत व्यवहारनय** –ज्ञान और आत्मा इत्यादि गुण-गुणी का भेद करना।

प्र० ७१–चार प्रकार के आगम और अध्यात्म के नयो की जानकारी आवश्यक क्यो है ?

उत्तर—किस अपेक्षा क्या बात बतलाई जा रही है जानकारी होने के लिये।

प्र० ७२–जैन शास्त्रो के अर्थ करने की पद्धति के कितने प्रश्न हैं ?

उत्तर–चौदह प्रश्न है। वे प्रश्न ७३ से लेकर ८६ तक के अनुसार है ।

प्र० ७३–उभयाभासी के दोनो नयों का ग्रहण भी मिथ्या बतला दिया तो वह दोनो नयों को किस प्रकार समझे ?

उत्तर—निश्चयनय से जो निरुपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरुपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना ।

प्र० ७४–व्यवहारनय का त्याग करके निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कही भगवान अमृत चन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—हाँ दिया है। (१) समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि "सर्व ही हिसादि व अहिसादि मे जो अध्यवसाय है-सो समस्त ही छोडना–ऐसा जिन देवो ने कहा है। (२) अमृत चन्द्राचार्य कहते है कि इसलिये मै ऐसा मानता हूँ कि जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुडाया है। (३) तो फिर सन्त पुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अगीकार करके शुद्ध ज्ञानघन रुप निज महिमा मे स्थिति क्यो नही करते ? ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है ।

प्र० ७५–निश्चयनय को अगीकार करने और व्यवहारनय के त्याग के विषय मे भगवान कुन्द-कुन्द आचार्य ने मोक्ष प्राभृत गाथा ३१ मे क्या कहा है ?

उत्तर—जो व्यवहार की श्रद्धा छोडकर निश्चय की श्रद्धा करता वह योगी अपने आत्म कार्य मे जागता है तथा जो व्यवहार मे जागता है वह अपने कार्य मे सोता है, इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर निश्चय का श्रद्धान करना योग्य है ।

प्र० ७६–व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर निश्चदनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर–(१) व्यवहारनय [अ] स्वद्रव्य-परद्रव्य को, [आ] स्वद्रव्य के भावो को-परद्रव्य के भावो को, [इ] तथा कारण-कार्यादि को, किसी को किसी मे मिलाकर निरुपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करना चाहिये। (२) और निश्चयनय उन्ही को यथावत निरुपण करता है तथा किसी को किसी मे नही मिलता है। ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिये उसका श्रद्धान करना चाहिये।

प्र० ७७–आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है इसलिए उसका श्रद्धान करना। परन्तु जिन मार्ग मे दोनो नयो का ग्रहण करना कहा है। उसका कारण क्या है ?

उत्तर–(१) जिनमार्ग मे कही तो निश्चयनय की मुख्यता के लिये व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है"–ऐसा जनना। (२) तथा कही व्यवहारनय की मुख्यता के लिये व्याख्यान है, उसे "ऐसे है-नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"–ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनो नयो का ग्रहण है।

प्र० ७८–कुछ मनीषी ऐसा कहते है कि "ऐसे भी है और ऐसे भी है" इस प्रकार दोनो नयो का ग्रहण करना चाहिये। क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हॉ, बिल्कुल गलत है, क्योकि उन्हे जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है तथा दोनो नयो को समान सत्यार्थ जानकर "ऐसे भी है और ऐसे भी है" इस प्रकार भ्रमरुप प्रवर्तन से तो दोनो नयो का ग्रहण करना नही कहा है।

प्र० ७९–व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो उसका उपदेश जिन मार्ग

मे किसलिये दिया ? एक मात्र निश्चयनय ही का निरुपण करना था।

उत्तर—ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है—वहाँ उत्तर दिया दिया है-जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने मे कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना (ससार मे ससारी भाषा के बिना) परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इसलिये व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार द्वारा उपदेश देते है, उसका विषय भी है, परन्तु वह अगीकार करने योग्य नही है।

प्र० व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नही होता है इसके पहले प्रकार को समझाइये ?

उत्तर-निश्चय से आत्मा पर द्रव्यो से भिन्न स्वाभावो से अभिन्न सिद्ध वस्तु है। उसे जो नही पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नही पाये। इसीलिये उनको व्यवहारनय से शरीरादिक पर द्रव्यो की सापेक्षता द्वारा नर-नारक-पृथ्वी कायादिरुप जीव के विशेष किये, तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है। इत्यादि प्रकार सहित उन्हे जीव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार बिना (शरीर के सयोग बिना) निश्चय के (आत्मा के) उपदेश का न होना जानना।

प्र० ८१—प्रश्न ८० मे व्यवहारनय से शरीरादिक सहित जीव की पहचान कराई—तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नही करना चाहिए ? सो समझाइये।

उत्तर—व्यवहारनय से नर-नारक आदि पर्याय ही को जीव कहा—सो पर्याय ही को जीव नही मान लेना। वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के सयोग रुप है। वहाँ निश्चय से जीव द्रव्य भिन्न उस ही को जीव मानना। जीव के सयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा—सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से शरीरादिक

जीव होते नही। ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय (शरीरादिक वाला जीव है) अगीकार करने योग्य नही है।

प्र० ८२–व्यवहार बिना (भेद बिना) निश्चय का (अभेद आत्मा का) उपदेश कैसे नही होता ? इसके दूसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तर–निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है। उसे जो नही पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे–तो वे समझ नही पाये। तब उनको अभेद वस्तु मे भेद उत्पन्न करके ज्ञान–दर्शनादि गुण–पर्यायरुप जीव के विशेष किये तब 'जानने वाला' जीव है, देखने वाला जीव है। इत्यादि प्रकार सहित जीव की पहचान हुई। इस प्रकार भेद विना अभेद के उपदेश का न होना जानना।

प्र० ८३–प्रश्न ८२ मे व्यवहार से ज्ञानदर्शन भेद द्वारा जीव की पहचान कराई। तब ऐसे भेदरुप व्यवहारनय को कैसे अंगीकार नही करना चाहिये ? सो समझाइये।

उत्तर—अभेद आत्मा मे ज्ञान–दर्शनादि भेद किये–सो उन्हे भेदरुप ही नही मान लेना, क्योकि भेद तो समझाने के अर्थ किये है। निश्चय से आत्मा अभेद ही है–उस ही को जीव वस्तु मानना। सज्ञा-सख्या-लक्षण आदि से भेद कहे–सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से द्रव्य-गुण भिन्न-भिन्न नही है, ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार भेदरुप व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्र० ८४–व्यवहार बिना निश्चय का उपदेश कैसे नही होता ? तीसरे प्रकार को समझाइये।

उत्तार—निश्चय से वीतराग भाव मोक्ष मार्ग है, उसे जो नही पहचानते, उनको ऐसे ही कहते रहे–तो वे समझ नही पाये। तब उनको (१) तत्त्व श्रद्धान-ज्ञान पूर्वक (२) पर द्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा (३) व्यवहार नय से व्रत-शील-सयमादि को वीतराग भाव के विशेष बतलाये। तब उन्हे वीतराग भाव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार विना निश्चय मोक्ष मार्ग के उपदेश का न होना जानना।

प्र० ८५–प्रश्न ८४ मे व्यवहारनय से मोक्ष मार्ग की पहचान कराई। तब ऐसे व्यवहानय को कैसे अंगकार नहीं करना चाहिये ? सो समझाइये।

उ०–पर द्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा से व्रत-शील-सयमादिक को मोक्ष मार्ग कहा-सो इन्ही को मोक्षमार्ग नही मान लेना, क्योंकि (१) पर द्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा पर द्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जावे। परन्तु कोई द्रव्य किसी द्रव्य के आधीन नही है। इसलिए आत्मा अपने भाव जो रागादिक है, उन्हे छोडकर वीतरागी होता है। (३) इसलिये निश्चय से वीतराग भाव ही मोक्षमार्ग है। (४) वीतराग भावो के और व्रतादिक के कदाचित कार्य-कारणपना (निमित्त-नैमित्तकपना) है, (५) इसलिए व्रतादि को मोक्षमार्ग कहे–सो कथनमात्र ही है (६) परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नही है–ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है, ऐसा जानना।

प्र० ८६–जो जीव व्यवहारनय के कथन को ही सच्चा मान लेता है–उसे जिनवाणी मे किन-किन नामो से सम्बोधन किया है ?

उत्तर–(१) पुरुषार्थ सिद्धिउपाय गाथा ६ मे कहा कि "तस्य देशना नास्ति"। (२) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि "अज्ञान मोह अन्धकार है उसका सुलटना दुर्निवार है"। (३) प्रवचनासार गाथा ५५ मे कहा है "वह पद-पद पर धोखा खाता है"। (४) आत्मावलोकन मे कहा है कि "यह उसका हराजादीपना है"। इत्यादि सब शास्त्रो मे मूर्ख आदि नामो से सम्बोधन किया है।

प्र० ८७–जीव-अजीवादि मे हेय-ज्ञेय-उपादे[illegible] प्रकार है ?

उत्तर–शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव जिसका है वैस[illegible] आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) आ[illegible]

(३) अजीवतत्त्व की तरफ दृष्टि से जो आश्रव-वध-पुण्य-पाप उत्पन्न होते है वे सव छोडने योग्य हेय है (४) शुद्ध-बुद्धएक स्वभाव जिसका है वैसा निज परमात्मा द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न एकदेश वीतरागता प्रगट करने योग्य एक देश उपादेय। (५) पूर्ण क्षायिक दशा पूर्ण प्रगट करने योग्य उपादेय है।

प्र० ८८—जीव-अजीव को क्यो जानना चाहिये ? इस विषय मे मोक्षमार्ग प्रकाशक में क्या बताया।

उत्तर–(१) प्रथम तो दु ख करने मे अपना और पर का ज्ञान अवश्य होना चाहिये। (२) यदि अपना और पर का ज्ञान नही हो तो अपने को पहचाने विना अपना दु ख कैसे दूर करे ? (३) अपने को और पर को एक जानकर अपना दु:ख दूर करेने के अर्थ पर का उपचार करे तो अपना दु ख कैसे दूर हो ? (४) आप स्वय जीव है और पर अजीव भिन्न है, परन्तु यह पर मे अहकार-ममकार करे तो उसे दु ख ही होता है, अपना और पर का ज्ञान होने पर ही दु ख दूर होता है (५) अपना और पर का ज्ञान जीव-अजीव का ज्ञान होने पर ही होता है, क्योकि आप स्वय जीव तत्त्व है, शरीरादिक अजीव तत्त्व है। यदि लक्षणादि द्वारा जीव अजीव की पहचान हो तो अपनी और पर की भिन्नता भाषित हो, इसलिये जीव-अजीव को जानना चाहिये। (मो० पृ० ७८)

प्र० ८९—जीव अनादि से दु खी क्यो है ?

उत्तर–(१) जीव को अनादि स्व-पर की एकत्व रुप श्रद्धा से मिथ्यादर्शन है। (२) स्व-पर के एकत्व ज्ञान से मिथ्याज्ञान है। (३) स्व-पर के एकत्व आचरण से मिथ्याचारित्र है। अत अनादि से जीव स्व-पर के एकत्वादि के कारण ही दु खी है।

प्र० ९०—नयज्ञान और भेद ज्ञान की आवश्यकता क्यो है ?

उत्तर–समस्त दु खो का मूल कारण मिथ्या दर्शन–ज्ञानचारित्र ही है। इन सभी दु खो का अभाव करने के लिये नय ज्ञान और भेद

ज्ञान की आवश्यकता है।

प्र० ६१–भेद ज्ञान कितने प्रकार से करे तो ससार का अभाव मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उत्तर–एक प्रकार से ही भेद ज्ञान करे तो आत्म सन्मुख हो सकता है। (१) एक तरफ निज जीव तत्व और दूसरी तरफ अजीव तत्व से मेरा किसी भी अपेक्षा किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। ऐसा जाने-माने तो ससार का अभाव मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्र० ६२–पर्याय किसे कहते है ?

उत्तर—गुणो के कार्य को पर्याय कहते है।

प्र० ६३–पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद है–व्यजन पर्याय और अर्थ पर्याय।

प्र० ६४–व्यजन पर्याय किसे कहते है और व्यंजन पर्याय के कितने भेद है ?

उत्तर—द्रव्य के प्रदेशत्त्व गुण के विशेष कार्य को व्यजन पर्याय कहते है और व्यजन पर्याय के दो भेद है–स्वभाव व्यजन पर्याय और विभाव व्यजन पर्याय।

प्र० ६५–अर्थ पर्याय किसे कहते है और अर्थ पर्याय के कितने भेद है ?

उत्तर—प्रदेशत्व गुण के सिवाय सम्पूर्ण गुणो के कार्य को अर्थ पर्याय कहते है। और अर्थ पर्याय के दो भेद है–स्वभाव अर्थ पर्याय और विभाव अर्थ पर्याय।

प्र० ६६–पर्याय का स्पष्टीकरण कहा देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला तीसरे भाग मे पर्याय के वर्णन मे देखियेगा।

प्र० ६७–छहढ़ाला मे इस विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर–तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक वखानौ ।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आनौ ॥

प्र० ९८–इष्टोपदेश ५० वें श्लोक मे इस विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर–चेतन पुद्गल भिन्न है यही तत्व सक्षेप ।
अन्य कथन सब है इसी के विस्तार विशेप ॥५०॥

प्र० ९९–सामायिक पाठ मे इस विषय मे क्या बताया है ?

उत्तर–महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड देह सयोग ।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड चेतन का पूर्ण वियोग ॥

प्र० १००–योग सार में इस विपय मे क्या बताया है ?

उत्तर–जीव पुद्गल दोऊ भिन्न है, भिन्न सकल व्यवहार ।
तज पुद्गल ग्रह जीव तो, शीघ्र लहे भवपार ॥५०॥

जीवाधिकार

तिक्काले चदुपाणा इ द्रिय बल माउ आणपाणो य ।
व्यवहारा सो जीवो णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥३॥

अर्थ —(व्यवहारा) व्यवहारनय से जिसके (तिक्काले) भूत-वर्तमान और भविष्य काल मे (इन्द्रियबलमाउ) इन्द्रिय-बल-आयु (य) और (आणपाणो) श्वासोच्छ्वास (चदुपाणा) ये चार प्राण होते है । (दु) और (णिच्चयणय दो) निश्चयनय से (जस्स) जिसके (चेदणा) चेतना होती है (सो जीवो) वह जीव है ॥ ३ ॥

प्र० १०१—शुद्ध निश्चयनय से अनादि अनन्त प्रत्येक प्राणी के कौन सा प्राण है ?

उत्तर—निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक शुद्ध निश्चयनय से अनादि अनन्त शुद्ध चेतना प्राण ही है ।

प्र० १०२–प्राणो के कितने २ प्रकार हैं और किस-किस अपेक्षा से है?

उत्तर--प्राणो के तीन प्रकार है। (१) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जड प्राण ससार दशा मे ही होते है। (२) उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से भाव प्राण समार दशा मे होते है। (३) शुद्ध निश्चयनय से अनादि अनन्त चेतना प्राण प्राणी मात्र के पास है। (४) चौथे गुणस्थान से वारहवे गुणस्थान तक एकदेश अतीन्द्रिय भावप्राण और १३-१४ और सिद्ध दशा मे क्षायिक दशा रुप अतीन्द्रिय भावप्राण अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से ज्ञानियो के होते हैं।

प्र० १०३—जड प्राण किसका कार्य है और किसको किस दशा मे होते है?

उत्तर--(१) पाच इन्द्रिया, ३ वल, आयु और श्वासोच्छवास ये जड प्राण पुद्गल द्रव्य की स्कध रुप पर्याय है। (२) अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव को ससार दशा मे सयोग रुप से ये जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १०४—भावप्राण किसका कार्य है और किसको किस दशा मे हो सकते है?

उत्तर--(१) क्षयोपशम ज्ञान के उघाडरुप ज्ञान दशा (२) वल प्राण वीर्य गुण की क्षयोपशम दशा आदि जोव की दशा उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से समार दशा मे है।

प्र० १०५--अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से एकेन्द्रिय जीव के कितने जड़ प्राणो का सयोग होता है?

उत्तर--अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से एकेन्द्रिय जीव के स्पर्शन इन्द्रिय, कायवल, आयु और श्वासोच्छवास इन ४ जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १०६—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से दो इन्द्रिय वाले जीव के कितने जड़ प्राणो का संयोग होता है?

उत्तर–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से दो इन्द्रिय वाले जीव के स्पर्शन-रसना दो इन्द्रिया, वचन-काय दो बल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन ६ जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १०७—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से तीन इन्द्रिय वाले जीव के कितने जड प्राणो का सयोग होता है ?

उत्तर–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से तीन इन्द्रिय वाले जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण तीन इन्द्रिया, वचन वल दो बल, आयु और स्वासोच्छ्वास, इन सात जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १०८—अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय से चार इन्द्रिय वाले जीव के कितने जड प्राणो का सयोग होता है ?

उत्तर–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से चार इन्द्रिय वाले जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु चार इन्द्रिया, वचन-बल दो बल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन आठ जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १०९—अनुपचरित असदभूद व्यवहारनय से पाच इन्द्रिय वाले असैनी जीव के कितने जड प्राणो का सयोग होता है ?

उत्तर–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से पाच इन्द्रिय वाले असैनी जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु कर्ण पाच इन्द्रिया, वचन-काय दो वल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन नौ जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० ११०—अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय संज्ञी पाच इन्द्रिय वाले जीव के कितने जड प्राणो का सयोग होता है ?

उत्तर–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से सैनी पाच इन्द्रिय वाले जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-कर्ण पाच इन्द्रिया, मन-वचन–काय तीन वल, आयु और श्वासोच्छ्वास, इन दस जड प्राणो का सयोग होता है।

प्र० १११—अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय से जड प्राण जीव के होते है—ऐसा कौन कह सकता है और क्यो ?

उत्तर - ज्ञानी ही कह सकता है क्योकि उसको अपने निश्चय चेतना प्राण का ज्ञान है।

प्र० ११२—अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय से जड़ प्राण जीव के है—इस वाक्य पर निश्चय व्यवहार के दस प्रश्नोत्तर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर ११३ से १२२ तक नीचे पढियेगा।

प्र० ११३-कोई चतुर कहता है मै चेतना प्राण हू-ऐसे निश्चय-नय का श्रद्धान रखता हूं और मै दस प्राण वाला हू-ऐसे अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय की प्रवृत्ति रखता हू। परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनो को झूठा बता दिया तो हम निश्चय-व्यवहार दोनो नयो को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुया निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर—मै चेतना प्राण वाला हूँ-ऐसा जो शुद्ध निश्चयनय स निरुपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना और मै दस प्राण वाला हूँ—ऐसा जो अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से निरुपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्र० ११४—मै दस प्राण वाला हू—ऐसे अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय के त्याग करने का और मै चेतना प्राण वाला हू-ऐसे शुद्ध निश्चयनय के अगीकार करने का आदेश कही जिनवाणी मे भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि (१) मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि—शुद्ध निश्चयनय से मैं चेतना प्राण वाला हूँ और अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मै दस प्राणो वाला हूँ—यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे समस्त अध्यवसानो को छोडना, क्योकि मिथ्यादृष्टि को निश्चय-व्यवहार

कुछ होता ही नही–ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि मे आया है। (२) स्वय अमृनचन्द्राचार्य कहते है कि मै ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियो को जो मै दस प्राणा वाला हूँ-ऐसा पराश्रित व्यवहार होता है सो सर्व ही छुडाया है। तो फिर सन्त पुरुष स्वय सिद्ध एक परम त्रिकाली चेतना ही को अगीकार करके शुद्ध ज्ञान घनरुप निज महिमा मे स्थिति करके क्यो केवल ज्ञानादि प्रगट नही करते है–ऐसा कह कर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्र० ११५–मै चेतना प्राण वाला हू–ऐसे शुद्ध निश्चयनय को अंगीकार करने और मै दस प्राण वाला हू–ऐसे अनुपचरित्र असदभूत व्यवहारनय के त्याग के दिषय मे भगवान कुन्दकुन्दाचर्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—मोक्षप्राभृत गाथा ३१ मे कहा है कि (१) मै दस प्राण वाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की श्रद्धा छोडकर मै चेतना प्राण वाला हूँ-ऐसे शुद्ध निश्चयनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्म कार्य मे जागता है तथा (२) मै दस प्राण वाला हूँ–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय मे जागता है वह अपने आत्म कार्य मे सोता है। (३) इसलिए मै दस प्राण वाला हूँ ऐसे अनुपचरित असद्भूत ब्यवहारनय का श्रद्धान छोड कर मै शुद्ध चेतना प्राण वाला हूँ-ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्र० ११६–मै दस प्राण वाला हू–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर मै चेतना प्राण वाला हू–ऐसे शुद्ध निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर–(१) व्यवहारनय—मै चेतना प्राण हूँ-ऐसा स्वद्रव्य और मै दस प्राणवाला हूँ–ऐसा परद्रव्य को किसी को किसी मे मिला कर निरुपण करता है। सो मै दस प्राण वाला हूँ–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिये उसका

त्याग करना । (२) निश्चयनय—मैं चेतना प्राणवाला हूँ-ऐसा स्वद्रव्य और मैं दस प्राणवाला हूँ ऐसा—परद्रव्य । इस प्रकार निश्चयनय स्वद्रव्य-पर द्रव्य का यथावत निरुपण करता है, किसी को किसी मे नही मिलाता है । मै चेतना प्राण वाला हूँ-सो ऐसे ही शुद्ध निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना ।

प्र० ११७-आप कहते हो कि मै दस प्राण वाला हू-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना तथा मै चेतना प्राण वाला हू-ऐसे शुद्ध निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना। यदि ऐसा है तो जिनमार्ग मे दोनो नयो का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे है ?

उत्तर--(१) जिन मार्ग में कही तो मैं चेतना प्राण वाला हूँ-ऐसे शुद्ध निश्चयनय को मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है"-ऐसा जानना । (२) तथा कही मै दस प्राण वाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे "ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"-ऐसा जानना। (३) मै दस प्राणवाला नही हू, मै तो चेतना प्राणवाला हूँ—इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण है।

प्र० ११८-कुछ मनीषी ऐसा कहते है कि "मै दस प्राणवाला भी हूं" इस प्रकार हम निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करते है। क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हा बिल्कुल गलत है, क्योकि ऐसे महानुभावो को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है । तथा उन महानुभावो ने निश्चय-व्यवहार दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर कि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मै दस प्राणवाला भी

हूँ–और शुद्ध निश्चयनय से मै चेतना प्राणवाला भी हूँ–इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करना जिनवाणी मे नही कहा है।

प्र० ११९-मै दस प्राणवाला हूं-यदि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश जिनवाणी मे किसलिये दिया। मै चेतना प्राणवाला हू-ऐसे एक मात्र शुद्ध निश्चयनय का ही निरुपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहा उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नही है। उसी प्रकार मै दस प्राणवाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के बिना मै चेतना प्राण-वाला हू-ऐसे परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इसलिए मै दस प्राण-वाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश है। (२) मै चेतना प्राणवाला हूँ– ऐसे शुद्ध निश्चयनय का ज्ञान कराने के लिये, म,दस प्राणवाला हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय द्वारा उपदेश देते है। व्यवहारनय, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है, परन्तु अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय अ गीकार करने योग्य नही है।

प्र० १२०-मै दस प्राणवाला हूं-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना, मै चेतना प्राण वाला हू-ऐसे शुद्ध निश्चयनय का उपदेश कैसे नही होता ? इसे समझाइये।

उत्तर—शुद्ध निश्चयनय से आत्मा चेतना प्राणवाला है उसे जो नही पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे तब तो वे समझ नही पाये। इसलिये उनको अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से आत्मा दस प्राणवाला, नौ प्राणवाला, आठ प्राणवाला है। इस प्रकार प्राण सहित जीव की पहचान हुई।

प्र० १२१-मै दस प्राणवाला हूं-ऐसे अनुपचरित असद्भूत

व्यवहारनय से जीव की पहचान कराई, तब मै दस प्राणवाला हूं-ऐसे अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना चाहिये ?

उत्तर—अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय मे दस प्राण रुप पर्याय को जीव कहा सो प्राणो को ही जीव नही मान लेना। प्राण तो जीव के सयोग रुप हे। शुद्ध निश्चयनय से चेतना प्राण वाला जीव भिन्न है, उस ही को जीव मानना। चेतना प्राण वाला आत्मा के सयोग से प्राणो को भी उपचार से जीव कहा—सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से जडप्राण जीव होते ही नही—ऐसा श्रद्धान करना।

प्र० १२२-मै दस प्राण वाला हू-ऐसे अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है-उस जीव को जिनवाणी मे किस किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—मै दस प्राण वाला हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहार-नय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है (१) उसे पुरुषार्थ सिद्धियुपाय मे "तस्य देशना नास्ति" कहा है। (२) उसे समयसार कलश ५५ मे 'यह उसका अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।" (३) इसे प्रवचनसार गाथा ५५ मे "पद-पद पर धोखा खाता है।" (४) उसे आत्मावलोकन मे "यह उसका हराम-जादीपना है।

प्र० १२३-चेतना प्राण क्या है और किसको होते हैं ?

उत्तर—चेतना प्राण त्रिकाल पारिणमिक भाव रुप से है और निगोद से लगा कर सिद्ध भगवान तक के सर्व जीवो के चेतना प्राण एक समान सदा विद्यमान रहता है। चेतना प्राण के आश्रय से ही धम की प्राप्ति वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्र० १२४-प्राणो मे ज्ञेय-हेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) सयोग रूप जड प्राण व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है। (२) क्षयोपशमरुप भाव प्राण ज्ञेय-हेय है। (३) चेतना प्राण आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (४) चेतना प्राण के आश्रय से जो ज्ञान व कलादि प्रगट हुआ है वह एक देश प्रगट करने योग्य उपादेय है। (५) चेतना प्राण के परिपूर्ण आश्रय से जो क्षायिक दशा प्रगट हुई है वह पूर्ण प्रगट करने योग्य उपादेय है।

प्र० १२५—अनादि से ससार क्यो है ?

उत्तर—जड प्राणो मे अपने पने की मान्यता से ही ससार है। जब तक जीव देह प्रधान विपयो का ममत्व नही छोडता तब तक वह पुन पुन अन्य-अन्य प्राण धारण करता है।

प्र० १२६—इन जड प्राणो का सम्बन्ध कैसे हटे ?

उत्तर—मै चेतना प्राण वाला हूँ ऐसा अनुभव करे तो इन दस प्राणो मे ममत्वपना मिटकर क्रम से सिद्ध दशा की प्राप्ति हो तब प्राणो का सम्बन्ध ही नही बनेगा।

प्र० १२७—तीसरी गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—जीव द्रव्य से पुद्गल विपरीत है। इमलिये चेतनामयी परमात्म द्रव्य ही मै हूँ—ऐसो भावना करनी चाहिये।

प्र० १२८—सिद्ध भगवाद मे कौन-कौन से प्राण होते है ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनय से चेतना प्राण तो है ही। पर्याय मे जो क्षायिक दशा प्रगट हो जाती है उसे भी भाव प्राण कहते है। इस प्रकार सिद्ध भगवान के चेतना प्राण और उसके आश्रय से शुद्ध दशा प्राण होते है।

प्र० १२९—साधक ज्ञानी के कौन कौन से प्राण होते है ?

उत्तर—(१) चेतना प्राण तो शुद्ध निश्चयनय से है ही। (२) पर्याय मे अपनी-अपनी भूमिकानुसार जो शुद्धि प्रगट होती है वह भाव प्राण आनन्द रुप है। (३) जड प्राण ज्ञेय रुप है। (४) जो अशुद्धि है वह हेय रुप है।

प्र० १३०-थोडे मे इस गाथा में क्या बताया है ?

उत्तर-अपने चेतना प्राण का आश्रय ले तो सुखी हो।

प्र० १३१-उपयोग अधिकार में कितनी गाथायें ली गई है।

उत्तर-उपयोग अधिकार को तीन गाथाओ मे समझाया गया है।

उपयोग अधिकार (दर्शनोपयोग के भेद)

उवयोगो दुवियप्पो दसण णाण च दंसण चदुधा।

चक्खु अचक्खू ओही दसणमध केवल णेय ॥ ४ ॥

अर्थ -(उवयोगो), उपयोग (दुवियप्पो) दो प्रकार का है (दसण च णाणं) दर्शन और ज्ञान। (दसण) इनमे से दर्शनोपयोग (चदुधा) चार प्रकार का (णेय) जानना चाहिये। (चुक्खु अचक्खू ओही अध केवल दसणम्) चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन और केवल दर्शन।

प्र० १३२-उपयोग किसे कहते है ?

उत्तर-चैतन्य का अनुसरण करके होने वाले आत्मा के परिणाम को उपयोग कहते है।

प्र० १३३-उपयोग का द्रव्य और गुण क्या है ?

उत्तर-(१) चेतन जीव द्रव्य है। (२) ज्ञान-दर्शन गुण है। ज्ञान-दर्शन का एक नाम चैतन्य है।

प्र० १३४-उपयोग के कितने भेद है ?

उत्तर-दो भेद है--दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग।

प्र० १३५-चक्षु दर्शन किसको कहते है ?

उत्तर-चक्षु इन्द्रिय के द्वारा होने वाले मतिज्ञान से पहले के सामान्य प्रतिभास को चक्षुदर्शन कहते है।

प्र० १३६-अचक्षु-दर्शन किसको कहते है ?

उत्तर-चक्षु इन्द्रिय को छोडकर शेष चार इन्द्रियो और मन के

द्वारा होने वाले मतिज्ञान से पहले के सामान्य प्रतिभास को अचक्षु-दर्शन कहते है।

प्र० १३७—अवधि-दर्शन किसको कहते है ?

उत्तर—अवधि ज्ञान के पहले होने वाले सामान्य प्रतिभास को अवधि दर्शन कहते है।

प्र० १३८-केवल दर्शन किसको कहते है ?

उत्तर—केवल ज्ञान के साथ होने वाले सामान्य प्रतिभास को केवल दर्शन कहते है।

प्र० १३९-दर्शनोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर—पदार्थो के भेद रहित सामान्य प्रतिभास को दर्शनोपयोग कहते है।

प्र० १४०-दर्शन कब उत्पन्न होता है ?

उत्तर—छद्‌मस्थ जीवो के ज्ञान के पहले और केवल ज्ञानियो के ज्ञान के साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है।

प्र० १४१-शास्त्रो मे आता है कि दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम-क्षय के अनुसार उपयोग होता है ?

उत्तर—निमित्त कारण का ज्ञान कराने के लिए उपचार कथन है।

प्र० १४२-चार प्रकार के दर्शनो मे श्रुतदर्शन और मन पर्यय दर्शक के नाम क्यो नही आये ?

उत्तर—श्रुतदर्शन और मन पर्यय दर्शन नही होते है, क्योकि श्रुतज्ञान और मन पर्यय ज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होते है।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्‌ठवियप्प मदि सुद ओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जय केवलमवि पच्चक्ख परोक्खख भेय च ॥५॥

अर्थ –(मति सुद ओही अणाणणाणि) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि-

ज्ञान मति ज्ञान, श्रुत अज्ञान, अवधि अज्ञान (अवि) और (मणपज्जय केवलण) मन पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान–इस प्रकार (णाण) ज्ञानोपयोग (अट्टविप्प) आठ प्रकार का है। (च) और वह ज्ञानोपयोग (पच्चक्ख परोक्खभेय) प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो प्रकार का है।

प्र० १४३—ज्ञानोपयोग किसे कहते है ?

उत्तर—पदार्थों के विशेप प्रतिभास को ज्ञानोपयोग कहते है।

प्र० १४४—ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं ?

उत्तर—आठ भेद है। पाँच ज्ञान रुप और तीन अज्ञान रुप।

प्र० १४५—ज्ञानोपयोग के पाच ज्ञानरुप भेद कौन-कौन से है और तीन अज्ञानरुप भेद कौन-कौन से है ?

उत्तर—(१) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान–ये पाच ज्ञानरुप भेद है। (२) कुमति, कुश्रुत और कुअवधि–ये तीन अज्ञान रुप भेद है।

प्र० १४६—मतिज्ञान किसको कहते हैं ?

उत्तर—(१) पराश्रय की बुद्धि छोडकर दर्शन उपयोग पूर्वक स्व सन्मुखता से प्रगट होने वाले निज आत्मा के ज्ञान को मतिज्ञान कहते है। (२) इन्द्रिय और मन जिसमे निमित्त मात्र है–ऐसे ज्ञान को मतिज्ञान कहते है।

प्र० १४७—श्रुतज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—(१) मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्ध से अन्य पदार्थ को जानने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते है। (२) आत्मा की शुद्ध अनुभूति रुप श्रुतज्ञान को भावश्रुतज्ञान कहते है।

प्र० १४८—अवधिज्ञान किसको कहते है ?

उत्तर—द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा सहित रुपोपदार्थ के स्पप्ट ज्ञान को अवधि ज्ञान कहते है।

प्र० १४६–मन पर्यय ज्ञान किसको कहते है ?

उत्तर–द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादा सहित दूसरे के मन में स्थित रूपी विषय के स्पष्ट ज्ञान होने को मन पर्यय ज्ञान कहते है।

प्र० १५०–केवलज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—जो तीन कालवर्ती सर्व पदार्थो को (अनन्त धर्मात्मक सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय को) प्रत्येक समय मे यथास्थित परिपूर्ण रूप से स्पष्ट और एकसाथ जानता है उसको केवलज्ञान कहते है।

प्र० १५१–श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य मे क्रमवद्ध पर्याय होती है, आगे-पीछे नही होती है।

प्र० १५२–तीन अज्ञानरुप ज्ञान मिथ्यादृष्टियो को किस-किस प्रकार हैं ?

उत्तर—(१) चारो गतियो के मिथ्या दृष्टियो को कुमति-कुश्रुत तो होते ही है। (२) मिथ्यादृष्टि देव-देवियो तथा नारकियो को कुअवधि भी होता है। (३) किसी-किसी मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यच के भी कुअवधि होता है।

प्र० १५३–पाच ज्ञानरुप ज्ञान ज्ञानियो को किस-किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) सम्यक मति–सम्यक श्रुत–ये दो ज्ञान छद्मस्थ सम्यग्दृष्टियो को होते ही है। (२) अवधि ज्ञान किसी-किसी छद्मस्थ सम्यग्दृष्टियो को होता है। (३) देव-नारकी सम्यग्दृष्टियो को सुमति-सुश्रुत-सुअवधि-ये तीन होते है। (४) मन पर्यय ज्ञान किसी-किसी भावलिगी मुनि के होता है। (५) तीर्थंकर देव को मुनिदशा मे तथा गणधर देव को मन पर्यय ज्ञान नियम से होता है। (६) केवल ज्ञान केवली और सिद्ध भगवन्तो को होता है।

प्र० १५४–एक समय मे एक जीव के कितने ज्ञान हो सकते है ?

उत्तर - एक समय मे एक जीव के कम से कम एक और अधिक

से अधिक चार ज्ञान हो सकते है। खुलासा इस प्रकार है (१) केवल ज्ञान एक ही होता है। (२) दो-मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होते है। ३) तीन-मति-श्रुत अवधि ज्ञान अथवा मति-श्रुत मन पर्यय ज्ञान होते है। (४) चार-मति-श्रुत अवधि और मन पर्यय ज्ञान होते।

प्र० १५५-ज्ञान को मिथ्याज्ञान क्यो कहा है ?

उत्तर-मिथ्या दृष्टियो का मति-श्रुतज्ञान अन्य ज्ञेयो मे लगता है, किन्तु प्रयोजन भूत जीवादि तत्त्वो के यथार्थ निर्णय मे नही लगता होने से मिथ्या दृष्टियो के ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहा है।

प्र० १५६-ज्ञान को अज्ञान क्यो कहा है ?

उत्तर-तत्वज्ञान का अभाव होने से ज्ञान को अज्ञान कहा है।

प्र० १५७-ज्ञान को कुज्ञान क्यो कहा है ?

उत्तर-अपना प्रयोजन सिद्ध नही करने की अपेक्षा से कुज्ञान कहा है।

प्र० १५८-ज्ञान के दूसरी तरह से कितने भेद है ?

उत्तर-दो भेद है-परोक्ष और प्रत्यक्ष।

प्र० १५९-परोक्ष ज्ञान कौन-कौन से है ?

उत्तर-कुमति-कुश्रुत, सुमति-सुश्रुत ये चार ज्ञान परोक्ष है।

प्र० १६०-प्रत्यक्ष के कितने भेद है ?

उत्तर-दो भेद है-विकल और सकल।

प्र० १६१-विकलज्ञान कौन-कौन से है ?

उत्तर-कुअवधि-सुअवधि और मन पर्यय ज्ञान विकल ज्ञान है।

प्र० १६२-सकल प्रत्यक्ष कौन सा ज्ञान है ?

उत्तर-केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष है।

प्र० १६३-ज्ञान-दर्शन के बारह भेद किस-किस भाव मे आते है ?

उत्तर- [१]केवल ज्ञान और केवल दर्शन क्षायिक भाव मे आते है। [२] बाकी दस भेद क्षायोपशमिक भाव मे आते है। [३] इन

दस उपयोगो मे जितना ज्ञान-दर्शन का अभाव है वह औदयिक भाव मे आते है। तथा गाथा ६ मे "शुद्ध ज्ञान-दर्शन' पारिणामिक भाव मे आता है।

प्र० १६४–औपशमिक भाव कहां गया ?

उत्तर—ज्ञान-दर्शन-वीर्य मे औपशमिक भाव नही होता है।

उपयोग जीव का लक्षण है

अट्ठचदुणाण दसण सामण्ण जीव लक्खण भणिय।
व्यवहारा सुद्धणया सुद्ध पुण दसण णाण ॥ ६ ॥

अर्थ -(व्यवहारा) व्यवहारनय से (अट्ठचदु णाण दसण) आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन को (सामण्ण) सामान्य (जीव लक्खण) जीव का लक्षण (भणिय) कहा गया है। (पुण) और (सुद्धणया) शुद्ध निश्चयनय से (सुद्ध दसण णाण) शुद्ध दर्शन और ज्ञान को ही जीव का लक्षण कहा गया है।

प्र० १६५–चार दर्शनोपयोग आठ ज्ञानोपयोग के भेदो के लिये छठी गाथा मे 'सामान्य" शब्द क्या बतलाने को कहा है ?

उत्तर—इसमे दो कारण है। (१) १२ भेदो मे ससारी और मुक्त का पृथक्-पृथक् कथन न करने के कारण "सामान्य" शब्द कहा है। (२) 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' ऐसा कथन न करके ज्ञान-दर्शनोपयोग के 'सामान्यतया' भेद किये है। अत १२ भेदो मे से यथा सम्भव जिस जीव के जो लागू पडे, वह उस जीव का लक्षण समझना चाहिए।

प्र० १६६–गाथा चार से छह तक मे उपयोग का अर्थ क्या समझना चाहिए और क्या नहीं समझना चाहिये ?

उत्तर—(१) गाथा चार से छह तक मे 'उपयोग' का अर्थ ज्ञान-दर्शन का उपयोग समझना चाहिये। (२) चारित्रगुण की जो शुभोपयोग-अशुभोपयोग-शुद्धोपयोग अवस्था है, वह यहा नही समझना चाहिये।

प्र० १६७–गाथा ४ से ६ तक मे व्यवहार किसे कहा और निश्चय किसे कहा है ?

उत्तर—दर्शनोपयोग के चार और ज्ञानापयोग के आठ भेदो को व्यवहार कहा है और 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' को निश्चय कहा है ।

प्र० १६८–द्रव्यसग्रह की तीसरी गाथा मे किसे व्यवहार कहा और किसे निश्चय कहा है ?

उत्तर - दस जड प्राणो को व्यवहार कहा है और शुद्ध चेतना प्राण को निश्चय कहा है ।

प्र० १६९–उपयोग अधिकार में सम्यक् श्रुत प्रमाण और नय किस प्रकार है ?

उत्तर–(१) ज्ञान-दर्शन के भेदो को और शुद्ध दर्शन-ज्ञान त्रिकाली को एक साथ जानना सम्यक् श्रुत प्रमाण है। (२) ज्ञान-दर्शन के भेदो को गौण करके 'शुद्ध दर्शन ज्ञान' त्रिकाली को जानना वह निश्चयनय है। (३) 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' त्रिकाली को गौण करके ज्ञान-दर्शन के भेदो को जानना वह व्यवहारनय है।

प्र० १७०–मिथ्यादृष्टि के कुमति-कुश्रुत-कुअवधि होते है—इस कथन को किस नय से कहेगे ?

उत्तर—उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से

प्र० १७१–छद्मस्थ साधक जीव के मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय ज्ञान होते है—इस कथन को किस नय से कहेगे ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय मे ।

प्र० १७२–केवली भगवान को केवल दर्शन और केवल ज्ञान है—इस कथन को किस नय से कहेगे ?

उत्तर—अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से ।

प्र० १७३–उपयोग अधिकार की तीनो गाथा का सार क्या है ?

उत्तर—"शुद्ध दर्शन-ज्ञान' त्रिकाली ज्ञायक का आश्रय ले तो

कुमति-कुश्रुतादि का अभाव करके साधक दशा के मति-श्रुतादि को प्रगट करके क्रम से केवल ज्ञान-केवल दर्शन प्रगट करे यह उपयोग अधिकार की तीन गथाओ का सार है।

प्र० १७४–परमात्मप्रकाश गाथा १०७ मे भेदो के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—मति ज्ञानादि पॉच विकल्प रहित जो 'परमपद' है वह साक्षात मोक्ष का कारण है।

प्र० १७५–समयसार गाथा २०४ में इन भेदो के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर–"जिसमे समस्त भेद दूर हुये है ऐसे आत्म स्वभावभूत ज्ञान का ही अवलम्बन करना चाहिये। ज्ञान सामान्य के अवलम्बन से ही (१) निजपद की प्राप्ति होती है। (२) भ्रान्ति का नाश होता है। (३) जीव तत्व का लाभ होता है। (४) अनात्मा (अजीव तत्त्व का) का परिहार सिद्ध होता है। (५) द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म बलवान नही होते है। (६) राग-द्वेष-मोह उत्पन्न नही होते अर्थात् आश्रव उत्पन्न नही होता है। (७) राग-द्वेप-मोह बिना पुन कर्मास्रव उत्पन्न नही होता अर्थात् सवर उत्पन्न होता है। (८) कर्म वन्ध नही होता अर्थात् बन्ध का अभाव होता है। (९) पूव बद्ध कर्म भुक्त होकर निर्जरा को प्राप्त हो जाते है। (१०) फिर समस्त कर्मो का अभाव होने से साक्षात मोक्ष होता है-इसलिए शुद्ध-दर्शन-ज्ञान निज सामान्य स्वभाव को ही परमार्थ कहा है।

प्र० १७६–जो मतिश्रुतादि भेदो को जानकर शान्ति मानता है और अपने आत्मा का आश्रय नही लेता है, उसे तत्त्वार्थसूत्र में क्या कहा है ?

उत्तर—'उन्मत्तवत्' कहा है।

प्र० १७७–जीव को मतिश्रुतज्ञान और चक्षु-अचक्षु दर्शन होते

है—इसमें कौनसा नय लागू पडेगा ?

उत्तर–उपचरित असद्भूत व्यवहारनय।

प्र० १७८–उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव को मतिश्रुत और चक्षु-अचक्षुदर्शन है - इस पर निश्चय व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरों को समझाइयेगा ?

उत्तर–१७९ प्रश्नोत्तर से १८८ प्रश्नोत्तर तक नीचे पढ़ियेगा।

प्र० १७९–कोई चतुर कहता है कि मै शुद्ध दर्शन-ज्ञान वाला हू—ऐसे अभेद निश्चयनय का तो श्रद्धान करता हू और उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मै मतिश्रुत और चक्षु-अचक्षुदर्शन वाला हू – ऐसे भेदरुप व्यवहार की प्रवृति करता हू। परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनो को झूठा बता तो हम निश्चय व्यवहार को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर–(१) मै शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ–ऐसा अभेदरुप निश्चयनय से जो निरुपण किया हो, उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अगीकार करना। (२) और मै मतिश्रुत-चक्षु अचक्षु दर्शन वाला हूँ ऐसा उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जो निरुपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्र० १८०–मैं मतिश्रुत-चक्ष-अचक्षु दर्शन वाला हूं-ऐसे उपचरित असद्भूत व्यवहारतय के त्याग करने का और मैं शुद्ध दर्शन-ज्ञान वाला हूं-ऐसे अभेदरुप निश्चयनय को अंगीकार करने का आदेश कही भगवान अमृत चन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर—(१) समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि निश्चय से मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ और उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मै मति-श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शनवाला हूँ। यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे

समस्त अध्यवसानो को छोडना, क्योकि मिथ्यादृष्टि को अभेद निश्चय और भेद व्यवहार होता ही नही है ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि मे आया हे। (२) तथा स्वय अमृत चन्द्राचार्य कहते है कि–मै ऐसा मानता हूँ–ज्ञानियो को उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से मै मति श्रुत-चक्षु अचक्षु दर्शन वाला हूँ–ऐसा भेदरुप पराश्रित व्यवहार होता है, सो सर्व ही छुडाया है। तो फिर सन्त पुरुप शुद्ध ज्ञान-दर्शन निश्चय को ही अगीकार करके शुद्ध ज्ञान घनरुप निज महिमा मे स्थिति करके क्यो केवलज्ञान-केवल दर्शनादि प्रगट नही करते है–ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्र० १८१–मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ–ऐसे अभेदरुप निश्चय-नय को अंगीकार करने और मै मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ-ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग के विषय मे भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर—(१) मोक्ष प्राभृत गाथा ३१ मे कहा है कि—मै मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ ऐसे भेदरुप उपचरित असदभूत व्यवहार-नय की श्रद्धान छोडकर मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ-ऐसे अभेद रुप निश्चायनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्म कार्य मे जागता है।(२) तथा मैं मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ–ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय मे जागता हूँ वह अपने आत्म कार्य मे सोता है। (३) इसलिये मै मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ–ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरुप निश्चयनय का श्रद्धान करने योग्य है।

प्र० १८२–मै मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ–ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हू–ऐसे अभेदरुप निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों

योग्य है ?

उत्तर-(१) व्यवहारनय—मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ अभेद वस्तु यह स्वद्रव्य का भाव। मै मति श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ-यह पर द्रव्य का भाव। इस प्रकार व्यवहारनय स्वद्रव्य के भाव और पर द्रव्य के भाव को किसी को किसी मे मिलाकर निरुपण करता है। मै मति-श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—सो ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय—स्व द्रव्य के भावो को और पर द्रव्य के भावो को यथावत निरुपण करता है, किसी को किसी मे नही मिलाता है। मैं शुद्ध दर्शन-ज्ञान वाला हूँ—ऐसे अभेदरुप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना।

प्र० १८३–आप कहते हो–मै मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हू-ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना और मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हू-ऐसे अभेदरुप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है। परन्तु जिनमार्ग मे भेद-अभेदरुप निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर–(१) जिन मार्ग मे मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरुप निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है"—ऐसा जानना। (२) तथा कही मै मति-श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे "ऐसे है नही, भेदरुप व्यवहारनय का अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। (३) मै मतिश्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला नही हूँ मै तो शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ। इस प्रकार जानने का नाम ही भेद-अभेदरुप निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण है।

प्र० १८४–कुछ मनीषी ऐसा कहते है कि मै मतिश्रुत-चक्षु-

अचक्षु दर्शन भेदरुप भी हू और मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला अभेदरुप भी हू—इस प्रकार हम भेद-अभेदरुप निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करते है। क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ, बिल्कुल ही गलत है, क्योकि ऐसे महानुभावो को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नही है तथा उन महानुभावो ने अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जान करके उपचरित असद्भूत व्यवहार से मै मति-श्रुत-चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला भी हूँ और निश्चय से मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला भी हूँ—इस प्रकर भ्रमरुप प्रवर्तन से तो अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करना जिनवाणी मे नही कहा है।

प्र० १८५—मै मतिश्रुत,चाक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हू—यदि ऐसा भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय असत्यार्थ है तो भेदरुप उपचिरत असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश जिनवाणी मे किसलिये दिया ? मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हू—ऐसे एकमात्र अभेद निश्चयनय का ही निरुपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा विना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नही है, उसी प्रकार मैं मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेदरूप उपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना, मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेद परमार्थ का उपदेश अशक्य है। इसलिये मै मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ—ऐसे भेद-रुप उपचरित असदभूत व्यवहारनय का उपदेश है। (२) मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला हूँ—ऐसे अभेदरुप निश्चय का ज्ञान कराने के लिये मै मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूँ ऐसे भेदरुप उपचरित असद्-भूत व्यवहार का उपदेश है। भेदरुप व्यवहारनय है, उसका उपदेश भी है, जानने योग्य है, परन्तु भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्र० १८६—मै मति-श्रुत चाक्षु अचक्षु दर्शन वाला हू—ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के बिना मै शुद्ध-ज्ञान दर्शन वाला हूं—ऐसे अभेद निश्चनय का उपदेश कैसे नही होता है ?

उत्तर—शुद्ध निश्चयनय से मै शुद्ध ज्ञानदर्शन वाला हूँ। उसे जो नही पहचानते उनसे इसी प्रकार कहते रहे तव तो वे समझ नही पाये। इसलिये उनको अभेद वस्तु मे भेद उत्पन्न करके मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला जीव है, ऐसे जीव के विशेष किये तब मति-श्रुत चक्षु-अचक्षु वाला जीव है—इत्यादि पर्याय सहित उनको जीव की पहचान हुई। मै मति श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हू-ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना अभेदरुप निश्चय का उपदेश न होना जानना।

प्र० १८७—मै मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हूं—ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय को कैसे अगीकार नही करना, सो समझाइये ?

उत्तर—मै शुद्ध ज्ञान-दर्शन अभेद आत्मा मे मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन रुप भेद किये, सो उन्हे भेदरुप ही नही मान लेना, क्योकि मै मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हू—ऐसा भेद तोसमझानेके अर्थ किये है। निश्चय से आत्मा शुद्ध ज्ञान-दर्शन वाला अभेद ही है। उसी को जीव वस्तु मानना। सज्ञा-सख्या-लक्षण आदि से भेद कहे सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से भिन्न-भिन्न नही है-ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार मै मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हू ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहार अगीकार करने योग्य नही है।

प्र० १८८—मै मतिश्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हू—ऐसे भेदरुप उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है। उस जीव को जिनवाणी मे किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—मै मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षु दर्शन वाला हू-ऐसे भेदरुप

उपचरित असद्भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है उसे (१) पुरुषार्थ सिद्धियुपाय श्लोक ६ मे कहा है "तस्य देशना नास्ति"। (२) समयसार कलश ५५ मे कहा है कि "यह उसका अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है"। (३) प्रवचनासार गाथा ५५ मे कहा है "वह पद-पद पर धोखा खाता है"। (४) आत्मावलोकन मे कहा है 'यह उनका हरामजादी-पना है।

प्र० १८९—उपयोग अधिकार की गाथा ४ से ६ तक भेदो मे हेय-ज्ञेय लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) शुद्ध दर्शन ज्ञान त्रिकाली स्वभाव आस्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) कुमति-कुश्रुत-कुअवधि, चक्षु-अचक्षु दर्शन आदि हेय है। (३) साधक दशा के मति-श्रुत-अवधि-मन पर्ययज्ञान, चक्षु-अचक्षु-अवधि दर्शन एकदेश प्रगट करने योग्य उपादेय है। (४) केवल ज्ञान-केवल दर्शन पूर्ण प्रगट करने योग्य पूर्ण उपादेय है।

अमूर्तिकत्व अधिकार

वण्ण रस पच गधा दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे ।
णो सति अमूत्ति तदो व्यवहारा मुत्ति वधा दो ॥ ७ ॥

अर्थ –(णिच्चया) निश्चयनय से (जीवे) जीव द्रव्य मे (वण्ण रस पच्) पाच वर्ण, पाच रस (गधा दो) दो गध (फासा अट्ठ) आठ स्पर्श (णो मति) नही होते है। (तदो) इसलिये जीव (अमूत्ति) अमूर्तिक है। (व्यवहारा) व्यवहारनय से जीव को (बधा दो) कर्म-बन्धन होने से (मूत्ति) मूर्तिक कहा है।

प्र० १९३–प्रत्येक जीव का स्वभाव कैसा है ?

उ०–प्रत्येक जीव अनादि अनन्त अवर्ण-अगध-अरस-अस्पर्श-अशब्द आदि अनन्त गुणो का पुज है। इसलिये प्रत्येक जीव हर समय अमूर्तिक ही है।

प्र० १६४–संसार दशा मे जीव कैसा कहने मे आता है ?

उ०–ससार दशा मे अनादि से मूर्तिक पुद्गल कर्मो के साथ उसका बन्ध है। इसलिये सयोग का ज्ञान कराने के लिये उसे मूर्तिक कहा जाता है, परन्तु मूर्तिक है नही।

प्र० १६५–यदि कोई जीव को मूर्तिक ही माने तो क्या दोष आवेगा ?

उ०–जीव-अजीव का भेद ही नही रहेगा।

प्र०–१६६–जीव को ससार दशा मे मूर्तिक किस नय से कहा जा सकता है ?

उत्तर—अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय से कहा जा सकता है कि जीव मूर्तिक है।

प्र० १६७–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव मूर्तिक है–इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तर लगाकर समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १८९ से २०७ तक के अनुसार नीचे पढिये।

प्र० १६८–कोई चतुर कहता है कि मै अमूर्तिक हू ऐसे निश्चय-का श्रद्धान रखता हूं और मै मूर्तिक हूं–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की प्रवृति रखता हूं। परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनो को झूठा बता दिया, तो हम निश्चय-व्यवहार दोनो नयो को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर–मै अमूर्तिक हूँ ऐसा निश्चयनय से जो निरुपण किया है। उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान करना और मै मूर्तिक हूँ–ऐसा जो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से निरुपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोडना।

प्र० १६६–मै मूर्तिक हूं–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग करने का और मै अमूर्तिक हू–ऐसे निश्चयनय के अंगीकार

करने का आदेश कही जिनवाणी मे भगवान अमृत चन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर–समयसार कलश १७३ मे आदेश दिया है कि (१) मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि निश्चयनय से मै अमूर्तिक हैं और अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मैं मूर्तिक हूँ–यह मिथ्या अध्यवसाय है–और ऐसे ऐसे समस्त अध्यवसानो को छोडना, क्योकि मिथ्यादृष्टि को निश्चय-व्यवहार कुछ होता हो नही–ऐसा अनादि से जिनेन्द्र भगवान की दिव्यध्वनि मे आया है। (२) स्वय अमृतचन्द्राचार्य कहते है कि मै ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियो को जो मै मूर्तिक हूँ–ऐसा पराश्रित व्यवहार होता है, सो सर्व ही छुडाया है। तो फिर सन्त पुरुप स्वयसिद्ध एक परम अमूर्तिक आत्मा को ही अगीकार करके क्यो केवलज्ञानादि प्रगट नही करते है–ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्र० २००—मै अमूर्तिक हू–ऐसे निश्चयनय को अंगीकार करने और मै मूर्तिक हू–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर–मोक्ष पाहुड गाथा ३१ मे कहा है कि (१) मै मूर्तिक हूँ–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय की श्रद्धा छोडकर मै अमूर्तिक हूँ–ऐसे निश्चयनय की श्रद्धा करता है वह योगी अपने आत्म कार्य मे जागता है। तथा (२) मै मूर्तिक हूँ–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय मे जागता है वह अपने आत्म कार्य मे सोता है। (३) इसलिये मे मूर्तिक हूँ–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर मैं मूर्तिक हूँ–ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्र० २०१—मै मूर्तिक हू–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का श्रद्धान छोडकर मै अमूर्तिक हू–ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यो योग्य है ?

उत्तर—(१) व्यवहारनय—मै अमूर्तिक हूँ ऐसा स्वद्रव्य और मै मूर्तिक हूँ-ऐसा परद्रव्य को किसी को किसी मे मिलाकर निरुपण करता है। सो मै मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना। (२) निश्चयनय—मै अमूर्तिक हूँ ऐसा स्वद्रव्य और मै मूर्तिक हू—ऐसा परद्रव्य। इस प्रकार निश्चयनय स्वद्रव्य-परद्रव्य का यथावत निरुपण करता है, किसी को किसी मे नही मिलाता है। मैं अमूर्तिक आत्मा हूँ-ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना।

प्र० २०२—आप कहते हो कि मै मूर्तिक हूं—ऐसे अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना तथा मै अमूर्तिक आत्मा हू ऐसे निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका श्रद्धान करना। यदि ऐसा है तो जिनमार्ग मे दोनो नयो का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे है ?

उत्तर—(१) जिनमार्ग मे कही तो मै अमूर्तिक आत्मा हूँ—ऐसे निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो "सत्यार्थ ऐसे ही है"-ऐसा जानना। (२) तथा कही मै मूर्तिक हूँ—ऐसे अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है उसे "ऐसे है नही, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है"—ऐसा जानना। (३) मैं मूर्तिक नही हूँ, मै अमूर्तिक आत्मा हूँ इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दो नयो का ग्रहण है।

प्र० २०३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि मै मूर्तिक भी हूं और अमूर्तिक आत्मा भी हूं।" इस प्रकार हम निश्चय-व्यवहार दोनो का ग्रहण करते है। क्या उन महानुभावो का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर—हाँ, बिल्कुल गलत है क्योकि ऐसे महानुभावो को जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता ही नही है। तथा उन महानुभावो

ने निश्चय व्यवहार दोनो नयो के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर कि मै अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से मै मूर्तिक भी हूं और निश्चयनय से मै अमूर्तिक आत्मा भी हूँ इस प्रकार भ्रम रुप प्रवर्तन से तो निश्चय-व्यवहार दोनो नयो का ग्रहण करना जिनवाणी मे नही कहा है।

प्र० २०४—मै मूर्तिक हूं–ऐसा यदि अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय का उपदेश जिनवाणी मे किसलिये दिया। मै अमूर्तिक आत्मा हूँ–एक मात्र ऐसे निश्चयनय का ही निरुपण करना था ?

उत्तर—(१) ऐसा ही तर्क समयसार मे किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को मलेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नही है। उसी प्रकार मै मूर्तिक हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना मै अमूर्तिक आत्मा हू-ऐसे परमार्थ का उपदेश अशक्य है–इसलिए मै मूर्तिक आत्मा हू-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार का उपदेश है। (२) मै अमूर्तिक आत्मा हूँ–ऐसे निश्चयनय का ज्ञान कराने के लिये मै मूर्तिक आत्मा हूँ-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के द्वारा उपदेश देते है। व्यवहार-नय है, उसका विषय भी है, वह जानने योग्य है, परन्तु व्यवहारनय अगीकार करने योग्य नही है।

प्र० २०५—मै मूर्तिक आत्मा हू–ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहार के बिना मै अमूर्तिक आत्मा हू–ऐसे निश्चयनय का उपदेश कैसे नही होता ? इसे समझाइये।

उत्तर–निश्चयनय से आत्मा अमूर्तिक है, उसे जो नही पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे, तब तो वे समझ नही पाये। इसलिये उनको अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से आत्मा मूर्तिक है–इस प्रकार मूर्तिक सहित जीव की उन्हे पहचान हुई।

प्र० २०६–मै मूर्तिक आत्मा हू–ऐसे अनुपचरित असद्भूत

व्यवहारनय से जीव की पहचान कराई। तब मै मूर्तिक हू-ऐसे अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय को कैसे अगीकार नहीं करना चाहिये ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से स्पर्श-रस-गध-वर्ण मूर्तिक को जीव कहा सो मूर्तिक को ही जीव नही मान लेना। मूर्तिक पुद्गल तो जीव के सयोग रुप है। निश्चयनय से अमूर्तिक आत्मा मूर्तिक पुद्गल से भिन्न हे, उस ही को जीव मानना। अमूर्तिक आत्मा के सयोग से मूर्तिक को भी उपचार से जीव कहा सो कथन मात्र ही है। परमार्थ से मूर्तिक वाला जीव होता हा नही—ऐसा श्रद्धान करना।

प्र० २०७—मै मूर्तिक आत्मा हू-ऐसे अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है-उस जीव को जिनवाणी मे किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर—मै मूर्तिक आत्मा हू-ऐसे अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है-(१) उसे पुरुपार्थ सद्धियुपाय मे "तस्य देशना नास्ति" कहा है। (२) उसे समयसार कलश ५५ मे "यह उसका अज्ञान मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है"। (३) उसे प्रवचनसार गाथा ५५ मे "पद-पद पर धोखा खाता हे।" (४) उसे आत्मावलोकन मे "यह उसका हरामजादीपना है।" ऐसा कहा है।

प्र० २०८—अमूर्त किसे कहते है ?

उत्तर—जिनमे आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गध और पाॅच वर्ण ना हो उसे अमूर्त कहते है।

प्र० २०९—आठ स्पर्श, पाॅच रस, दो गध और पाॅच वर्ण का स्पष्ट खुलासा कहाॅ देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला तीसरे भाग मे विश्व पाठ मे प्रश्नोत्तर १०६ से १८१ तक देखियेगा।

प्र० २१०—इस गाथा मे निश्चयनय-व्यवहारनय क्या बतलाता है?

उत्तर—(१) निश्चयनय जीव की त्रैकालिक अमूर्तिकता को बताता है। (२) व्यवहारनय पुद्गल कर्म के साथ का अनादि सम्बन्ध बताता है। इन दोनो नयो का विषय परस्पर विरोधी है, परन्तु उसके एक साथ रहने मे विरोध नही है।

प्र० २११—तीसरी गाथा मे और इस गाथा मे क्या अन्तर है?

उत्तर—तीसरी गाथा मे पुद्गल प्राणो के साथ का व्यवहार सम्बन्ध बतलाया है और इस सातवी गाथा मे पुद्गल कर्म के साथ का व्यवहार सम्बन्ध बतलाया है।

प्र० २१२—अमूर्तिक अधिकार को जानने का क्या-क्या लाभ होना चाहिये?

उत्तर—(१) पुद्गल द्रव्यकर्म से मुझ आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध नही है इसलिए मुझे वह हानि-लाभ नही कर सकता है। (२) अपने अमूर्तिक त्रैकालिक ध्रुव स्वभाव का आश्रय करने से धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है। (३) आत्मा मे पूर्ण शुद्धता होने पर पद्गल कर्म के साथ का आत्यन्तिक वियोग होकर आत्मा मे सिद्ध दशा हो जाती है।

प्र० २१३—अमूर्तिक इस अधिकार मे हेय-ज्ञेय-उपादेय समझाइये?

उत्तर—(१) अस्पर्श, अरस, अगन्ध, अवर्ण, अशब्द, अमूर्तिक त्रिकाली ध्रुव स्वभाव आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) अमूर्त त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से प्रगट शुद्ध पर्यायें प्रगट करने योग्य उपादेय है। (३) साधक दशा मे जितना अस्थिरता का राग है वह हेय है। (४) द्रव्यकर्म का सम्बन्ध व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है।

प्र० २१४—छहढाला मे अमूर्तिक को किस नाम से सम्बोधन किया है और उसका अर्थ क्या है?

उत्तर—(१) बिनमूरत नाम से सम्बोधन किया है। (२) बिन-

मूरत अर्थात- आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोरूप मेरी मूर्ति नही है।

प्र० २१५—विनमूरत का स्पष्ट वर्णन कहा देखे ?

उत्तर—जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला तीसरे भाग के पहले पाठ मे प्रश्नोत्तार २०७ से २१७ तक देखियेगा।

कर्त्ता अधिकार

पुग्गल कम्मादीण कत्ता व्यवहारदो दु णिच्चयदो ।
चेदण कम्माणादा सुद्धणया सुद्ध भावाण ॥ ८ ॥

अर्थ — (व्यवहारदो) व्यवहारनय से (आदा) आत्मा (पुग्गल कम्मा दीण) पुद्गल कर्मादि का (कत्ता) कर्ता है। (दु) और (णिच्चयदो) अशुद्ध निश्चयनय से (चेदण कम्माण) चेतन भाव कर्मो का कर्ता है। तथा (शुद्धाणया) शुद्ध निश्चयनय से (शुद्ध भावानाम) शुद्ध ज्ञान और शुद्ध दर्शन स्वरूप चैतन्य आदि भावो का कर्ता है।

प्र० २१६—कर्तृत्व और अकर्तृत्व क्या है ?

उत्तर—ये सामान्य गुण हैं, क्योकि प्रत्येक द्रव्य मे पाये जाते है।

प्र० २१७—कर्तृत्व और अकर्तृत्व क्या बताता है ?

उत्तर—(१) प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी अवस्था का कर्ता है यह कर्तव्त गुण बताता है। और (२) पर की अवस्था का कर्ता नही हो सकता है—यह अकर्तृत्व गुण बताता है।

प्र० २१८—कर्तृत्व और अकर्तृत्व गुण के कारण जीव किसका कर्ता है और किसका कर्ता नहीं है ?

उत्तर—(१) चैतन्य स्वभाव के कारण जीव ज्ञप्ति तथा द्रशि का कर्ता है, द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता नही है। (२) अज्ञान दशा मे शुभाशुभ विकारी भावो का कर्ता है, विकारी भावो के निमित्तरुप द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता सर्वथा नही है। (३) जीव हस्तादि शरीर की क्रिया का कर्ता तो कदापि नही है।

प्र० २१९—जीव घट-पट, रोटी खाने, बोलने आदि का कर्ता कहा जाता है वह किस अपेक्षा से है ?

उत्तर—जीव को अत्यन्त भिन्न वस्तुओ का कर्ता उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, कर्ता है नही।

प्र० २२०—जीव उपचरित असदभूत व्यवहारनय से अत्यन्त भिन्न पदार्थो का कर्ता कहा जाता है इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो का स्पष्टीकरण समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तार १९८ से २०७ तक के अनुसार देखकर प्रश्नोत्तर स्वय बनाओ।

प्र० २२१—औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरो का, आहारादि छह पर्याप्ति योग्य पुदगल पिण्ड नोकर्मो का तथा ज्ञानावरणादि आठ कर्मो का कर्ता जीव को किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कर्ता कहा जाता है, कर्ता है नही।

प्र० २२२—जीव ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का कर्ता है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो का स्पष्टीकरण समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तार १९८ से २०७ तक के अनुसार देखकर प्रश्नोत्तर स्वय बनाओ।

प्र० २२३—जीव शुभाशुभ विकारी भावो का कर्ता किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० २२४—शुभाशुभ विकारी भावो का कर्ता उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से जीव है-इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के प्रश्नोत्तारो को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तार १९८ से २०७ तक के अनुसार देखो और समझो।

प्र० २२५-शुद्ध भावो का कर्ता जीव को किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय मे।

प्र० २२६—जीव अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कर्ता किस-किस का है, स्पष्टता से समझाइये ?

उत्तर—सवर-निर्जरा-मोक्ष, निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरित्र, निश्चय प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यान, ध्यान, भक्ति, समाधि आदि समस्त शुद्ध भावो का कर्ता है क्योकि यह सब वीतरागी क्रियाये है।

प्र० २२७-कर्ता अधिकार की आठवी गाथा मे हेय-ज्ञेय-उपादेय लगाकर समझाइये ?

उत्तर—(१) कर्तृत्व-अकर्तृत्व गुणरूप त्रिकाली आत्मा आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) त्रिकाली आत्मा के आश्रय से जो शुद्ध दशा प्रगटी-वह प्रगट करने योग्य उपादेय है। (३) साधक दशा मे जो व्यवहार रत्नत्रयादि के विकल्प है वह हेय है। (४) द्रव्यकर्म-नोकर्मादि सब व्यवहारनय से ज्ञेय है।

प्र० २२८—जीव द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता तो कदापि नही है—ऐसा कही समयसार मे बताया है ?

उत्तर—समयसार की ८५-८६ गाथा मे जो द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता जीव को मानता है वह सर्वज्ञ के मत से बाहर है और वह द्विक्रियावादी है।

प्र० २२९—जो द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता जीव को मानता है उसे छहढाला मे किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर—बहिरात्मा के नाम से सम्बोधन किया है।

प्र० २३०—कर्ता अधिकार का सार क्या है ?

उत्तर–नित्य-निरजन-निष्क्रिय-निजात्म त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेकर पर्याय मे शुद्ध भावो का कर्ता बने ।

प्र० २३१—कुम्हार ने घडा बनाया–इस वाक्य पर निमित्त की परिभाषा लगाकर समझाइये ?

उत्तर—कुम्हार स्वय स्वत घडा रुप न परिणमे, परन्तु घडे की उत्पत्ति मे अनुकूल होने का जिस पर आरोप आ सके उस कुम्हार को निमित्त कारण कहते है ।

प्र० २३२–कुम्हार ने घडा बनाया–निमित्त-नैमित्तिक समझाइये ?

उत्तर—मिट्टी जब स्वय स्वत घडे रुप परिणमित होती है तब कुम्हार के राग का निमित्त का घडे के साथ सम्बन्ध है यह बतलाने के लिये घडे को नैमित्तिक कहते है। इस प्रकार कुम्हार का राग, घडे के स्वतत्र सम्बन्ध को निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध कहते है ।

भोक्तृत्व अधिकार

ववहारा सुह दुक्ख पुग्गलकम्मप्फल पभु जेदि ।
आदा णिच्चयणयदो चेदणभाव खु आदस्स ।। ९ ।।

अर्थ —(व्यवहारा) व्यवहारनय से (आदा) आत्मा (सुह दुक्ख) सुख-दुख रुप पुद्गल कर्म के फल का भोगता है। और (णिच्चयणयदो) निश्चयनय से (खु) नियम पूर्वक (आदस्स) आत्मा के (चेदणभाव) चैतन्य भावो का भोगता है ।

प्र० २३३—भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व क्या है ?

उत्तर—छहो द्रव्यो के सामान्य गुण है, क्योकि यह सब द्रव्यो मे पाये जाते है ।

प्र० २३४—भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व सामान्य गुण क्या बताते है ?

उत्तर—(१) प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी अवस्था का भोगता है

यह भोक्तृत्व गुण बताता है। और (२) पर की अवस्था का भोक्ता नही हो सकता है वह अभोक्तृत्व गुण बताता है।

प्र० २३५--भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व सामान्य गुण के कारण जीव किसका भोक्ता है और किसका भोक्ता नही है ?

उत्तर-(१) अज्ञान दशा मे जीव हर्ष-विपादरुप अर्थात सुख दु ख विकारी भावो का भोगता है, विकारी भावो के निमित्तरुप द्रव्यकर्म-नोकर्म का भोक्ता सर्वथा नही है। (२) साधक दशा मे अतीन्द्रिय सुख का अशत भोक्ता है। (३) केवलज्ञानादि होने पर परिपूर्ण सुख का भोक्ता है। (४) जीव पुद्गल कर्मो के अनुभाग का या पर पदार्थो का भोक्ता किसी भी अपेक्षा नही है।

प्र० २३६–जीव अत्यन्त भिन्न पर पदार्थो का भोक्ता है-ऐसा किस अपेक्षा से कहा जाता है।

उत्तर–उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, वास्तव मे भोक्ता है नही।

प्र० २३७–जीव उपचरित असदभूत व्यवहारनय से अत्यन्त भिन्न पर पदार्थो का भोक्ता है–इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर–प्रश्नोत्तर १९८ से २०७ तक के अनुसार स्वय प्रश्नोतर बनाकर दो।

प्र० २३८–जीव औदारिक आदि शरीर, पाच इन्द्रियो का तथा आठ द्रव्य कर्मो का भोक्ता किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, वास्तव मे भोक्ता है नही।

प्र० २३९–जब जीव अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ, शरीर इन्द्रिया तथा द्रव्यकर्मो का भोक्ता सर्वथा नही है तब आगम मे उनका भोक्ता क्यो कहा जाता है ?

उत्तर—जीव का भाव उस समय निमित्त होने से इनका भोक्ता

है-ऐसा कहा जाता है।

प्र० २४०–जीव अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय से औदारिक आदि शरीर, पॉच इन्द्रियां तथा आठ द्रव्यकर्मो का भोक्ता है-इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तारो को समझाइये ?

उत्तार–प्रश्नोत्तर १९८ से २०७ तक के अनुसार स्वय प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

प्र० २४१-जीव हर्ष-विषाद, सुख-दु ख विकारी भावो का भोक्ता किस अपेक्षा से आगम मे कहा है ?

उ०—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० २४२—साधक दशा मे जीव अतीन्द्रिय सुख का भोक्ता है-किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उ०—अनुपचरित सद्भून व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० २४३ – केवलज्ञानी अपने परिपूर्ण सुख का भोक्ता है-किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उ०—अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० २४४ – भोक्तृत्व अधिकार में हेय-उपादेय-ज्ञेय किस प्रकार हैं ?

उ०—(१) भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व रुप त्रिकाली आत्मा आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) साधक दशा मे अतीन्द्रिय सुख का अशत भोक्ता है और यह एक देश प्रगट करने योग्य उपादेय है। (३) केवली परिपूर्ण अतीन्द्रिय सुख का भोक्ता है–यह पूर्ण भोगने की अपेक्षा पूर्ण उपादेय है। (४) साधक को अस्थिरता सम्बन्धी सुख-दु ख हेय है। (५) साता-असाता अनुभाग का फल तथा अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ, इन्द्रियॉ आदि व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है।

प्र० २४५—भोक्तृत्व अधिकार का सार क्या है ?

उ०—जीव यथार्थ वस्तुस्वरुप को जानकर पर की और विकार

की कर्तृत्व और भोक्तृत्व बुद्धि को छोडकर अपने सहज निर्विकार चिदानन्दस्वरुप शुद्ध पर्याय का कर्ता-भोक्ता होने का प्रयत्न करे।

— ० —

स्वदेह परिणामत्व अधिकार

अणु गुरू देह पमाणो उव सहारप्प सप्पदो चेदा।
असमुहदो व्यवहारा णिच्चयणयदो असख देसो वा ॥ १० ॥

अर्थ--(व्यवहारा) व्यवहारनय से (चेदा) जीव (उप सहारप्प-सप्प दो) सकोच और विस्तार के कारण (असमुह दो) समुद्घात अवस्था को छोडकर (अणु गुरु देह पमाणो) छोटे-वडे शरीर के प्रमाण मे रहता है। (वा) और (णिच्चयणय दो) निश्चयनय से (असख्य देसो) वह लोकाकाश जितने असख्य प्रदेश वाला है।

प्र० २४६—प्रत्येक जीव का स्वक्षेत्र क्या है ?

उ०—प्रत्येक जीव का स्वक्षेत्र लोकाकाश जितना असख्यात प्रदेश वाला है। प्रदेशो की सख्या सदैव उतनी की उतनी ही रहती है, क्योकि स्वचतुष्टय ही एक अखड द्रव्य है।

प्र० २४७—क्या छह द्रव्यो में से किसी द्रव्य के क्षेत्र मे खण्ड-टुकडा हो सकते है ?

उ०—बिल्कुल नही हो सकते है, क्योकि सभी मूल द्रव्य अखड है, उसी प्रकार प्रत्येक जीव भी अखड द्रव्य है, इसलिये उसके खण्ड, छेदन, टुकडा कदापि नही हो सकते है।

प्र० २४८—प्रत्येक द्रव्य के स्वक्षेत्र से क्या सिद्ध होता है ?

उ०—प्रत्येक द्रव्य का क्षेत्र पृथक-पृथक है, इसलिये जीव के क्षेत्र मे अन्य कोई द्रव्य प्रवेश नही कर सकता है और जीव भी किसी दूसरे के क्षेत्र मे नही घुस सकता है।

प्र० २४९—पुद्गल स्कंध के तो खण्ड, छेदन, टुकड़ा हो जाता है, तब सभी मूल द्रव्य अखंड है यह बात कहाँ रही ?

उ०—पुद्गल स्कध मूल द्रव्य नही है मूल द्रव्य तो परमाणु है।

प्र० २५०—प्रदेशत्व गुण क्या है और क्या बताता है ?

उ०-(१) प्रदेशत्वगुण प्रत्येक द्रव्य का सामान्य गुण है। (३) प्रदेशत्वगुण के कारण प्रत्येक द्रव्य का अपना-अपना ही आकार होता है।

प्र० २५१ जीव के क्षेत्र का आकार तो छोटा-बड़ा देखने मे आता है ?

उ०-(१) जीव के प्रदेश सख्या अपेक्षा लोक प्रमाण असख्यात ही रहते है। (२) किन्तु ससार दशा मे वे प्रदेश अपने कारण से सकोच-विस्तार को प्राप्त होते है। इस कारण ससार दशा मे जीव का आकार एकसा नही रहता है।

प्र० २५२ जीव के साथ शरीर का संयोग होता है, तब तो शरीर के कारण जीव का आकार बदलता होगा ?

उ०—बिल्कुल नही। जीव के साथ सयोगरुप जो शरीर है। उसके आकार के अनुसार जीव का अपना आकार अपने कारण से होता है, शरीर के कारण नही होता है।

प्र० २५३—समुद्घात किसे कहते है और कितने है ?

उ०-(१) मूल शरीर को छोडे बिना आत्म प्रदेशो का शरीर से बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है। (२) समुद्घात के सात भेद है। वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवली।

प्र० २५४-वेदना समुद्घात किसे कहते है ?

उ०—अधिक दु ख की दशा मे मूल शरीर को छोडे बिना जीव के प्रदेशो का बाहर निकलना।

प्र० २५५—कषाय समुद्घात किसे कहते है ?

उ०—क्रोधादि तीव्र कषाय के उदय से, धारण किये हुये शरीर को छोडे बिना जीव के प्रदेशो का शरीर से बाहर निकलना।

प्र० २५६—विक्रिया समुद्घात किसे कहते है ?

उ०-विविध क्रिया करने के लिये मूल शरीर को छोडे बिना आत्म प्रदेशो का बाहर निकलना।

प्र० २५७—मारणान्तिक समुद्घात किसे कहते है ?

उ०—जीव मृत्यु के समय तत्काल ही शरीर को नही छोडता, किन्तु शरीर मे रहकर ही अन्य जन्म स्थान को स्पर्श करने के लिये आत्म प्रदेशो का बाहर निकलना।

प्र० २५८—तैजस समुद्घात के कितने भेद है ?

उ०—दो भेद है-शुभ तैजस, अशुभ तैजस।

प्र० २५९-शुभ तैजस समुद्घात किसे कहते है ?

उ०—जगत को रोग या दुर्भिक्ष से दु खी देखकर महामुनि को दया उत्पन्न होने से जगत का दु ख दूर करने के लिये, मूल शरीर को छोडे बिना ही तपोबल से दाहिने कन्धे मे से पुरुषाकार सफेद पुतला निकलता है और दुःख दूर करके पुन अपने शरीर मे प्रवेश करता है, उसे शुभ तैजस समुद्घात कहते है।

प्र० २६०-अशुभ तैजस समुद्घात किस कहते है ?

उ०—अनिष्ट कारक पदार्थो को देखकर मुनियो के मन मे क्रोध उत्पन्न होने से उनके बाये कन्धे से बिलाव आकार सिन्दूरी रग का पुतला निकलता है। वह जिस पर क्रोध हुआ हो उसका नाश करता है और साथ ही उस मुनि का भी नाश करता है उसे अशुभ तंजस समुद्घात कहते है।

प्र० २६१-आहारक समुद्घात किसे कहते है ?

उ०—छट्ठे गुणस्थानवर्ती, परम ऋद्धिधारी किसी मुनि के तत्व सम्बन्धी शका उत्पन्न होने पर, अपने तपोबल से मूल शरीर को छोडे बिना मस्तक मे से एक हाथ जितना पुरुषाकार सफेद और शुभ पुतला निकलता है। वह केवली या श्रुत केवली के पास जाता है।

वहा उनका चरण स्पर्श होते ही अपनी शका का निवारण करके पुन अपने स्थान मे प्रवेश करता है।

प्र० २६२-केवली समुदघात किसे कहते है ?

उ०-केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद मूल शरीर को छोडे विना दड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण क्रिया करते हुए केवली के आत्म प्रदेशो का फैलना।

प्र० २६३-केवली समुद्घात किसको होता है ?

उ०-(१) केवली समुद्घात सभी केवलियो को नही होता है। (२) किन्तु जिन्हे केवल ज्ञान उत्पन्न होने के बाद छह मास नही हुये हो उन्हे। तथा छह मास के बाद भी चार अघातिया कर्मो मे से आयु कर्म की स्थिती अल्प हो तो उन्ही को नियम से समुद्घात होता है।

प्र० २६४—जीव के प्रदेशो का आकार शरीराकार किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उ०—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, है नही।

प्र० २६५—जीव के प्रदेशो का आकार शरीराकार है इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उ०—प्रश्नोत्तर १९८ से २०७ तक के अनुसार स्वयं प्रश्नोत्तार बनाकर उत्तार दो।

प्र० २६६—जीव समुद्घात करता है यह किस नय से कहा जाता है ?

उत्तार—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० २६७-जीव निश्चयनय से कैसा है ?

उत्तर—जीव के जो असख्यात प्रदेश है उनकी वह सख्या सदा उतनी ही रहती है, किसी भी समय एक भी प्रदेश कम-बढ नही होता है। जीव के प्रदेशो की सख्या लोक प्रमाण असख्यात है। ३५ ल

निश्चयनय से जीव असख्यात प्रदेशी हैं।

प्र० २६८–स्वदेह परिमाणत्व अधिकार मे हेय-ज्ञेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर–(१) जीव सख्या अपेक्षा लोक प्रमाण असख्यात प्रदेशी है, वह आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) उसके आश्रय से जो शुद्ध वीतरागी दशा प्रगटी, वह प्रगट करने योग्य उपादेय है। (३) शरीर व कर्म का सयोग सम्बन्ध व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है। (४) जो अशुद्ध दशा है वह हेय है।

प्र० २६९–दसवी गाथा का मर्म क्या है ?

उत्तर–(१) जीव को देह के साथ अपने पने की मान्यता अनादि से है। इसी मान्यता से ससार मे परिभ्रमण करता हुआ दु खी रहता है। (२) इसलिये देहादिक को पृथक जानकर निर्मोहरुप निज शुद्ध आत्मा का आश्रय लेकर सुख प्रगट करना चाहिये।

प्र० २७०–जीव के असंख्यात प्रदेशो मे क्या-क्या भरा हुआ है ?

उ०–ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण भरे है।

प्र० २७१–आत्मा को 'शून्य' क्यो कहा जाता है ?

उ०–(१) रागादि विभाव परिणामो की अपेक्षा से आत्मा को शून्य कहा जाता हैं। (२) परन्तु बौद्धमत के समान अनन्त ज्ञानादि गुणो की अपेक्षा से शून्य नही हैं।

प्र० २७२–आत्मा को जड़ क्यो कहा जाता है ?

उत्तर–(१) बाह्य विषय वाले इन्द्रिय ज्ञान का अभाव होने की अपेक्षा से आत्मा को जड कहा जाता है। (२) परन्तु साख्यमत की मान्यता के अनुसार सर्वथा जड नही है।

प्र० २७३-इस दसवी गाथा मे 'अणु' मात्र शरीर कहा है–इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–(१) उत्सेध घनागुल के असख्यातवे भाग-प्रमाण लब्धि-

अपर्याप्तक सूक्ष्म निगोद का शरीर समझना। (२) परन्तु पुद्गल परमाणु नही समझना।

प्र० २७४–इस गाथा मे "गुरू" शब्द से क्या समझना चाहिये ?

उत्तर—(१) "गुरू शरीर" शब्द से एक हजार योजन प्रमाण महामत्स्य का शरीर समझना। (२) और मध्यम अवगाहन द्वारा मध्यम शरीर समझना।

प्र० २७५–संकोच विस्तार को समझाइये ?

उत्तर—जैसे दूध मे डाला गया पद्मराग अपनी कान्ति से दूध को प्रकाशित करता है; वैसे ही ससारी जीव अपने शरीर प्रमाण ही रहता है। गरम करने से दूध मे उफान आता है तब दूध के साथ पद्मरागमणि की कान्ति भी बढती जाती है। इसी प्रकार ज्यो-ज्यो शरीर पुष्ट होता है त्यो-त्यो उसके साथ ही साथ आत्मा के प्रदेश भी फैल जाते है और जब शरीर दुर्बल हो जाता है तब जीव के प्रदेश भी सकुचित हो जाते है। ऐसा स्वतत्रता रुप निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। [पचास्तिकाय गाथा ३३]

ससारित्व अधिकार

पुढ विजलतेयवाड वणप्फदी विविह थावरे इंदी।
विग तिग चदु पचक्खा तसजीवा होति सखादी ॥ ११ ॥

अर्थ –(पुढ विजल तेय वाड वणप्फदी) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति (विविह थावरे इदी) अनेक प्रकार के स्थावर एकेन्द्रिय जीव और (सखादी) शख इत्यादि (विग तिग चदु पचक्खा) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पॉच इन्द्रिय (तस जीवा) ये त्रस जीव है।

प्र० २७६–वास्तव मे जीव कैसा है ?

उत्तर—अतीन्द्रिय अमूर्त निज परमात्म स्वभावी है।

प्र० २७७—जीवो के कितने भेद है ?

उत्तर—दो भेद है—सिद्ध और ससारी।

प्र० २७८—सिद्ध जीव कैसे है ?

उत्तर—सिद्ध जीव परिपूर्ण सुखी है।

प्र० २७९-ससारी के कितने भेद है ?

उत्तर—तीन भेद है—(१) बहिरात्मा (२) अन्तरात्मा (३) परमात्मा।

प्र० २८०—क्या विश्व के बहिरात्मा सुखी नही है ?

उत्तर—मात्र मिथ्या मान्यताओ के कारण चारो गतियो के बहिरात्मा परिपूर्ण दु खी ही है।

प्र० २८१ - बहिरात्मा दु खी क्यो है ?

उत्तर—विश्व के पदार्थ व्यवहारनय से मात्र ज्ञेय है परन्तु बहिरात्मा ऐसा न मानकर पर पदार्थो मे इष्ट-अनिष्ट बुद्धि होने के कारण ही दु.खी है।

प्र० २८२—बहिरात्मा के दु ख को स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर—आत्मा का स्वभाव ज्ञाता-दृष्टा है सो स्वय केवल देखने वाला-जानने वाला तो रहता नही है, जिन पदार्थो को देखता जानता है उनमे इष्ट-अनिष्टपना मानता है। इसलिये रागी-द्वेषी होकर किसी का सद्भाव चाहता है, किसी का अभाव चाहता है। परन्तु उसका सद्भाव या अभाव इसका किया हुआ होता नही। क्योकि कोई द्रव्य किसी द्रव्य का कर्ता हर्ता है नही, सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभाव रुप परिणमित होते है। यह बहिरात्मा वृथा ही कषाय भाव से आकुलित होता है।

प्र० २८३—अन्तरात्मा की क्या दशा है ?

उत्तर—अन्तरात्मा अपनी शुद्धतानुसार सुखी है।

प्र० २८४-अरहन्त परमात्मा कैसे है ?

उत्तर—अरहन्त भगवान परिपूर्ण सुखी है।

प्र० २८५-संसारी जीवो के दूसरी तरह से कितने भेद है ?

उत्तर—दो भेद है–स्थावर और त्रस।

प्र० २८६-स्थावर जीव को स्पष्ट समझाओ ?

उत्तर–सभी एकेन्द्रिय जीव स्थावर जीव है, वे पॉच प्रकार के है। पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय।

प्र० २८७-त्रस जीव कौन-कौन है ?

उत्तर–दो इन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते है।

प्र० २८८-शास्त्रो मे स्थावर-त्रस ऐसे भेद क्यो किये है ?

उत्तर–जीव तो औदारिक आदि शरीर इन्द्रियो से सर्वथा भिन्न है अपने ज्ञान-दर्शनादि स्वभाव से अभिन्न है। उसका ज्ञान कराने के लिये व्यवहारनय से त्रस-स्थावर ऐसे भेद किये है।

प्र० २८९-पंचास्तिकाय गाथा १२१ मे इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर—शास्त्र कथित यह काय, इन्द्रियाँ, मन-सब पुद्गल की पर्याये है, जीव नही है। किन्तु उनमे रहने वाला जो ज्ञान-दर्शन है वह जीव है ऐसा जानना चाहिये।

प्र० २९०–जीव स्थावर किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव स्थावर कहा जाता है।

प्र० २९१–अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव स्थावर है इस वाक्य पर निश्चय व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १९८ से २०७ तक के अनुसार स्वय प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

प्र० २९२— जीव त्रस किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर--अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव त्रस कहा जाता है।

प्र० २९३-अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव त्रस है-इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर-प्रश्नोत्तर १९८ से २०७ तक के अनुसार स्वय प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

प्र० २९४—जीवो के तीन प्रकार कौन-कौन से है ?

उत्तर-(१) असिद्ध, (२) नो सिद्ध, (३) सिद्ध।

प्र० २९५-असिद्ध मे कौन-कौन जीव आते है ?

उत्तर-निगोद से लगाकर चारो गतियो के जीव जब तक निश्चय सम्यग्दर्शन ना हो तब तक वे सब असिद्ध ही है।

प्र० २९६-नो सिद्ध जीव मे कौन-कौन आते है ?

उत्तर--नो का अर्थ अल्प है। चौथे गुण स्थान से जीव को 'नो सिद्ध' कहा जाता है। इसलिये अन्तरात्मा ईषत् सिद्ध अर्थात् 'नो सिद्ध' कहा जाता है।

प्र० २९७-सिद्ध कैसे है ?

उत्तर-रत्नत्रय प्राप्त सिद्ध है।

प्र० २१८-शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध बुद्ध एक स्वभावी होने पर भी जीव स्थावर-त्रस क्यो होता है ?

उत्तर-अपने शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव को भूलकर इन्द्रियो सुखो मे रुचि पूर्वक आसक्त होकर त्रस-स्थावर जीवो का घात करता है-इसलिये त्रस-स्थावर होता है।

प्र० २९९-त्रस स्थावर ना बनना पडे उसके लिये क्या करना चाहिये ?

उत्तर-अपने एक शुद्ध-बुद्ध स्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की

प्राप्ति करे तो त्रस-स्थावर ना होकर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्र० ३००—मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी क्या यह जीव पृथ्वीकाय कहला सकता है और यह पृथ्वीकाय मे क्यो जाता है ?

उत्तर–(१) जैसे हम पृथ्वीकाय पर चलते है। दवने से जो दुख का वह अनुभव करता है, लेकिन वह कुछ कह नही सकता है, उसी प्रकार मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी मै सब को दवाऊ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण ना कर सके। ऐसा भाव करता है उस समय वह पृथ्वीकाय ही है क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। (२) ऐसे भाव के समय यदि आयु बन्ध हो गया तो "पृथ्वीकाय" की योनि मे जाना पडेगा। जहाँ निरन्तर तुझे सब दबायेगे और तू एक शब्द भी उच्चारण न कर सकेगा।

प्र० ३०१-कोई कहे हमें पृथ्वीकाय न बनना पडे उसका क्या उपाय है ?

उत्तर–मै सब को दबाऊ और मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण ना कर सके, ऐसे भाव रहित अस्पर्श शुद्ध-बुद्ध स्वभावी निज भगवान है। उसका आश्रय ले तो भगवान पना पर्याय मे प्रगट हो जावेगा।

प्र० ३०२-मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी क्या यह जीव जलकाय कहला सकता है और यह जलकाय में क्यो जाता है ?

उत्तर–(१) जैसे तालाब का पानी ऊपर से देखने पर एक जैसा लगता है। लेकिन कही दो गज का खड्डा है, कही तीन गज का खड्डा है, कही ऊचा है, कही नीचा है, उसी प्रकार मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी ऊपर से चिकनी-चुपडी बाते करता है, अन्दर कपट रखता है। वह जीव उस समय 'जलकाय' ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। (२) ऐसे भाव के समय यदि आयु का वन्ध हो गया तो 'जलकाय' की योनि मे जाना पडेगा।

प्र० ३०३- कोई कहे हमे 'जलकाय' की 'योनि मे ना जाना पड़े उसका कोई उपाय है ?

उत्तर—छल कपट रहित तेरी आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो जलकाय की योनि मे नही जाना पडेगा, बल्कि मुक्तिरुपी सुन्दरी का नाथ बन जावेगा।

प्र० ३०४—मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी क्या यह जीव अग्निकाय कहला सकता है और यह अग्निकाय मे क्यो जाता है ?

उत्तर—जैसे-रोटी बनाने के बाद तवे को उतारते है तो तवे मे टिम-टिम की चिगारियाँ दिखती है। तो लोग कहते है कि तवा हँसता है, परन्तु वह वास्तव मे अग्निकाय के जीव है, उसी प्रकार मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म होने पर भी दूसरो को बढता हुआ देखकर ईर्ष्या करता है उस समय वह जीव 'अग्निकाय' ही है, क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। (२) यदि उस समय आयु का बन्ध हो गया तो 'अग्निकाय' की योनि मे जाना पडेगा जहाँ निरन्तर जलने मे ही जीवन बीतेगा।

प्र० ३०५—कोई कहे अरे भाई हमे 'अग्निकाय' की योनि मे ना जाना पड़े-ऐसा कोई उपाय है ?

उत्तर-ईर्ष्या रहित तेरा त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो अग्निकाय की योनि मे नही जाना पडेगा, बल्कि पर्याय मे तीन लोक का नाथ बन जावेगा।

प्र० ३०६—दिगम्बर धर्म व मनुष्य भव होने पर भी क्या यह जीव 'वायुकाय' कहला सकता है और यह वायुकाय मे क्यो जाता है ?

उत्तर-जैसे हवा के झोके कभी तेज, कभी मन्द चलते रहते है, स्थिर नही रहते है, उसी प्रकार जो मनुष्य भव व दिगम्बर धर्म

होने पर भी जहाँ पर जन्म-मरण के अभाव की बात चलती है, उसके बदले अन्य बात का विचार करता है, ऊघता है या अन्य अस्थिरता करता है। वह जीव उस समय वायुकाय ही है, क्योंकि "जैसी मति-वैसी गति" होती है। (२) यदि अस्थिरता के भावो के समय आयु का बन्ध हो गया तो "वायुकाय" की योनि मे जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर अस्थिरता ही बनी रहेगी।

प्र० ३०७—कोई कहे हमें वायुकाय नहीं बनना है तो हम क्या करें ?

उत्तर—अस्थिरता के भावो से रहित परमपारिणामिक है भाव। उसकी ओर दृष्टि करे तो वायुकाय की योनि मे नही जाना पडेगा, बल्कि क्रम से पूर्णक्षायिकपना प्रगट करके पूर्ण सुखी हो जावेगा।

प्र० ३०८—दिगम्बर धर्म व मनुष्यभव होने पर भी क्या यह जीव 'वनस्पतिकाय' कहला सकता है, और यह वनस्पतिकाय में क्यों जाता है ?

उत्तर—जैसे बाजार से सब्जी लाते है, आप उसे चाकू से काटते है, वह आपसे कुछ नही कहती है, उसी प्रकार मनुष्यभव पाने पर भी 'मैं दूसरो को ऐसा मारू', वह एक पग भी न चल सके—ऐसा भाव करता है वह उस समय वनस्पतिकाय ही है, क्योकि 'जैसी मति वैसी गति' होती है। (२) यदि ऐसे भावो के समय आयु का बन्ध हो गया तो वनस्पतिकाय की योनि मे जाना पडेगा, जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर दु ख उठाना पडेगा।

प्र० ३०९—कोई कहे हमें 'वनस्पतिकाय' में न जाना पड़े, इसका कोई उपाय है ?

उत्तर—मैं सबको मारू और वह एक पग भी आगे न बढ सके—ऐसे-ऐसे भावो से रहित तेरी आत्मा का अस्पर्श स्वभाव है उसका आश्रय ले तो वनस्पतिकाय की योनि मे नही जाना पडेगा—बल्कि गुण स्थानमार्गणा से रहित परमपद को प्राप्त करेगा।

प्र० ३१०–ज्ञानी-त्रस स्थावर मे क्यों उत्पन्न नही होते है ?

उत्तर—अपने एक शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव का आश्रय होने से तथा विषयो मे सुख अभिलाषा की वृद्धि ना होने के कारण ज्ञानी जीव त्रस-स्थावर मे उत्पन्न नही होते है।

प्र० ३११–भूल का कारण थोडे मे क्या है ?

उत्तर–एक मात्र एक शुद्ध-बुद्ध निज आत्मा की दृष्टि ना करना ही भूल का कारण है–कर्म या पर वस्तु या ईश्वर भूल का कारण नही है।

प्र० ३१२–यदि जीव की सिद्ध दशा न मानी जावे तो क्या क्या दोष उत्पन्न होगा ?

उत्तर—(१) यदि सिद्ध जीव न हो तो जीवो की ससारी अवस्था भी साबित नही होगी, क्योकि ससारी दशा का प्रतिपक्ष भाव सिद्ध दशा है। (२) यदि जीव के ससार दशा ही नही होगी तो फिर धर्म करने और अधर्म को दूर करने का पुरुपार्थ ही नही रहेगा।

चौदह जीव समास

समणा अमणा णेया पचेन्द्रिय णिम्मणा परे सव्वे।
बाहर सुहुमेहदी सव्वे पज्जत इदरा य ॥ १२ ॥

अर्थ –(पचेन्द्रिय) पचेन्द्रिय जीव (समणा) मन सहित और (अमणा) मन सहित (णेया) जानना चाहिये। और (परे सव्वे) शेष सब (णिम्मणा) मन रहित जानना चाहिये। उनमे (एकेन्द्रिया) एकेन्द्रिय जीव (वादर सुहुमे) बादर और सूक्ष्म यो दो प्रकार के है। (सव्वे) और वे सब (पज्जत्त) पर्याप्त (प) और (इदरा) अपर्याप्त होते है।

प्र० ३१३–जीव समास किसे कहते है ?

उत्तर–जिसके द्वारा अनेक प्रकार के जीव के भेद जाने जा सके-उसे जीव समास कहते है।

प्र० ३१४–पचेन्द्रिय जीवो के कितने भेद है ?

उत्तर–दो भेद है-सज्ञी और असज्ञी।

प्र० ३१५–एकेन्द्रिय जीवो के कितने भेद है ?

उत्तर–दो भेद है-बादर और सूक्ष्म।

प्र० ३१६—बादर एकेन्द्रिय जीव किसे कहते है ?

उत्तर–जो दूसरो को बाधा देते है और स्वय बाधा को प्राप्त होते है और जो किसी पदार्थ के आधार से रहते हैं उन्हे बादर एकेन्द्रिय जीव कहते है।

प्र० ३१७–सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव किसे कहते है ?

उत्तर–जो समस्त लोकाकाश मे फैले हुए है, जो किसी को बाधा नही पहुँचाते और स्वय किसी से बाधा को प्राप्त नही होते है-उन्हे सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कहते है।

प्र० ३१८–एकेन्द्रिय जीव के बादर, सूक्ष्म, दो इन्द्रिय जीव, तीन इन्द्रिय जीव, चार इन्द्रिय जीव, पॉच इन्द्रिय असैनी जीव और पॉच इन्द्रिय सैनी जीव—क्या इन सात प्रकार के जीवो के भी कुछ भेद है ?

उत्तर–हॉ, है। ये सातो पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से १४ भेद हैं।

प्र० ३१९–पर्याप्त और अपर्याप्त से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर–जैसे-मकान, घडा, वस्त्रादि वस्तुये पूर्ण और अपूर्ण होती है, उसी प्रकार ये सात प्रकार के जीव भी पर्याप्त और अर्पाप्त होते है।

प्र० ३२०—इन पर्याप्त और अपर्याप्त इस प्रकार १४ प्रकार को क्या कहते है ?

उत्तर–इन्हे १४ जीव समास के नाम से जिनवाणी मे कहा जाता है।

प्र० ३२१–पर्याप्ति कितनी होती है ?

उत्तर–छह होती है–आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भापा, और मन।

प्र ३२२–एकेन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्ति होती है ?

उत्तर–चार होती है — आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वास।

प्र० ३२३–दो इन्द्रिय जीवो से लेकर असंज्ञी पचेन्द्रिय जीवो तक के कितनी-कितनी पर्याप्ति होती है ?

उत्तर–प्रत्येक को पाच-पाच पर्याप्ति होती है। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास और भाषा।

प्र० ३२४–सज्ञी पचेन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्ति होती हैं ?

उत्तर–छह ही होती है–आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भापा और मन।

प्र० ३२५–यह पर्याप्तियाँ कब पूर्ण होती हैं ?

उत्तर—एक अन्तर्मूहर्त में पूर्ण हो जाती है।

प्र० ३२६–अपर्याप्तक जीव की क्या दशा है ?

उत्तर—अपर्याप्तक जीव एक श्वास मे १८ बार जन्म-मरण करता है।

प्र० ३२७–श्वास किसे कहते हैं ?

उत्तर निरोग पुरुप की एक बार नाडी चलने मे जितना समय लगता है उसे श्वास कहते हैं।

प्र० ३२८–श्वास की सख्या का माप क्या है ?

उत्तर—४८ मिनट मे तीन हजार सात सौ तिहत्तर श्वास होते है।

प्र० ३२९–पर्याप्तियो से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर—जैसे सज्ञी पचेन्द्रिय जीव जब-जब जहाँ पर उत्पन्न होता

है वहा पर इन सब पर्याप्तियो की शुरुआत एक साथ होती है, लेकिन पूर्णता क्रम से होती है, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर सर्व गुणो मे अश रूप से शुद्धता एक साथ प्रगट हो जाती है, परन्तु पूर्णता क्रम से होती है। (१) सम्यग्दर्शन चौथे गुण स्थान मे पूर्ण हो जाता है। (२) चरित्र बारहवे गुणस्थान मे पूर्ण हो जाता है। (३) ज्ञान-दर्शन-वीर्य की पूर्णता तेरहवे गुणस्थान के शुरुआत मे हो जाती है। (४) योग की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान मे होती है।

३३०—जीव पर्याप्त और अपर्याप्त होते है—यह किस अपेक्षा से कहा जा सकता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जा सकता है, परन्तु ऐसा है नही।

प्र० ३३१—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से जीव पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार स्वय प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

प्र० ३३२—जीव संज्ञी व असंज्ञी किस अपेक्षा कहा जा सकता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जा सकता है, परन्तु है नही—ऐसा जानना।

प्र० ३३३—अनुपचरित असद्भूत व्वहारनय से जीव संज्ञी-असंज्ञी है—इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तारो को समझाइये ?

उत्तर—प्रश्नोत्तर १६८ से २०७ तक के अनुसार स्वय प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

प्र० ३३४-पर्याप्त और अपर्याप्त मे हेय-ज्ञेय-उपादेयपना किस-किस प्रकार है ?

उत्तर—(१) पर्याप्त और अपर्याप्त से सर्वथा भिन्न निज शुद्धात्म तत्त्व ही आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (२) निज शुद्धात्म तत्त्व के आश्रय से जो शुद्धि प्रगटी वह प्रगट करने योग्य उपादेय है। (३) साधक जीव के भूमिकानुसार जो राग है वह हेय है। (४) पर्याप्ति और अपर्याप्ति—ये सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है।

प्र० ३३५-पर्याप्तियो का कर्त्ता कौन है और कौन नही है ?

उत्तर—पर्याप्तियो का कर्त्ता पुद्गल है और पर्याप्ति उसका कर्म है। जीव से इनका सर्वथा कर्त्ता-कर्म सम्बन्ध नही है।

प्र० ३३६-जीव समास की बारहवी गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर—पर्याप्तियो और प्राणो से सर्वथा भिन्न निज शुद्धात्म तत्त्व ही आश्रय करने योग्य परम उपादेय है।

जीव के दूसरे भेद

मग्गण गुण ठाणेहि य चउदसहि हवति तह असुद्धणया ।
विण्णेया ससारी सव्वे हु सुद्धणया ॥ १३ ॥

अर्थ -(तह) तथा (ससारी) ससारी जीव (असुद्धणया) अशुद्धनय से (मग्गण गुण ठाणेहि) मार्गणा स्थान और गुण स्थान की अपेक्षा से (चउदसहि) चौदह चौदह प्रकार के (हवति) होते है (सुद्धणया) शुद्ध निश्चयनय से (सव्वे) सभी ससारी जीव (हु) वास्तव मे (सुद्धा) शुद्ध (विण्णेया) जानना चाहिये।

प्र० ३३७--बृहद द्रव्य संग्रह की इस गाथा के हैडिंग मे क्या कहा है ?

उत्तर—"अब शुद्ध-पारिणामिक-परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिक

नय से जीव शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभाव वाले है। तो भी पश्चात् अशुद्धनय से चौदह मार्गणा स्थान और चौदह गुणस्थान सहित होते है-इस प्रकार प्रतिपादन करते है"।

प्र० ३३८—शुद्ध द्रव्यार्थिक और अशुद्धनयो का विषय एक ही साथ होने पर भी (प्रथम) शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और 'पश्चात् अशुद्ध-नय-ऐसा क्यो कहा है ?

उत्तर-(१) शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विपय एक ही आश्रय करने योग्य है, क्योकि उसके आश्रय से ही जीव के धर्मरुप शुद्ध पर्याय प्रगट होती है और उसी के आश्रय से ही वृद्धि करके पूर्णता की प्राप्ति होती है। (२) अशुद्धनय के विषय के आश्रय से जीव के अशुद्ध पर्याय प्रगट होती है, इसलिये उसका आश्रय छोडने योग्य है। (३) ऐसा बताने के लिये शास्त्रो मे शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को प्रथम और अशुद्धनय व्यवहारनय को पश्चात् कहा गया है।

प्र० ३३९-शुद्ध पारिणामिक भाव का क्या अर्थ है ?

उत्तर—पारिणामिक का अर्थ सहज स्वभाव है। उत्पाद-व्यय रहित ध्रुव एक रुप स्थिर रहने वाला पारिणामिक भाव है।

प्र० ३४०—पारिणामिक भाव किस जीव को होता है ?

उत्तर—निगोद से लगाकर सिद्ध दशा तक सभी जीवो मे 'त्रिकाल (अनादि अनन्त) ध्रुवरुप से शक्तिरुप से शुद्ध है'-यह होता है। कहा गया है कि "पारिणामिक भाव के बिना कोई जीव नही है"।

प्र० ३४१-क्या पारिणामिक भाव मे बाकी चार भाव नही है ?

उत्तर-नही है, क्योकि औदयिक-औपशमिक-क्षायोपशमिक और क्षायिक-इन चार भावो से जो रहित जो भाव है-सो पारिणामिक भाव है।

प्र० ३४२-पारिणामिक भाव मे औपशमिक आदि चार भाव क्यो नही आते है ?

उत्तर--(१) औपशमिकादि चार भावो मे उदय-उपशम-

क्षयोपशम-क्षय जिसका निमित्तकारण है–ऐसे चार भाव है, और जिसमे कर्मोपाधिरुप निमित्त किंचित मात्र नही है, मात्र द्रव्य स्वभाव ही जिसका कारण है–ऐसा एक पारिमाणिक भाव है (२) औपशमिकादि चार भाव पर्यायरुप है और पारिणामिक भाव पर्याय रहित है। (३) इसलिये चार भावो मे पारिणामिक भाव नही आता है।

प्र० ३४३—पारिणामिकादि पांच भावो का स्पष्ट वर्णन कहाँ देखें ?

उत्तर–जैन सिद्धानत प्रवेश रत्नमाला भाग चार मे देखियेगा।

प्र० ३४४—इन पांच भावों को 'परम' और 'अपरम' क्यो कहा जाता है ?

उत्तर—(१) पारिणामिकभाव त्रिकाल शुद्ध और परम है, इसलिये शुद्ध पारिणामिक भाव को 'परम भाव' कहते है, क्योकि इसके आश्रय से ही शुद्ध पर्याय प्रगट-वृद्धि और पूर्णता होती है। (२) दूसरे औपशमिकादि चार भावो को 'अपरम' भाव कहते है क्योकि इनके आश्रय से जीव मे अशुद्ध पर्याय प्रगट होती है।

प्र० ३४५–समस्त कर्मरुपी विष वृक्ष को उखाड़ फैंकने मे कौन-सा भाव समर्थ है ?

उ०–परमभाव पारिणामिक त्रिकाल शुद्ध है। यह परमभाव ही समस्त कर्मरुपी विष वृक्ष को उखाड फैंकने मे समर्थ है।

प्र० ३४६—इस गाथा मे 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" से क्या तात्पर्य है ?

उ०–शुद्धनय से सभी जीव वास्तव मे शुद्ध है। यहाँ शुद्धनय का अर्थ द्रव्यार्थिकनय है–इस दृष्टि से देखने पर सभी जीव शुद्ध ज्ञायक भाव के धारक है।

प्र० ३४७—इस गाथा मे अशुद्धनय का वर्णन क्या बतलाने के लिये किया गया है ?

उत्तर—उन पर्यायो को जीव स्वय स्वत पर से निरपेक्षतया करता है। कर्म का निमित्त होने पर भी कर्म उन्हे कराता नही है-यह बतलाने के लिये अशुद्धनय का वर्णन इस गाथा मे किया है।

प्र० ३४८—मार्गणास्थान किसे कहते है ?

उत्तर—जिन-जिन धर्म विशेपो से जीवो का अन्वेषण (खोज) किया जाता है—उन-उन धर्म को मार्गणा स्थान कहते है।

प्र० ३४९—मार्गणा स्थान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चौदह भेद है (१) गति, (२) इन्द्रिय, (३) काय, (४) योग, (५) वेद, (६) कषाय, (७) ज्ञान, (८) सयम, (९) दर्शन, (१०) लेश्या, (११) भव्यत्व, (१२) सम्यक्त्व, (१३) सज्ञित्व, (१४) आहारत्व।

प्र० ३५०—चौदह मार्गणा किस नय से कही जाती है और किस नय से नही है ?

उत्तर—ये सब निज त्रिकाल शुद्ध आत्मा मे शुद्ध निश्चयनय के बल से नही है, अपितु अशुद्धनय से कही जाती है।

प्र० ३५१—१४ मार्गणाओ मे "गति मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) नरक, तिर्यच, मनुष्य, देव नाम की चार गतियाँ है। (२) चारो गतियो सम्बन्धी शरीर भी है। (३) चारो गतियो सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय निमित्त भी है। (४) चारो गतियो सम्बन्धी भाव भी है। (५) परन्तु निज भगवान का गति रहित अगति स्वभाव है। (६) उसका आश्रय लेकर अन्तरात्मा बनकर क्रम से परमात्मा बने यह मर्म है।

प्र० ३५२—(१) आत्मा चार गतियो के शरीर वाला है—(२) आत्मा को चार गति सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय होता है—यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय से कहा जाता है,

परन्तु ऐसा है नही, क्योकि आत्मा तो अगति स्वभाव वाला है।

प्र० ३५३—आत्मा के चार गति सम्बन्धी भाव होते हैं-यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३५४–१४ मार्गणाओ मे "इन्द्रिय मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय रूप पाँच जड इन्द्रिया है (२) पाच इन्द्रियो सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय भी है। (३) इन्द्रियो सम्बन्धी ज्ञान का उघाड भी है। (४) परन्तु निज भगवान आत्मा इन्द्रियो से रहित अतीन्द्रिय स्वभाव वाला है। (५) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होवे। यह मर्म है।

प्र० ३५५—आत्मा जड पाच इन्द्रियो वाला है। आत्मा को जड इन्द्रियो सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है। यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नही, क्योकि आत्मा तो अतीन्द्रिय स्वभाव वाला है।

प्र० ३५६—आत्मा को इन्द्रियो सम्बन्धी ज्ञान का उघाड है-यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३५७–१४ मार्गणाओ मे "काय मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय के भेद से छह प्रकार की है। (२) आत्मा के काय सम्बन्धी शरीर है। (३) आत्मा के काय सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय भी है। (४) आत्मा के काय सम्बन्धी ज्ञान का उघाड भी

है। (५) परन्तु काय से रहित अकाय स्वभाव वाला आत्मा है। (६) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे अकायपना प्रगट होवे। यह मम है।

प्र० ३५८—(१) आत्मा पृथ्वी आदि काय वाला है। (२) आत्मा को काम सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय है। यह किस अपेक्षा कहा ज्ञाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नही, क्योकि आत्मा तो अकाय स्वभाव है।

प्र० ३५९—आत्मा को काय सम्बन्धी ज्ञान का उघाड है-यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भून व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३६०—१४ मार्गणाओ मे "योग मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) मन, वचन और काय योग के भेद से योग मार्गणा के तीन प्रकार है। (२) विस्तार से (अ) सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रुप से मनोयोग चार प्रकार का है। (आ) सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रुप से वचन योग चार प्रकार का है। (इ) औदारिक, औदारिक मिश्र, वैंक्रियिक वैंक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण—ये काययोग के सात प्रकार है। इस प्रकार सब मिलकर पन्द्रह प्रकार की योग मार्गणा है। (३) आत्मा के मन वचन काय सम्बन्धी जड योग का सम्बन्ध है। (४) आत्मा के जड योग सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय भी है। (५) आत्मा के मन-वचन-सम्बन्धी प्रदेशो मे कम्पन भी है। (६) परन्तु भगवान आत्मा का अयोग स्वभाव त्रिकाल पडा है। (७) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे अयोगीपना प्रगट होवे। यह मर्म है।

प्र० ३६१—(१) आत्मा जड़ मन-वचन-काय सम्बन्धी योग

वाला है। (२) आत्मा को जड मन-वचन-काय सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है-यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर-अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नही, क्योकि आत्मा तो अयोगी स्वभाव वाला है।

प्र० ३६२—आत्मा को मन-वचन-काय सम्बन्धी योग का कम्पन है-यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर-उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३६३-१४ मार्गणाओ मे "वेद मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर-(१) स्त्री वेद, पुरुष वेद और नपुसक वेद के भेद से वेद मार्गणा के तीन प्रकार हैं। (२) आत्मा के सयोगरूप तीन वेद सम्बधी पुद्गल का सम्बन्ध है। (३) आत्मा के तीन वेद सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय भी है। (४) आत्मा मे तीन प्रकार वेद सम्बन्धी राग भी है। (५) परन्तु आत्मा का अवेद स्वभाव त्रिकाल पडा है। (६) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे अवेदपना प्रगट होवे-यह मर्म है।

प्र० ३६४—(१) आत्मा तीन वेद सम्बन्धी पुद्गल वाला है। (२) आत्मा के तीन वेद सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय है। यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नही, क्योकि आत्मा तो अवेद त्रिकाल स्वभावी है।

प्र० ३६५-आत्मा के वेद सम्बन्धी राग है-यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३६६—१४ मार्गणाओ मे "कषाय मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) क्रोध-मान-माया-लोभ के भेद से चार प्रकार की

कषाय मार्गणा है। विस्तार से (२) अनन्तानुबधी क्रोधादि चार, अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, संज्वलन क्रोधादि चार, हास्य-अरति-रति आदि भेद से नो कषाय-इस प्रकार पच्चीस प्रकार की कषाय मार्गणा है। (३) २५ कपाय सम्बन्धी शरीर की अवस्थाये है। (४) २५ कषाय सम्बन्धी चारित्र मोहनीय द्रव्य कर्म का उदय भी है। (५) २५ कषाय सम्बन्धी राग भी है। (६) परन्तु अकषाय त्रिकाली स्वभाव वाला आत्मा त्रिकाल पडा है। (७) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे स्वरुपाचरण-देश चारित्र सकल चारित्र-यथाख्यात चारित्र प्रगट करके परम यथाख्यात चारित्रप्रगट होवे-यह मर्म है।

प्र० ३६७-(१) आत्मा की २५ कषाय सम्बन्धी शरीर की अवस्था है। आत्मा के कषाय सम्बन्धी द्रव्य कर्म का उदय है-यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर-अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नही, क्योकि आत्मा तो अकषाय स्वभाव वाला है।

प्र० ३६८-आत्मा मे २५ कषाय सम्बन्धी राग है-यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर—उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा जाता है।

प्र० ३६९—१४ मार्गणाओ मे "ज्ञान मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर-(१) मति, श्रुत, अवधि मन पर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि-इस प्रकार आठ प्रकार की ज्ञान मार्गणा है। (२) इन भेदो से रहित त्रिकाल ज्ञान स्वरुप भगवान आत्मा है। (३) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे कुमति-कुश्रुत और कुअवधि का अभाव करके मति-श्रुतादि प्रगट कर क्रम से केवलज्ञान की प्राप्ति होवे-यह ज्ञान मार्गणा का मर्म है।

प्र० ३७०–१४ मार्गणाओ मे "सयम मार्गणा" बतलाने के पीछे क्या रहस्य है ?

उत्तर–(१) सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात रुप से पाच प्रकार का चारित्र तथा सयमासयम और असयम ये दो प्रतिपक्ष रुप भेद मिलाकर सात प्रकार की सयम मार्गणा है। (२) चारित्र गुणादि रुप त्रिकाल भगवान एक रुप पडा है। (३) उसका आश्रय लेकर प्रथम स्वरुपाचरण की प्राप्ति करके क्रम से सामायिक आदि की वृद्धि करके यथाख्यात की प्राप्ति होवे–यह सयम मार्गणा का मर्म है।

प्र० ३७१–१४ मार्गणाओ मे "दर्शन मार्गणा" के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) चक्षु-अचक्षु-अवधि और केवल दर्शन के भेद से चार प्रकार की दर्शन मार्गणा है। (२) दर्शन गुणादि रुप त्रिकाली भगवान आत्मा पडा है (३) उसका आश्रम लेकर केवल दर्शन की प्राप्ति होवे-यह दर्शन मार्गणा को जानने का मर्म है।

प्र० ३७२—१४ मार्गणाओ मे "लेश्या मार्गणा" बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर–(१) परमात्म द्रव्य का विरोध करने वाली कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल के भेद से लेश्या छह प्रकार की है। (२) परन्तु अलेश्या त्रिकाली स्वभाव एक रुप पडा है। (३) उसका आश्रय लेकर लेश्याओ का अभाव करके पूर्ण अलेश्यापना पर्याय मे प्रगट होवे–यह लेश्या मार्गणा को जानने का मर्म है।

प्र० ३७३—१४ मार्गणाओ मे "भव्य मार्गणा" के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) भव्य और अभव्य के भेद से दो प्रकार की भव्य मार्गणा है। (२) भव्य-अभव्य से रहित त्रिकाल परमात्म द्रव्य एक

रुप पडा है। (३) उसका आश्रय लेकर पर्याय मे सिद्ध दशा की प्राप्ति होवे-यह भव्य अभव्य मर्गणा को जानने का मर्म है।

प्र० ३७४—१४ मार्गणाओ मे "सम्यक्त्व मार्गणा" बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर-(१) औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व के भेद से मम्यक्त्व मार्गणा—मिथ्या दर्शन, सासादन और मिश्र इन तीन विपरीत भेदो सहित छह प्रकार की सम्यक्त्व मार्गणा है। (२) श्रद्धा गुण सहित अभेद आत्मा त्रिकाल पडा है। (३)उसका आश्रय लेकर मिथ्यादर्शनादि अभाव करके प्रथम औपशमिक की प्राप्ति कर, क्षायो दशमिक की प्राप्ति कर, क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होवे-यह सम्यक्त्व मार्गणा को जनाने का मर्म है।

प्र० ३७५-१४ मार्गणाओ मे "सज्ञित्व मार्गणा" बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर-(१) सज्ञी और असज्ञी के भेद से सज्ञित्व मार्गणा दो प्रकार की है। (२)सज्ञी और असज्ञी से रहित निज परमात्मा स्वरुप एक रुप पडा है। (३) उसका आश्रय लेकर पूर्ण धर्म की प्राप्ति होवे-यह सज्ञित्व मार्गणा को जानने का मर्म है।

प्र० ३७६-१४ मार्गणाओ में "आहार मार्गणा" बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर—(१) आहारक और अनाहारक जीवो के भेद से आहार मार्गणा भी दो प्रकार की है। (२) त्रिकाल अनाहारकपना त्रिकाल पडा है। (३) उसका आश्रय लेकर मोक्ष की प्राप्ति होवे-यह आहार मार्गणा को जानने का मर्म है।

प्र० ३७७-गुणस्थान किसे कहते है ?

उत्तर—मोह और योग के सद्भाव या अभाव से जीव के श्रद्धा-चारित्र-योग आदि गुणो की तारतम्यतारुप अवस्था विशेप को गुण-स्थान कहते है।

प्र० ३७८-गुणस्थान कितने है ?

उत्तर–१४ भेद है–मिथात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यक्त्व, देश विरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय उपशान्त मोह, क्षीण मोह, सयोगी केवली और अयोगी केवली।

प्र० ३७९-(१) मिथ्यात्व गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—(१) सच्चे देव-शास्त्र-गुरू का विपरीत श्रद्धान, (२) जीवादि तत्त्वो मे विपरीत मान्यता, (३) स्व-पर की एकत्व श्रद्धा, (४) अतत्व श्रद्धा।

प्र० ३८०-(२) सासादन गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—सम्यक्त्व को छोडकर मिथ्यात्व की ओर जाना।

प्र० ३८१-(३) मिश्र गुणस्थाल का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के परिणामो का एक ही साथ होना।

प्र० ३८२-(४) अविरत गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—सम्यक्त्व तो है ही और साथ मे स्वरुपाचरण चारित्र भी है। किन्तु अशक्तिवश किसी प्रकार के निश्चयव्रत और चारित्र को धारण न कर सके।

प्र० ३८३-(५) देश संयत गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—सम्यक्त्व सहित एकदेश निश्चय चारित्र का पालन करना।

प्र० ३८४-(६) प्रमत्त संयत गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—सम्यक् चारित्र की भूमिका मे अहिसादि शुभोपयोग रुप महाव्रतो का पालन करता है, यह प्रमाद है। (याद रहे सर्वथा नग्न दिगम्बर दशा पूर्वक ही मुनिपद होता है)

प्र० ३८५-(७) अप्रमत्त सयत गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर-प्रमाद रहित होकर आत्म स्वरुप मे सावधान रहना।

प्र० ३८६-(८) अपूर्व करण गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—सातवे गुणस्थान से ऊपर विशुद्धता मे अपूर्व रुप से उन्नति करना।

प्र० ३८७-(९) अनिवृत्ति करण गुण स्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—आठवे गुणस्थान से अधिक उन्नति करना।

प्र० ३८८-(१०) सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान का स्वरुप कया है ?

उत्तर - समस्त कपायो का उपशम अथवा क्षय होना और मात्र सज्वलन लोभ कषाय का सूक्ष्मरूप से रहना।

प्र० ३८९-(११) उपशान्त गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—कपायो का सर्वथा उपशम हो जाना।

प्र० ३९०-(१२) क्षीण कषाय गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर-कपायो का सर्वथा क्षय हो जाना।

प्र० ३९१-(१३) सयोग केवली गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर-केवलज्ञान प्राप्त होने पर भी योग की प्रवृत्ति होना। (वे सब १८ दोप रहित होते हैं)

प्र० ३९२-(१४) अयोग केवली गुणस्थान का स्वरुप क्या है ?

उत्तर-केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद योग की प्रवत्ति भी बन्द हो जाना।

प्र० ३९३-ये चौदह गुणस्थान किस नय से है और किस नय से नही है ?

उत्तर-ये चौदह गुणस्थान अशुद्धनय से है। शुद्ध निश्चयनय के केवल से नही है।

प्र० ३९४—इस गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर-(१) जीव तो परमार्थ से चैतन्य शक्ति मात्र है। (२) वह अविनाशी होने से शुद्ध पारिणामिक भाव कहलाता है। वह भाव ही ध्येय (ध्यान करने योग्य) है। (३) किन्तु वह ध्यानरुप नही है, क्योकि ध्यान पर्याय विनश्वर है, और शुद्ध पारिणामिक भाव द्रव्यरुप है। अविनाशी है। इसलिये वही आश्रय करने योग्य है-यह गाथा का तात्पर्य है।

प्र० ३९५-जीव गुणस्थान-मार्गणा स्वरुप हैं-इस वाक्य पर निश्चय-व्यवहार के दस प्रश्नोत्तरो को समझाइये ?

उ०-प्रश्नोत्तर १९८ से २०७ तक के अनुसार स्वय प्रश्नोत्तर बनाकर उत्तर दो।

— ० —

सिद्धत्व-विस्रसा उर्ध्व गमनत्व अधिकार

णिक्कम्मा अट्ठ गुणा किचूणा चरम देह दो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पा दवयेहि सजुत्ता ।। १४ ।।

अर्थ –(णिक्कम्मा) ज्ञानावरणादि आठ कर्मो से रहित (अट्ठगुणा) सम्यक्त्वादि अष्ट गुण सहित (चरम देहदो) अन्तिम शरीर से (किचूणा) कुछ न्यून (लोयग्गठिदा) लोक के अग्रभाग मे स्थित (णिच्चा) ध्रुव-अविनाशी (उप्पादवयेहि) उत्पाद और व्यय से (सजुत्ता) सहित जीव (सिद्धा) सिद्ध है।

प्र० ३९६—१४वीं गाथा मे क्या बताया है ?

उत्तर—दो अधिकारो का वर्णन किया है। (१) सिद्धत्व, (२) उर्ध्वगमन।

प्र० ३९७—सिद्ध अधिकार मे क्या बताया है ?

उत्तर—(१) ज्ञानावरणादि आठ कर्म रहित। (२) सम्यक्त्वादि आठ गुणो सहित। (३) अन्तिम शरीर से कुछ न्यून—सिद्ध भगवान है।

प्र० ३९८—उर्ध्वगमन अधिकार में क्या बताया है ?

उत्तर—(१) लोक के अग्रभाग में स्थित है। (२) नित्य है। (३) उत्पाद-व्यय से सयुक्त है-यह उर्ध्वगमन अधिकार मे बताया है।

प्र० ३९९—सिद्धो के आठ गुण कौन-कौन से है ?

उत्तर—(१) सम्यक्त्व, (२) ज्ञान, (३) दर्शन, (४) वीर्य, (५) सूक्ष्मत्व, (६) अवगाहन, (७) अगुरुलघु, (८) अव्याबाध-इन सर्व गुणों की परिपूर्ण शुद्ध पर्याय सिद्ध होती है।

प्र० ४००—क्या सिद्धो मे आठ ही गुण होते हैं ?

उत्तर—व्यवहार से अष्ट गुण और निश्चय से अनन्त गुण सिद्ध भगवन्तों के होते है।

प्र० ४०१—जब सिद्धो मे अन्नत गुण प्रगट हो गये है, तो आठ गुणो का ही वर्णन क्यो किया है ?

उत्तर—मध्यम रुचि वाले शिष्यो की अपेक्षा से व्यवहारनय से आठ गुणो का ही वर्णन किया है।

प्र० ४०२—क्या शिष्य कई रुचि वाले होते है ?

उत्तर—(१) सक्षेप रुचि वाले शिष्य। (२) विस्तार रुचि वाले शिष्य। (३) मध्यम रुचि वाले शिष्य-इस प्रकार तीन रुचि वाले शिष्य होते है।

प्र० ४०३-सक्षेप रुचि वाले शिष्यो के प्रति सिद्धो के लिये सक्षेप मे क्या बताया जाता है ?

उ०—(१) अभेदनय से सिद्ध भगवान अनन्त ज्ञानादि चार सहित। (२) अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख त्रय सहित। (३) केवलज्ञान-दर्शन दो सहित। (४) साक्षात अभेदनय से शुद्ध चैतन्य ही एक गुण है-इस प्रकार सक्षेप रुचि वाले शिष्यो के अपेक्षा से सक्षेप मे कहा जाता है।

प्र० ४०४—विस्तार रुचि वाले शिष्यों को क्या बताया जाता है ?

उत्तर-विशेष अभेदनय की अपेक्षा से सिद्ध भगवान मे (१)

निर्गतित्व, (२) निरिन्द्रियत्व, (३) निष्कायत्व, (४) निर्योगत्व, (५) निर्वेदत्व, (६) निष्कपायत्व, (७) निर्नामत्व, (८) निर्गोत्रत्व, (९) निरायुत्व इत्यादि अनन्त विशेष गुण तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्वादि अनन्त सामान्य गुण—इस प्रकार आगम से अविरोध से जानना चाहिये।

प्र० ४०५–सिद्धो के आठ गुणों मे से केवलज्ञान और केवलदर्शन का स्वरुप क्या है ?

उत्तर—(१) केवलज्ञान=त्रिकाल-तीन लोकवर्ती समस्त वस्तु गत अनन्त धर्मो को युगपत् विशेप रुप से प्रकाशित करे। (२) केवल दर्शन=उन सबको युगपत् सामान्य रुप से प्रकाशित करे।

प्र० ४०६—सिद्धो के आठ गुणो मे से अनन्तवीर्य और क्षायिक सम्यक्त्व का स्वरुप क्या है ?

उत्तर–(३) अनन्त वीर्य—अनन्त पदार्थो को जानने मे खेद के अभाव रुप दशा (४) क्षायिक समयक्त्व—समस्त जीवादि तत्वो के विषय मे विपरीत अभिनिवेश रहित परिणति का होना।

प्र० ४०७ सिद्धो के आठ-आठ गुणो मे से सूक्ष्मत्व और अवगाहनत्व का स्वरुप क्या है ?

उत्तर–(५) सूक्ष्मत्व—सूक्ष्म अतीन्द्रिय केवलज्ञान का विषय होने से सिद्धो के स्वरुप को सूक्ष्म बताता है। (६) अवगाहनत्व–जहा एक सिद्ध हो वहा अनन्त समाविष्ट होते है।

प्र० ४०८—सिद्धो के आठ गुणों मे से अगुरलघुत्व और अव्यावाधत्व का स्वरुप क्या है ?

उत्तर–(७) अगुरुलघुत्व=जीवो मे छोटे बडे पने का अभाव। (८) अव्यावाधत्व=किसी से बाधा को प्राप्त ना होना।

प्र० ४०९–और सिद्ध कैसे है ?

उत्तर–तेरहवे गुणस्थान के अन्त भाग मे नासिकादि छिद्र पुरे

हो जाते है और एक चैतन्यघन विम्ब हो जाता है, इसलिये सिद्धो का आकार चरम देह से कुछ न्यून होता है। (२) लोकाग्र मे स्थित है। (३) उत्पाद-व्यय सहित है।

प्र० ४१०–१४वी गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर–(१) केवली सिद्ध भगवान रागादिरुप परिणामित नही होते है और वे ससार अवस्था को नही चाहते–यह श्रद्धान का वल जानना चाहिये। (२) जैसा सात तत्वो का श्रद्धान छदमस्थ को होता है वैसा ही केवली-सिद्ध भगवान के भी होता है। (३) इसीलिये ज्ञानादिक की हीनता-अधिकता होने पर भी तिर्यचादिक और केवली-सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व गुण समान ही जानना। (४) इसलिये सभी जीवो को वैसा श्रद्धान प्रगट करना चाहिये और आगे बढने का प्रयास चालू रखना चाहिये।

प्र० ४११–सिद्धो के उत्पाद-व्यय को समझाइये ?

उत्तर—(१) सिद्धत्व हो गया वह बदलकर ससारीपना नही हो सकता है। (२) यदि प्रति समय उत्पाद-व्यय ना हो तो द्रव्य के सत्पने का नाश हो जावे, क्योकि "उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत्" ऐसा आगम का वचन है।

— ० —

सातवाँ अधिकार

वीतराग-विज्ञान प्रश्नोत्तरी

प्र० १—शुद्ध श्रावक धर्म प्रकाश मे पृष्ठ ३५८ में क्या बताया है ?

उत्तर—भरये पचम काले, जिन मुद्राधार ग्रन्थ सव्वस्से,
साडे सात करोड जाइये, निगोय मज्जिभि ॥

[१०८ विवेक सागर महाराज कृत शुद्ध श्रावक धर्म प्रकाश श्री दिगम्बर जैन समाज मारोठ (राजस्थान) से प्रकाशित]

प्र० २—क्या तीर्थंकरों के आठ वर्ष की अवस्था मे पंचम गुणस्थान आ जाता है ? यह कहाँ लिखा है ?

उत्तर—(१) पार्श्वनाथ भगवान की पूजा मे आया है। (२) उत्तर पुराण आचार्य गुणभद्र कृत प्रकाशक भारतीय ज्ञान पीठ बनारस मे-

स्वापुराधष्ठ वर्णेभ्य', सर्वेषा परतो भवेत।
उदिताष्ट कषायाणां तीर्थेणो देश सयम' ॥ ३५ ॥

अर्थ —"जिनके प्रत्याख्यान और सज्वलन सम्बन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ इन आठ कषायो का ही केवल उदय रह जाता है, ऐसे सभी तीर्थंकरो के अपनी आयु के प्रारम्भिक आठ वर्ष के बाद देश सयम हो जाता है। (अपनी आयु के आठ वर्ष हो जाने के बाद जिनको अनन्तानुबन्धी चार और अप्रत्याख्यानावरण चार के शमित हो जाने के कारण सभी तीर्थंकरो को देश सयम की प्राप्ति हो जाती है) तथा ३६ वे श्लोक मे बताया है कि ''यद्यपि उनके भोगोपभोग की प्रचुरता थी तो भी वे अपनी आत्मा को अपने वस मे रखते थे। उनकी वृत्ति नियमित थी तथा असंख्यात गुणी निर्जरा का कारण थी।

प्र० ३—जैसे समयसार मे गाथा ४९ है; उसी प्रकार यह गाथा

अन्य किस किस शास्त्र मे है ?

उत्तर—(१) प्रवचनसार मे १७२वी गाथा है। (२) नियमसार मे ४६वी गाथा है। (३) पचास्तिकाय मे १२७वी गाथा है। (४) अष्टपाहुड (भाव पाहुड) मे ६४वी गाथा है। (५) धवला ग्रन्थ तीसरे भाग मे यह गाथा है। (६) पद्मनन्दी पच विशति मे भी यह गाथा है। (७) लघु द्रव्य सग्रह मे भी यह गथा है।

प्र० ४—केवली क्या जानते है ?

उत्तर—अनन्त ज्ञान द्वारा तो अनन्त गुण-पर्याय सहित समस्त जीवादि द्रव्यो को युगपत् विशेषपने से प्रत्यक्ष जानते है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २]

प्र० ५—सिद्ध भगवान के दर्शन से क्या लाभ होता है ?

उत्तर—जिनके ध्यान द्वारा भव्य जीवो को स्वद्रव्य (निज जीवतत्त्व का) परद्रव्य का (अजीवतत्त्व का) और औपाधिक भाव (आस्रवबन्ध, पुण्य-पाप) स्वभाव भावो का (सवर-निर्जरा और मोक्ष का) विज्ञान होता है। जिसके द्वारा उन सिद्धो के समान स्वय होने का साधन होना है। इसलिये साधने योग्य जो अपना शुद्ध स्वरुप उसे दर्शाने को प्रतिबिम्ब समान है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ट ३]

प्र० ६–प्रयोजन किसे कहते है ?

उत्तर—जिसके द्वारा सुख उत्पन्न हो तथा दु ख का विनाश हो-उस कार्य का नाम प्रयोजन है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ ६]

प्र० ७-सासारिक प्रयोजन के लिये भक्ति करने से क्या होता है ?

उत्तर–इस प्रयोजन के (सासारिक कार्यो के) हेतु अरहतादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण पाप बन्ध ही होता है। इसलिए अपने को (मोक्षार्थी को) इस प्रयोजन का अर्थि होना योग्य नही है। अरहतादि की भक्ति करने से ऐसे प्रयोजन तो स्वयमेव ही सिद्ध होते है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक]

प्र० ८–श्रद्धानी जैनी अन्यथा क्या नही जानते हैं ?

उत्तर—जिनको अन्यथा जानने से जीव का बुरा हो ऐसे देव-गुरू-धर्मादिक तथा जीव-अजीवादिक तत्वों को तो श्रद्धानी जैनी अन्यथा जानते ही नहीं। क्योंकि इनका तो जैन शास्त्रो मे प्रसिद्ध कथन है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १४]

प्र० ९–कैसे शास्त्रों का बांचना-सुनना ही उचित है ?

उत्तर—जो शास्त्र मोक्षमार्ग का प्रकाश करे, वही शास्त्र वाचने-सुनने योग्य है। ··· ··· ·· सो मोक्ष मार्ग एक वीतराग भाव है। इसलिये जिन शास्त्रो मे किसी प्रकार राग-द्वेष-मोह भावो का निषेध करके वीतराग भाव का प्रयोजन प्रगट किया हो उन्ही शास्त्रो का वांचना-सुनना उचित है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १४]

प्र० १०–वक्ता कैसा होना चाहिये ?

उत्तर—(१) जैन श्रद्धान मे द्रढ हो। (२) जिसे विद्याभ्यास करने से शास्त्र वांचने योग्य बुद्धि प्रगट हुई हो। (३) सम्यग्ज्ञान द्वारा सर्व प्रकार के व्यवहार-निश्चयादिरुप व्याख्यान का अभिप्राय पहिचानता हो। (४) जिसे आज्ञा भग करने का भय बहुत हो। (५) जिसको शास्त्र बाचकर आजीविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा न हो। (६) जिसके तीव्र क्रोध-मान नही हो। (७) स्वय नाना प्रश्न उठाकर स्वय ही उत्तर दे। यदि स्वय मे उत्तर देने की सामर्थ्य न हो तो ऐसा कहे कि इसका मुझे ज्ञान नही है। (७) जिसके अनीतिरुप लोक निंद्य कार्यो की प्रवृत्ति न हो। (९) जिसका कुल हीन न हो, अगहीन न हो, स्वर भग न हो, मिष्ट वचन हो तथा प्रभुत्व हो। ऐसा वक्ता होना चाहिये। (१०) सुगुरु ही के उपदेश को कहने वाला उचित श्रद्धानी श्रावक उससे धर्म सुनना योग्य है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १५ से १७ तक मे से]

प्र० ११–जैन शास्त्रो का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर—जैन शास्त्रो के पदो मे तो कषाय मिटाने का तथा

लौकिक कार्य घटाने का प्रयोजन है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १३]

प्र० १२–जिन धर्म क्या है ?

उत्तर–सर्व कषायो का जिस-तिस प्रकार से नाश करने वाला है वह जिन धर्म है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १२]

प्र० १३–नवीन श्रोता कैसा होता है ?

उ०–(१) मै कौन हूँ ? मै कैलाश चन्द्र नाम धारी शरीर नही हूँ। मै तो ज्ञान-दर्शन का धारी ज्ञायक आत्मा हूँ। (२) मेरा स्वरुप क्या है ? ज्ञप्ति क्रिया मेरा कार्य है। (३) यह चरित्र कैसे बन रहा है ? सुबह उठना, खाना-पीना, व्यापार करना आदि कार्य सर्वथा पुद्गल के ही है। इनसे मेरा किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का सर्वथा सम्बन्ध नही है। (४) ये मेरे भाव होते है, उनका क्या फल लगेगा ? ये शुभाशुभविकारी भाव एक मात्र चारो गतियो के परिभ्रमण का ही कारण है। (५) जीव दुखी हो रहा है, सो दुख दूर करने का क्या उपाय है ? जैसा पदार्थो का स्वरुप है वैसा श्रद्धान हो जावे तो सर्व दुख मिट जावे। मुझको इतनी बातो का निर्णय करके कुछ मेरा हित हो सो करना–ऐसे विचार से जो उद्यमवन्त हुआ है–यह नवीन श्रोता का स्वरुप है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १७]

प्र० १४–सच्चा श्रोता कैसा होता है ?

उत्तर–जो आत्म ज्ञान द्वारा स्वरुप का आस्वादी हुआ है वह जिन धर्म के रहस्य का श्रोता है। क्योकि आत्म ज्ञान हुये बिना जिन धर्म का रहस्य किसी को समझ मे नही आ सकता है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १८]

प्र० १५–जिनवाणी का क्या आदेश है ?

उत्तर—उचित शास्त्र को उचित वक्ता होकर बाचना, उचित श्रोता होकर सुनना योग्य है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ १८]

प्र० १६–मोक्षमार्ग प्रकाशक क्या प्रकाशित करता है ?

उत्तर–जिस प्रकार सूर्य तथा सर्व दीपक है, वे मार्ग को एकरुप ही प्रकाशित करते है, उसी प्रकार दिव्यध्वनि तथा सर्व ग्रन्थ है, वे मोक्षमार्ग को एकरुप प्रकाशित करते है। सो यह मोक्षमार्ग प्रकाशक भी मोक्षमार्ग को प्रकाशित करता है [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १९]

प्र० १७–इस जीव का मुख्य कर्तव्य क्या है ?

उत्तर—(१) इस जीव का तो मुख्य कर्त्तव्य आगम ज्ञान है। (२) उसके होने से तत्त्वो का श्रद्धान होता है। (३) तत्त्वो का श्रद्धान होने से सयम भाव होता है। (४) और उस आगम ज्ञान से आत्म ज्ञान की भी प्राप्ति होती है। (५) तब सहज ही मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २०]

प्र० १८—निमित्त-नैमितिक क्या बताता है ?

उत्तर—तथा इस बन्धान मे कोई किसी को करता तो है नही। जब तक बन्धान रहे–विछेडे नही और कारण–कार्यपना उनके बना रहे। इतना ही यहा बन्धान जानना। सो मूर्तिक-अमूर्तिक के इस प्रकार बन्धान होने मे कुछ विरोध है नही। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४]

प्र० १९—घात का क्या अर्थ है ?

उत्तर–शक्ति की व्यक्तता नही हुई, अत शक्ति अपेक्षा स्वभाव है। उसका व्यक्त न होने देने की अपेक्षा घात किया कहते है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २५]

प्र० २०—जीव के जीवत्वपने का निश्चय किस से होता है ?

उत्तर–उन कर्मो का क्षयोपशम से जितने ज्ञान-दर्शन-वीर्य प्रगट है। वह उस जीव के स्वभाव का अश ही है। कर्म जनित औपाधिक भाव नही है। सो ऐसे स्वभाव के अश का अनादि से लेकर कभी अभाव नही होता है। इस ही के द्वारा जीव के जीवत्व का निश्चय [illegible] जाता है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २६]

प्र० २१—बन्ध का कारण कौन है ?

उत्तर-पर द्रव्य बन्ध का कारण नही होता। उनमे आत्मा को ममत्वादिरुप मिथ्यात्वादि भाव होते है वही बन्ध का कारण जानना। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २७]

प्र० २२—कर्म और जीव के विषय मे क्या जानना चाहिये ?

उत्तर-जीव का कोई प्रदेश कर्मरुप नही होता और कर्म का कोई परमाणु जीवरुप नही होता। अपने-अपने लक्षण को धारण किये भिन्न-भिन्न ही रहते है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ठ २४]

प्र० २३—घातिया कर्मों का बन्ध कब तक होता ही रहता है ?

उत्तर—शुभयोग हो अशुभयोग हो, सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना घातिया कर्मो की तो सर्व प्रकृतियो का निरन्तर बन्ध होता ही रहता है किसी समय किसी भी प्रकृति का बन्ध हुये बिना नही रहता है। [मोक्ष मार्ग प्रकाशक]

प्र० २४—मनुष्य जीवन का अर्थ क्या है ?

उत्तर-हेय-उपादेय-ज्ञेय का सच्चा ज्ञान-यह मनुष्य जीवन है।

प्र० २५-हेय-ज्ञेय-उपादेय से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर-मुझ आत्मा ज्ञायक और विश्व व्यवहार से ज्ञेय। (२) मैं ज्ञायक और ज्ञानपर्याय ज्ञेय। (३) ऐसा भेद भी नही है। बस ज्ञायक-ज्ञायक।

प्र० २६—आत्मा का पता कैसे चले ?

उत्तर-द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से अपने को भिन्न जाने तो आत्मा का पता चले।

प्र० २७—केवलज्ञान कैसे प्रगट होता है ?

उत्तर-आत्मा मे केवलज्ञान शक्तिरुप से है। उस शक्तिवान द्रव्य का पूर्ण आश्रय लेने से पर्याय मे केवलज्ञान तेरहवे गुणस्थान मे प्रगट होता है।

प्र० २८ – केवलज्ञान के विषय मे तीन खोटी मान्यतायें क्या-क्या है ?

उत्तर—(१) जैसे लेंडीपीपर मे चौसठपुटी चरपराहट शक्तिरुप से है किन्तु प्रगट रुप से नही है। उसे वर्तमान मे प्रगट रुप से माने तो वह मूर्ख ही है; उसी प्रकार आत्मा मे केवलज्ञान शक्तिरुप से है, उसे कोई व्यक्त पर्याय मे हे–ऐसा माने वह निश्चयाभासी मिथ्या-द्रष्टि है। (२) जैसे कोई लेंडी पीपर चौसठ पुटी चरपराहट प्रगट माने तथा ऊपर डिब्बी का या किसी अन्य वस्तु का आवरण है–ऐसा माने तो वह भी मूर्ख है, उसी प्रकार आत्मा मे केवलज्ञान पर्याय मे प्रगट है किन्तु कर्म के आवरण के कारण रुका हुआ है–ऐसा जो मानता है वह व्यवहाराभापी मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि जड कर्म के कारण पर्याय रुकी हे यह मान्यता मिथ्यात्व है। (३) जैसे लेंन्डी पीपर मे चौसठ पुटी चरपराहट शक्तिरुप से है वह पत्थर से या अन्य किसी निमित्त के कारण प्रगट होनी है, तो वह भी मूर्ख है, उसी प्रकार आत्मा मे केवलज्ञान शक्तिरुप से है, परन्तु निमित्त हो या शुभभाव होवे तो प्रगटे, तो वह भी व्यवहाराभापी मिथ्यादृष्टि है। [मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ १६४ का मर्म]

प्र० २६–अरहन्त भगवान की दिव्यध्वनि मे क्या आता है ?

उत्तर—आत्मा स्वय ही अपना प्रभु है। मै अपना प्रभु और तू अपना प्रभु है। मेरी प्रभुता मेरे मे और तेरी प्रभुता तेरे मे। इसलिये अपनी आत्मा को पहचान कर उसके सन्मुख हो, इसी मे तेरा कल्याण है इस प्रकार सर्वज्ञदेव अरहन्त परमात्मा की दिव्यध्वनि मे आता हे।

प्र० ३०—जिनवचन क्या है ?

उत्तर—वचनामृत वीतराग के, परम शान्त रस मूल।
औपध जो भवरोग के, कायर को प्रतिकूल॥

भावार्थ –(१) जिनवचन तो स्व-पर का भेदविज्ञान कराके परम

शान्ति देने वाली औषधि है। मिथ्यावासनाओ से उत्पन्न ससार रूपी रोग को मिटाने वाली है। (२) परन्तु विषयवासनाओ के कल्पित सुखो मे लगे हुये नपुन्सको को जिनवचन अच्छा नही लगता है।

प्र० ३१–आत्मा कैसा है ?

उत्तर—शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, स्वय ज्योति सुखधाम।
दूसरा कहिये कितना, कर विचार तो पाम॥

भावार्थ –आत्मा शुद्ध-बुद्ध चैतन्यघन, स्वय ज्योति सुख का खजाना है। परम चैतन्य ज्योति स्वरूप है। यदि विचार करे तो उसकी प्राप्ति होवे। (१) शुद्ध अर्थात् पवित्र है। (२) बुद्ध अर्थात् ज्ञान-स्वरुप है। (३) चैतन्यघन अर्थात् असंख्यात प्रदेशी है। (४) स्वय ज्योति अर्थात् सिद्ध वस्तु है। किसी से उत्पन्न और नाश नही हो सकती है। (५) सुखधाम अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का खजाना है। अपनी ज्ञान की पर्याय मे ऐसे ज्ञायक भगवान को दृष्टि मे ले तो कल्याण होवे-किसी दूसरे या विकारी भावो से कुछ नही मिलेगा वल्कि दूसरे से सम्बन्ध मानेगा तो दु ख पायेगा।

प्र० ३२–मुक्ति के लिये क्या करना ?

उत्तर—एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर
समल विमल न विचारिये, येहे सिद्धि नही और॥

अर्थ –[एक देखिये जानिये] अर्थात् एक वस्तु त्रिकाल भगवान पूर्णानन्द को अवलोको-यह एक को जानना है। [रमि रहिये इक ठौर] और उस एक स्थान मे रमणता करना। [समल-विमल न विचारिये] निश्चय से अभेद और व्यवहार से भेद ऐसा विकल्प भी नही करना। [येहे सिद्धि नही और] यही एक मुक्ति का उपाय है दूसरा और कोई भी उपाय नही है।

प्र० ३३–ससार क्या है ?

उत्तर—"ससरणम् इति ससार" अपने आप का पता ना होना अथात् मोह, राग, द्वेष भाव ही ससार है, पर वस्तु ससार नही है।

उसका स्वाद आवे तब उसकी सेवा की ऐसा कहा जावेगा। भगवान आत्मा चैतन्य स्वभाव से भरा हुआ है जिसने अर्न्तमुख होकर पर्याय मे जाना उसने आत्मा की सेवा करी तभी जन कहला सकता है। यही बात समयसार गाथा ६ मे कही है—पर द्रव्य और पर भावो का लक्ष्य छोडकर आत्मा के ज्ञायक भाव की दृष्टि करे तो शुद्ध कहलाता है। कर्त्ता-कर्म अधिकार की ६९-७० की टीका मे भी कहा है कि जो आत्मा और ज्ञान मे पृथकपना नही देखता उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति हो जाती है। (२) केवलज्ञान का निर्णय स्वभाव सन्मुख हुये बिना नही हो सकता। जिससे केवलज्ञान का निर्णय किया वही सम्यग्दृष्टि है।

प्र० ४४—क्या द्रव्यकर्म-नोकर्म दु खदायी या सुखदायी है ?

उत्तर—सर्वथा नही है। मात्र जो परवस्तु मे अपना भाव जाता है चाहे वह शुभ भाव हो या अशुभ भाव हो वह ही ससार है।

प्र० ४५—क्या करें तो दु.ख मिटे ?

उत्तर—मात्र विकारी भाव दु खरूप है पर वस्तु दु ख रूप नही है—इतना जानते-मानते ही अनादि की दु ख रूप दृष्टि का अभाव हो जाता है।

प्र० ४६—परवस्तु दु ख सुखरुप नहीं हैं मात्र विकारी भाव दु ख रुप हैं—ऐसा जानने-मानते ही दुख का अभाव कैसे हो जाता है—स्पष्ट समझाइये।

उत्तर—अरे भाई—जब परवस्तु सुखदायी-दुखदायी नही है ऐसा मानेगा तभी दृष्टि अपने त्रिकाली स्वभाव पर चली जावेगी और विकारी भाव उत्पन्न नही होगा और शुद्ध दशा प्रगट हो जावेगी। वास्तव मे विकारी भाव छोडना नही पडता है परन्तु जब स्वभाव पर दृष्टि आई तो विकारी भाव उत्पन्न ही नही हुआ तो बोलने मे आता है कि विकारी भाव छोडे।

प्र० ४७—क्या करें तो परिभ्रमण का अभाव हो ?

उत्तर—तू भगवान है। तेरे भगवान से किसी का भी सर्वथा सम्बन्ध नही है। इतना जानते-मानते ही ससार का अभाव, मोक्षमार्ग की प्राप्ति और क्रम से निर्वाण की ओर गमन—वस।

प्र० ४८—क्या विश्व के द्रव्यो की पर्याय व्यवस्थित ही है ?

उत्तर-हाँ। विश्व के प्रत्येक द्रव्य और गुण की पर्याय व्यवस्थित ही है। जिस प्रकार मोती की माला मे जो मोती जहाँ पर व्यवस्थित है उसी प्रकार जिस पर्याय का जो जन्मक्षण है चाहे वह पर्याय विकारी हो या अविकारी हो वह व्यवस्थित और क्रमवद्ध ही है।

प्र० ४९—विश्व के द्रव्य-गुणो की विकारी अविकारी पर्याय व्यवस्थित और क्रमवद ही है-इसको जानने-मानने से क्या लाभ होना चाहिये ?

उत्तर—दृष्टि स्वभाव पर होना, चारो गतियो का अभाव होना ही इसको जानने-मानने का लाभ है। जब विश्व की पर्याय क्रमवद्ध और व्यवस्थित ही है ऐसा जानने-मानने वाला केवली के समान ज्ञाता-दृष्टा वन गया। पच परमेष्ठियो की श्रेणी मे आ गया।

प्र० ५०—ज्ञान पर्याय ग्राहक और ग्राह्य क्या है ?

उत्तर—अरे भाई अनादिकाल से अज्ञानी जीव की ज्ञान पर्याय जो ग्राहक है वह रुपी पदार्थो को ग्राह्य वनाती है जब ऐसा माना कि रूपी पदार्थो से शरीर से जरा भी सम्बन्ध नही है तब ज्ञान की पर्याय स्वयमेव ज्ञायक की तरफ चली जाती है। अरे भाई यह कार्य आसान है, सहजरूप है।

प्र० ५१—सात तत्वो मे क्या बताना है ?

उत्तर—(१) जीव तत्व मे क्या वताना है ? तू ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणो का पुंज भगवान आत्मा है। (२) अजीव तत्व मे क्या वताना है ? विश्व मे अजीव तत्व है परन्तु तेरा अजीव तत्व से

सर्वथा सम्बन्ध नही है। (३) आस्रव-बंध तत्व मे क्या बताना है ? तू अजीव तत्व मे अपनापना मानता है तो आस्रव-बध की उत्पत्ति होकर दु खी होता है। (४) सवर-निर्जरा और मोक्ष मे क्या बताना है ? यदि तू अजीव तत्व से अपना सम्बन्ध ना माने तो तुरन्त अपने जीव तत्व पर दृष्टि आ जावे तभी सवर-निर्जरा की शुरूआत होकर नियम से मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्र० ५२—अपने आत्मा की महिमा कैसे आवे ?

उत्तर—अरे भाई तू व्यर्थ मे पर पदार्थ की महिमा मे कितना पागल हो रहा है। तू अभी शरीर को छोडकर चला जायेगा तो तेरा क्या सम्बन्ध रहेगा। ऐसा विचार करके जब पर से तेरा सम्बन्ध नही है ऐसा निर्णय हो जायेगा तभी अपनी आत्मा की महिमा आ जावेगी—दूसरा उपाय नही है।

प्र० ५३—आज देश मे और प्रत्येक फिरके मे क्या देखने मे आ रहा है ?

उत्तर—यह मेरा—मैं इसका, इसके विरूद्ध हो उसका नाश हो—ऐसी प्रवृत्ति देखने मे आ रही है। दिन प्रतिदिन ऐसी प्रवृत्ति बढेगी क्योकि पचमकाल मे दिनोदिन बुरे दिन आने है।

प्र० ५४—तो हमे क्या करना चाहिये ?

उत्तर—किसी के झगडे मे मत पडो। एक मात्र अपने अनन्त गुणो के अभेद पिण्ड मे लीन होकर मुक्तिधाम के मालिक बनो।

प्र० ५५—अपने मे लीनता नही होती तो इधर-उधर का ध्यान आ जाता है तो क्या करना ?

उत्तर—इधर-उधर ध्यान जाना मूर्खता है। भगवान तीर्थंकर दिन रात बता रहे है। यदि दूसरो के झगडे मे पडेगा तो तू निगोद मे जा पडेगा और अपने झगडे मे पडेगा तो तू मोक्ष मे जायेगा। अत. निर्णय कर पर के चक्कर मे मत पड।

प्र० ५६-अध्यवसाय क्या है ?

उत्तर—सुवह से शाम तक जितना कार्य दिखता है वह सब आहारवर्गणा का ही है। किसी आत्मा का या किसी दूसरी वर्गणा का नही है। लेकिन इन सब कार्यो को मै करता हूँ यह मिथ्या अध्यवसाय है।

प्र० ५७-मिथ्या अध्यवसाय को खोलकर समझाइये ?

उत्तर—उठना-बैठना, खाना-पीना, भोगादि की क्रिया, दुकान खोलना-बन्द करना, दूध-पानी पीने की क्रिया आदि सब आहार-वर्गणा का कार्य है-इन सब कार्यो को मै करता हूँ मै भोगता हूँ आदि एकत्व बुद्धि मिथ्या अध्यवसाय है। यह अध्यवसाय अनन्त ससार का कारण है।

प्र० ५८-क्या देखने मे आता है ?

उत्तर—सम्यग्दृष्टि को छोडकर सारा विश्व दु खी ही देखने मे आता है। विश्व के समस्त मिथ्यादृष्टि कोई किसी चक्कर मे, कोई किसी चक्कर मे है जरा भी चैन नही है।

प्र० ५९ दु खी क्यो है ?

उत्तर—जिनसे अपना किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार का कर्त्ता-भोक्ता का सर्वथा सम्वन्ध नही है उन्हे अपनी बनाना चाहता है वे अपने किसी भी प्रकार नही बन सकते है। क्योकि प्रत्येक द्रव्य अनादिनिधन अपनी-अपनी मर्यादा लिये परिणमे है। कोई किसी के आधीन नही है। कोई किसी के परिणमाया परिणमता नही है। ऐसा जाने-माने तो सम्पूर्ण दु ख का अभाव हो जावे।

प्र० ६०—थोडे मे जैन-दर्शन का सार क्या है ?

उत्तर-(१) शुभाशुभ भाव ससार है। (२) शुद्ध भाव मोक्ष और मोक्षमार्ग है, (३) शरीरादि नोकर्म व द्रव्यकर्म से तो सर्वथा सम्बन्ध नही है।

जीव-अजीव का अन्यथापना पर १२ प्रश्नोत्तर

[मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ २२५]

प्र० १—जो जीव दिगम्बरधर्मी है, जिनाज्ञा को मानता है, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करता है, सच्चे देव-गुरू-धर्म को ही मानता है, कुगुरू-कुदेव-कुधर्म को नही मानता है, वह जीव तत्व का जानना किसे मानता है ?

उत्तर—जीव के दो भेद है—त्रस और स्थावर—यह जीव को जानना मानता है।

प्र० २—जो जीव दिगम्बर धर्मी है, जिनाज्ञा को मानता है, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करता है, सच्चे देवादि को मानता है उसका जीव के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर—यह जीव का जानना झूठा क्यो है ?

उत्तर—उसने सिद्ध भगवान को जीव नही माना , इसलिये जीव के दो भेद है—त्रस और स्थावर—ऐसी मान्यता वाले को जीव-अजीव का ज्ञान नही है।

प्र० ३—जो जीव दिगम्बर धर्मी है, जिनाज्ञा को मानता है, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करता है, सच्चे देवादि को ही मानता है उसका जीव को जानना कि जीव के दो भेद है—ससारी और मुक्त। संसारी के दो भेद हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर के पाँच भेद हैं और त्रस के दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के जीव हैं—क्या उसका जीव का जानना ठीक है ?

उत्तर—बिल्कुल ठीक नही है क्योकि अध्यात्म शास्त्रो मे भेद-विज्ञान का कारणभूत जैसा जीव का निरूपण किया है वैसा न मानने के कारण उसका जीव-अजीव का जानना भी झूठा ही है।

प्र० ४—किसी को प्रसंगानुसार अध्यात्म के अनुसार कहना आ जाये कि जीव तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप ही है। पर्याय की अपेक्षा से

त्रस-स्थावर भेद है। क्या अध्यात्म के अनुसार कहने वाला भी जीव के ज्ञान से शून्य है ?

उत्तर—अध्यात्म के अनुसार कहने वाला भी जीव के ज्ञान से शून्य है क्योकि उसने किसी प्रसगानुसार अध्यात्म के अनुसार कहा तो है—परन्तु अपने को (त्रिकाली निज भगवान को) आपरूप (ज्ञान-दर्शनादि गुण रूप) जानकर (धर्म की प्राप्ति कर) पर का अश भी अपने मे न मिलाना और अपना अश भी पर मे न मिलाना—ऐसा श्रद्धान न होने के कारण अध्यात्म के अनुसार जानकर कहने वाला भी जीव ज्ञान से शून्य ही है।

प्र० ५—जो जीव दिगम्बर जैन है, जिनाज्ञा को मानता है, निरन्तर शास्त्र का अभ्यास करता है और सच्चे देवादि को ही मानता है ऐसे मिथ्यादृष्टि जैन को समझाते हुये पं० जी ने क्या कहा है ?

उत्तर—जैसे अन्य मतावलम्बी निर्णय किये विना मै ज्ञानवाला हूँ, मै काला हूँ' मै माला जपता हूँ, मै उपवास करता हूँ—ऐसा मानता है, उसी प्रकार दिगम्बर धर्मी होने पर, जिनाज्ञा मानने पर, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करने पर, सच्चे देवादि को मानने पर भी आत्मा अनन्तगुणमयी है, मै प्रवचनकार हूँ, मै एकासन करता हूँ, मै उपवास करता हूँ, सिद्ध चक्र का पाठ करता हूँ, मै भगवान के दर्शन किये बिना भोजन नही करता हूँ। मै रोजाना तीन वार णमोकारमत्र की जाप जपता हूँ आदि शरीर की क्रियाओ मे अपना-पना मानता है वह तो अन्यमतावलम्बी से भी बुरा है।

प्र० ६—दिगम्बर धर्मी होने पर, जिनाज्ञा मानने पर, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करने पर और सच्चे देवादि को मानने पर भी शरीर की क्रियाओ को अपना मानने वाला अन्यमतावलम्बी से भी बुरा क्यो है ?

उत्तर—दिगम्बर शास्त्रो मे निश्चय-व्यवहार अपेक्षा कथन किया

है। यहाँ व्यवहार अपेक्षा कथन किया है—ऐसा न जानने के कारण दिगम्बर धर्मी अन्यमतावलम्बी से भी बुरा ही है।

प्र० ७–दिगम्बर धर्मी होने पर अध्यात्म के अनुसार जीव-अजीव का कथन करे तो क्या उसका जीव-अजीव का श्रद्धान ठीक नही है ?

उत्तर—अध्यात्म अनुसार जीव-अजीव की बात करने वाला भी झूठा ही है। क्योकि अन्तरग श्रद्धान नही है। (आत्म सन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त नही किया है) जिस प्रकार शराबी-शराब के नशे मे माँ को माँ कहे, स्त्री को स्त्री कहे वह भी सयाना नही है, उसी प्रकार अध्यात्म के अनुसार जीव-अजीव की बात करने वाला भी सम्यकत्वी नही है।

प्र० ८–मुझ आत्मा सिद्ध समान शुद्ध है, केवलज्ञानादि सहित है, सिद्ध समान सदा पद मेरो—ऐसा निश्चयाभासी के समान अध्यात्म की बात करने वाला दिगम्बर धर्मी झूठा क्यो है ?

उत्तर–जैसे किसी और की ही बाते कर रहा हो इस प्रकार से आत्मा का कथन करता है परन्तु यह आत्मा मैं हूँ-ऐसा वर्तमान मे अनुभव न होने से अध्यात्म की तरह जीव की बात करने वाला दिगम्बर धर्मी भी झूठा ही है।

प्र० ९–आत्मा ज्ञान-दर्शन का धारी है शरीर जड है। आत्मा से शरीर का सम्बन्ध नही है ऐसा व्यवहाराभासी की तरह दिगम्बर धर्मी जीव-अजीव का कथन करने वाला झूठा क्यो है ?

उत्तर–जैसे किसी और को और से भिन्न बतलाता हो; उसी प्रकार जीव-अजीव की भिन्नता का वर्णन करने वाला व्यवहाराभासी की तरह दिगम्बर धर्मी भी झूठा ही है। क्योकि मुझ आत्मा इस शरीरादि से सर्वथा भिन्न है ऐसा आत्म स्वभाव सन्मुख निर्णय ना होने से स्व-पर की बात करने वाला दिगम्बर धर्मी भी झूठा ही है।

प्र० १०–पर्याय मे जीव-पुद्गल के परस्पर निमित्त से अनेक क्रियायें होती है उन्हे जीव-अजीव के मिलाप से मानने वाला उभयाभासी की मान्यता की तरह दिगम्बर धर्मी का जीव-अजीव का ज्ञान झूठा क्यो है ?

उत्तर—यह जीव के भाव है उसका पुद्गल निमित्त है। यह पुद्गल की क्रिया है उसका जीव निमित्त है। ऐसा भिन्न-भिन्न स्वतत्र निमित्त-नैमित्तक का ज्ञान न होने से दिगम्बर धर्मी झूठा ही है।

प्र० ११–इत्यादि भाव भासित हुये बिना दिगम्बर धर्मी को जीव-अजीव का सच्चा श्रद्धानी नही कहते–यह कहने का क्या भाव है ?

उत्तर–मुझ आत्मा ज्ञान-दर्शन का धारी जीव तत्व है। शरीरादि सर्वथा अजीव तत्व है। इसके साथ मेरा किसी भी अपेक्षा किसी भी प्रकार से कर्त्ता-भोक्ता का सम्बन्ध नही है–ऐसा जानकर आस्रव-बध का अभाव करके सवर-निर्जरा न प्रगट करे तो उसे जीव-अजीव का श्रद्धानी नही कहते है।

प्र० १२-जीव-अजीव के जानने का प्रयोजन क्या था ?

उत्तर—अपने को आपरूप जानकर पर का अश भी अपने मे न मिलाना और अपना अश भी पर मे न मिलाना–यह जीव अजीव को जानने का प्रयोजन था। वह हुआ नही। अत दिगम्बर धर्मी होने पर, जिनाज्ञा मानने पर, निरन्तर शास्त्रो का अभ्यास करने पर और सच्चे देवादि को मानने पर भी जीव-अजीव का अन्यथापना रह जाता है।

श्री समयसार गाथा ९२–९३ का मर्म

प्र० १३–यह मेरा सोने का हार है—इस वाक्य मे कैसा जाने-माने तो मिथ्यात्वादि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति हो ?

उत्तर—(१) जैसे-सोने का हार पुद्गल से एकमेक है, आत्मा से

सर्वथा भिन्न है और सोने के हार सम्बन्धी ज्ञान आत्मा से एकमेक है और सोने के हार से सर्वथा भिन्न है। (२) उसी प्रकार यह मेरा सोने का हार है इसमे सोने के हार सम्बन्धी राग पुद्गल से (सोने के हार से) एकमेक है, आत्मा मे सर्वथा भिन्न है और सोने के हार सम्बन्धी राग का ज्ञान आत्मा से एकमेक है और राग से सर्वथा भिन्न है। ऐसा वस्तुस्वरूप है। (३) अज्ञानी जीव सोने के हार को अपना मानता है उसी प्रकार विश्व के भिन्न पदार्थों को अपना मानता है और सोने के हार सम्बन्धी राग को अपना मानता है, उसी प्रकार समस्त प्रकार के राग को अपना मानता है-इस कारण चारो गतियो मे घूमकर निगोद मे चला जाता है। (४) ज्ञानी जीव अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों को भिन्न जानता है उसी प्रकार अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों सम्बन्धी राग को भिन्न जानता है। ज्ञानी जीव विश्व के पदार्थों को व्यवहार से ज्ञेय तथा अस्थिरता सम्बन्धी राग को हेय व ज्ञेय जानता है। वैसे तो ज्ञान पर्याय ज्ञेय और मुझ आत्मा ज्ञायक है। परमार्थ से मैं आत्मा ज्ञायक और ज्ञान पर्याय ज्ञेय, ऐसे भेद से भी कार्य सिद्धि नही होती है। मुझ आत्मा ज्ञायक-ज्ञायक ऐसा अनुभव करता है। और क्रम से श्रेणी माडकर मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्र० १४–जैन दिगम्बर दीक्षा लेकर आत्मकार्य करूंगा। इस वाक्य में दिगम्बर दीक्षा क्या है?

उत्तर—तीन चौकडी कषाय के अभावरूप सकलचारित्रदशा ही दिगम्बर दीक्षा है।

प्र० १५—श्रावकपना क्या है?

उत्तर—दो चौकडी कषाय के अभावरूप देशचारित्रदशा ही श्रावकपना है।

प्र० १६ – सम्यग्दृष्टिपना क्या है?

उत्तर—श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय निश्चय सम्यग्दर्शन। साथ मे

स्वरूपाचरणचारित्र तथा और सर्व गुणो मे शुद्धि प्रगट होना सम्यग्दृष्टिपना है।

प्र० १७– ज्ञेय मिश्रित ज्ञान का अनुभव है उससे विषयो की प्रधानता भासित होती है। इस प्रकार इस जीव को मोह के निमित्त से विषयो की इच्छा पाई जाती है। इस वाक्य का मर्म स्पष्ट करिये ?

उत्तर—गजब हो गया–विषयो की ही प्रधानता भासित होती है। निज भगवान आत्मा की प्रधानता भासित नही होती–इसलिये सम्यग्दर्शन नही होता है। (१) मै कैलाशचन्द्र (२) मै उठा (३) मै खडा (४) मै चला (५) मै बोला (६) मै गिर गया (७) मै हल्का (८) मै भारी (९) मै रूखा (१०) मै चिकना (११) मै कडा (१२) मै नरम (१३) मैने आम खाया (१४) मैने रोटी खाई (१५) मैने हलवा खाया (१६) मैंने आईसक्रीम खाई (१७) मैने आँवले चखे (१८) मैने रसगुल्ले खाये (१९) मुझे बदबू आई (२०) मुझे खुशबू आई (२१) मै काला (२२) मैं गोरा (२३) मै पीला पड गया (२४) मैने झाडू दी (२५) मैने विस्तरा बिछाया (२६) मैने दुकान खोली (२७) मैने दुकान बन्द की (२८) मेरा मकान (२९) मेरी स्त्री (३०) मेरा लडका (३१) मै लडकी (३२) मै बहू (३३) मैं बुढिया (३४) मै राष्ट्रपति (३५) मै प्रधानमत्री (३६) मै राजा (३७) मै मत्री (३८) मै अमेरिका का हूँ (३९) मै रुस का हूँ (४०) मै जर्मन का हूँ (४१) मै हिन्दुस्तान का हूँ (४२) मेरा विस्तरबन्द है (४३) मुझे प्यास लगी है (४४) मै भूखा (४५) मेरी कपडे की दूकान है (४६) मेरी बिसातखाने की दुकान है (४७) मेरे हाथ (४८) मेरी नाक (४९) मेरी उगलियाँ (५०) मेरे दाँत (५१) मैने स्त्री को छुआ (५२) मैंने सिनेमा देखा (५३) मैने फिल्मी गायन सुना (५४) मुझे बुखार हो गया (५५) मुझे खासी हो गयी (५६) मुझे ब्लडप्रैशर हो गया (५७) मुझे हार्ट अटैक हो गया (५८) मुझे कैन्सर हो गया (५९) मे ५२ वर्ष का हूँ (६०) मैं ६० वर्ष का हूँ। गजब हो गया।

प्र० १८–जैन धर्म क्या है ?

उत्तर—निजात्मा का अनुभव ज्ञान आचरण ही जैन धर्म है। (१) जैन होते ही सारे विश्व का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। (२) सिद्ध-अरहन्त-श्रेणी-मुनिपना-श्रावकपना क्या है ?—हथेली पर रखे आँवले के समान यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान-आचरण हो जाता है। जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा श्रद्धान-ज्ञान हो जावे तो सम्पूर्ण दु ख का अभाव हो जावे।

प्र० १९–विश्व में सुखी कौन है ?

उत्तर—ज्ञानी ही सुखी है।

प्र० २०–ज्ञाता-दृष्टा कब कहा जावेगा ?

उत्तर—जैसा केवली के ज्ञान मे आया है वैसा ही हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा–ऐसा जाने माने तभी मेरा कार्य ज्ञाता-दृष्टा है और मै ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हूँ।

प्र० २१–जो विश्व में दिखता है पुद्गल स्कन्धो की पर्याय है फिर जीव इनमें पागल क्यो हो रहा है ?

उत्तर—पागल है इसलिये पागल हो रहा है। दिगम्बर धर्म होने पर भी इनमे लगे, अपनापना माने–जीवन को धिक्कार है।

प्र० २२–वस्तु स्वरूप कैसा है ?

उत्तर–अनादिनिधन वस्तुये भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिये परिणमे है। कोई किसी का परिणमाया परिणमता नही है। यह सब शास्त्रो का सार है। इसको ध्यान मे लेते ही ससार का अभाव होकर मोक्ष का पथिक बने।

प्र० २३–सुनने पर भी धर्म की प्राप्ति क्यो नही होती ?

उत्तर—ज्यो रमता मन विषयो मे, त्यो जो आतमलीन।
मिले शीघ्र निर्वाण पद, धरे न देह नवीन॥
व्यवहारिक धन्धे फसा, करे न आतमज्ञान।
इस कारण जग जीव ये, पात नही निर्वाण॥

ससार मे ज्ञेय की महिमा प्रतिभासित होने से अपनी महिमा नहीं आती है। यदि अपनी महिमा आवे तो तत्काल धर्म की प्राप्ति होवे।

प्र० २४–पात्र मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व अवस्था में कैसा भाव आता है ?

उ०–(१) मै कौन हूँ ? मै ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व हू।
(२) मेरे मे क्या है ? ज्ञान दर्शनादि अनन्त गुण है।
(३) मेरा स्वरुप क्या है ? एक मात्र जानना देखना ही है।
(४) यह चरित्र क्या बन रहा है ? उठना, बैठना, खाना-पीना, व्यापारादि, विवाहादि यह सब पुद्गल के खेल है। उनमे मेरा स्वप्नपना भी नही है।
(५) जो शुभाशुभ विकारी भाव हो रहे है इनका फल क्या होगा ? मात्र चारो गतियो का परिभ्रमण ही है।
(६) मै दु खी हो रहा हू ? दु ख दूर करने का उपाय क्या है ? स्व-पर भेद विज्ञान।

प्र० २५–चर्चा करनी या नही ?

उत्तर—(१) पच परमेष्ठी की ही चर्चा करनी (२) अपनी चर्चा अपने पास ही करनी (३) किसी की चर्चा का विचार भी नही लाना। इस विषय मे किसी से पूछना भी नही। (४) दुनिया मे देखो सैकडो आये और चले गये। चक्रवर्ती मानुपोत्तर पर्वत पर अपना नाम लिखने जाता है लेकिन देखता है कि जगह ही नही। (५) अरे भाई–अपनी चैतन्य अरूपी असख्यात प्रदेशी की ही चर्चा करनी स्वय मे स्वय से करनी है। प्रवचन मे किसी के नाम की चर्चा नही आनी चाहिये।

प्र० २६–आत्मा के खजाने का पता कैसे लगे ?

उत्तर–जब शरीर को अलग जानेगा उसी समय अतीन्द्रिय आनन्द आवेगा। अनन्त काल का भव भ्रमण टल जायेगा।

प्र० २७–जिनवाणी का उपदेश क्या है ?

उत्तर—हे विश्व के सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो ! तुम्हे इतना ज्ञान

का उघाड है जो अपना कल्याण कर सकते हो। शरीर से सर्वथा भिन्न अपने को जानो-मानो आचरण करो तो बेडा पार हो जायेगा। अरे भाई यह कार्य आसान है।

प्र० २८—कल्याण कब तक नही होगा ?

उत्तर—जब तक शरीर, शरीर की क्रिया और राग अपना भासित होगा तब तक धर्म की गध भी नही आ सकती है। जैसे हिजडो के कभी भी पुत्र की प्राप्ति नही हो सकती हैं उसी प्रकार जिसे शरीर मे व राग मे अपनापना भासेगा उसे धर्म की प्राप्ति नही हो सकती है।

प्र० २९—आत्मा कैसा है ?

उत्तर—ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि अनन्त गुणो का धाम है। इसमे इतना माल भरा है कि अरबो ३३ सागर तक निकाला जावे तो भी खजाना समाप्त न होगा।

प्र० ३०—स्व-पर क्या है ?

उत्तर—स्व (१) अमूर्तिक प्रदेशो का पुज-मुझ आत्मा का क्षेत्र है। (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो का धारी—मुझ आत्मा का भाव है। (३) अनादिनिधन—मुझ आत्मा का काल है। (४) वस्तु आप है मुझ आत्मा द्रव्य है।

पर—(१) मूर्तिक पुद्गल द्रव्यो का पिण्ड—कैलाशचन्द्रका क्षेत्र है। (२) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणो से रहित-स्पर्श-रस-गध वर्णादि सहित कैलाशचन्द्र का भाव है। (३) नवीन जिसका सयोग हुआ है—यह कैलाशचन्द्र का काल है। ऐसे शरीरादि कैलाशचन्द्र पुद्गल पर है।

प्र० ३१—शरीरादि के विषय मे क्या विचार करना ?

उत्तर—जैसे कम्बल, रसगुल्ला, कमीजादि है उसी प्रकार यह शरीर है। हे भव्य आत्माओ ! तुम्हारा दूसरी आत्मा से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही है। तब फिर अचेतन जड रुपी शरीर से तुम्हारा सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? सावधान-सावधान। एकबार शरीर से भिन्न अपने को मान किसी से पूछना नही पडेगा।

— ० —

श्री क्षु धर्मदास विरचित स्व जीवन वृत्तान्त

('स्वात्मानुभव मनन' की 'प्रस्तावना')

'मैंका सरीरकू क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास कहणेवाला कहता है सो ही मै मेरी स्वात्मानुभव की प्राप्ति की प्राप्ती भई सो प्रगट कर्ता हूँ मे के द्वारा मेरा सरीर का जनम तो सवाई जयपूरका राजमै जीला सवाई माधोपूर तालुका बोलीगाव वपूई का है खडेरवाल श्रावग गोत्र गिरधरवाल चुडीवाला तथा गधिया का कूल मे मेरी सरीर उपज्यो है मेरा सरीर का पिता का नाम श्रीलालजी थो अर मेरी माता का नाम ज्वालाबाई थो अर मेरा सरीर को नाम धनालाल थो अब मेरा सरीरको नाम क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है अनुक्रमसे मेरे सरीर के वय २० वर्ष की हुई तब कारण पायकरिके मै झलरा पाटण आयो तहाँ जैनका मुनी नगन श्री सिद्धश्रेणिजी ताको मै शिष्य हुवो स्वामी मैकू लौकीक वर्त नेम दीया सो ही मै सवत् १९२२ औगणीसे वाईसका सवत्सै १९३५ का साल पर्यंत कायक्लेस तप किया।

भावार्थ १३ (तेरा) वर्ष के भीतर मे २००० दोहे सहस्र तो निर्जल उपवास किया, दो च्यार जैन मदिर वणाया, प्रतिष्ठा कराई बहुरि समेदशिखर गिरनार आदि जैनका तीर्थ कीया, और वी भूसयन पटन पाठ मत्रादिक बहुत कीया, ताकरि कै मेरा अन करण मै अभिमान अहकाररुपी सर्प का जहर व्याप्त हो गया था तिस कारणतै मैं मेरे कू भला मानतो थो अन्यकू झठा, षोटा (खोटा), बुरा मानतो थो उसी बहिरात्मादिसा मैं मैकू तेरापथी श्रावग दिल्ली अलीगढ कोयल आदि बडे सहरो मे मेरा पाव मै प्रणम्य नमस्कार पूजा करते थे इस कारणसै वी मेरा अतःकरणमैं अभिमान अज्ञान ऐसा था के मै भला हूँ श्रेष्ठ हूँ अर्थात् उस समय येह मोकू निश्चय नही थी के निंदा स्तुति पूजा देहकी अर नामकी है बहुरि मैं भ्रमण करतो वराड देसेमे

अमरावती सहर है वहा गया थो तहा चातुर्मास मे रह्यो थो तहाँ श्रावगमडलीकू उपदेस राग द्वेष का देतो थो अमुका भला है अमुका पोटा (खोटा) है इत्यादिक उपदेस समयकू जलालसगी मैंकू कही के आप किसकूं भला वुरा कहते हो जाणते हो मानते हो सर्व वक्त आपणा अपणा स्वभावकूं लीया हुवा स्वभावमैं जैसी है तैसी ही है प्रथम आप अपेणकूं समजो इस प्रमाण कू जलालसगी मैं कू कही तो वी मेरी मेरे भीतर स्वानुभव अतरात्मद्रष्टी न भई, कारण पायकरि कै सहर करजाके पाटधीश श्रीमत् देवेंद्रकीर्तिजी भट्टारकमहाराज सै मै मिल्यो, महाराजका सरीरकी वयवद्धि ६५ पच्याणव वर्षकी स्वामी मंसै कही तुमकू सिद्ध पूजापाठ आता है के नही आता है तव मे कही मेंकू आता है तव स्वामी बोले के जयमाला को अनको श्लोक पढो तब मे अत्तको श्लोक—

विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशव्द विसोक ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥

तब श्रीगुरु मैंकू कही के स्त्रयसिद्ध परमात्मातो कालो पीलो लाल हया सुपेदादिक वर्ण रहित है सुगध दुर्गंध रहित है क्रोध मान माया लोभ रहित है पच प्रकार सरीर रहित है तथा छकाया रहित है शब्द द्वारा भाष होता है सर्व आकुलता रहित है सर्व ठिकाणैं विशुद्ध प्रसिद्ध प्रगट हे देखो देखो तुमकू वो परमात्मा दीखता है के नही दीखता है तब मैं स्वामीका श्रीमुखसै श्रवण करकै चकितचि हो गयो स्वामी तो मैंके नगीचसै उठकरि भीतर जैन मदिर मे चले गये अर मे मेरा मन मे वहुत विचार कीया वो प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा मैंकू कोई ठिकाणे कोई द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव मै दीख्या नही मै विचार कीया के कालो पीलो लाल हरयो धोळो काया माया छायोसे अलग है तो वी प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है अर मै तो जिधर देखता हू उधर वर्ण रग कायादिक ही दीखता है वो प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है तो मै कू क्यू नही दीखता—इत्यादि विचार वहुत कीया बाद पश्चात् स्वामीसैं मैंकू ही हे कृपानाथ वो प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है सो तो मै कू दीखता है नही

तव स्वामी बोले ज्यो अधा होता है उसकू नही दीखता है मै फेर स्वामीसै प्रश्न नही कियो चुपचाप रह्यो परन्तु जैसे स्वान के मस्तगमै कीट पड जावै तैसे मै का मस्तगमे भ्राति सी पड गई उस भ्राति चुकत मै ज्येष्ठ महीनोमे समेद सिखर गयो तहा वी पहाड के उपर नीचै बनमै उस प्रसिद्ध सिद्ध परमात्माकू देखणे लग्यो तीन दिवस पर्यंत देख्यो परन्तु वहाँ वी वो प्रसिद्ध सिद्ध दीख्यो नही बहुरि पीछो पलट करिकै १० (दस) महीना पश्चात् देवेद्रकीर्ति स्वामी के समीप आयो, स्वामी से विनीती करी हे प्रभु वो प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा प्रगट है तो मै कू दीखतो नही आप कृपा करिकै दीखावो तव स्वामी वोले सर्वकू देखता है ताकू देख तू ही है ऐसे स्वामी मैका कर्ण मे कही तत् समय मेरी मेरे भीतर अनरात्म अतरद्रष्टी हो गई सो ही मै इस ग्रथ मे प्रगटपणे कही है जैसे जैसो पीवै पाणी तैसे तैसो वोले वाणी इसी दृष्टान्त द्वारा निश्चय समजणा, मेरा अत करणमै साक्षात् परमात्मा जागती ज्योति अचल तिष्ठ गई उसी प्रमाणकी मै वाणी इस पुस्तकमै लिखी है अब कोई मुमुक्षकू जन्म मरण के दूपसै छूटणे की इच्छा होय तथा जागती ज्योति परब्रह्म परमात्माको साक्षात् स्वानुभव लेना होय सो मुमुक्ष विपय मोटा पाप अपराध सप्त विषयन छोडकरिकै इस पुस्तकके येकात मै वैठकरि कै मनको मनमै मनन करो वाचो पढो "परमात्मा प्रकासादिक" ग्रन्थसैभी इसमै स्वानुभव होणेकी सुगमता है खोटी करणी खोटा कर्म तो छोडणाजोग ही है परन्तु इस ग्रन्थकू पटणे-वाला मुमुक्षकू कहता हू के जैसे तुम खोट करणी खोटा कर्म छोट दिया तैसे सुभ भला कर्म भली करणी भी छोडकरिकै इस पुस्तककू वाचणा येकातमै येह पुस्तक अपणो आपही के सवोधनै को हैं परकू सवोधनको मुख्य नही कदाचित् कोई प्रकार है समज लेणा समजाणा विना समजसै नही वोलणा, नही कहणा, जरूर इस ग्रन्थके पढणेसै मनन करेणसै मुमुक्षुकू स्वानुभव अतरदृष्टी होवैगी ससार जगतमै जिसकू स्वात्मानुभव आत्मज्ञान नही वा ब्रह्मज्ञान नही उसका व्रत

जप तप नेम तीर्थयात्रा दान पूजादिक है सो ब्रह्मज्ञानाग्नीनीविना सर्व कच्चा है जैसे रसोईमे आटा दाल चनादिक चावल बीजनादिक है परन्तु अग्नीविना सर्व कच्चा है तैसे हो आत्मज्ञानविना मुनीपण क्षुल्लकपण आदि सर्व कच्चा हे वास्तै हे मुमुक्षुजन वो स्वात्मानुभवकी प्राप्त को प्राप्ती के अर्थ इन ग्रन्थकू एकानमें अपणे मनको मनमै मनन करणा-पढणा वाचना।"

— ० —

प्र०—पंचम काल में जन्मे हुये जीव को क्षायिक सम्यक्त्व तो होता ही नहीं है, किन्तु प्रथम और औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त का अभाव करके क्षयोपशमिक सम्यक्त्व होने के विषय में आचार्यों न क्या कहा है ?

उत्तर-(१) सममसार कलश चार मे आया है कि "वान्त मोहा" अर्थात् मिथ्यात्व का वमन हो जाता है, वह अब पून नही आयेगा।

(२) समयसार गाथा ३८ की टीका के अन्त मे आता है कि "निज रस से ही मोह को उखाडकर फिर अकुर न उपजे ऐसा नाश करके महान ज्ञान प्रकाश मुझे प्रगट हुआ है।

(३) प्रवचन सार गाथा ९२ की टीका मे भी कहा है वह बहिर्मोहद्रष्टि तो आगम कौशल्य तथा आत्मज्ञान से नष्ट हो जाने से अब मुझे पुन उत्पन्न नही होगी।

(४) समयसार कलश ५५ मे भी आया है कि "मै पर को करता हूँ-ऐसा पर द्रव्य के कर्तृत्व का महा अहकार रुप अज्ञान अधकार जो अत्यन्त दुर्निवार है वह अनादि ससार से चला आ रहा है—आचार्य कहते है अहो! परमार्थनय का ग्रहण से यदि एक बार भी नाश को प्राप्त हो तो ज्ञानघन आत्मा को पुन बन्धन कैसे हो सकता है?

(५) प्रवचनसार गाथा ८० के प्रवचन मे पूज्य श्री कानजी स्वामी कहते है कि–"वर्तमान मे इस क्षेत्र मे क्षायिक सम्यक्त्व नही है तथापि 'मोह क्षय को प्राप्त होता है' यह कहने मे अन्तरग का इतना बल है कि जिसने इस बात का निर्णय किया उसे वर्तमान मे भले ही क्षायिक सम्यक्त्व न हो तथापि उसका सम्यक्त्व इतना प्रबल और अप्रतिहत है कि उसमे क्षायिक दशा प्राप्त होने तक बीच मे कोई भग नही पड सकता।

[सम्यग्दर्शन प्रथम भाग पृष्ठ ५५]

— ० —

५४ ध्रुव का ध्यान

करलो आतम ज्ञान परमातम बन जइयो।
करलो भेद विज्ञान ज्ञानी बन जइयो ॥ टेक ॥

जग झूठा और रिस्ते झूठे रिस्ते झूठे नाते झूठे ॥
साचो है आतमराम परमातम बन जइयो ॥ १ ॥

कुन्दकुन्द आचार्य देव ने आतम तत्व बताया है ॥
शुद्धातम को जान परमातम बन जइयो ॥ २ ॥

देह भिन्न है आतम भिन्न है ज्ञान भिन्न है राग भिन्न है ॥
ज्ञायक को पहचान परमातम बन जइयो ॥ ३ ॥

कुन्दकुन्द के प्रताप से ध्रुव की धूम मची है रे।
धरलो ध्रुव का ध्यान परमातम बन जइयो ॥ ४ ॥

५५ वस्तु स्वरुप

धन्य धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग मे कहानी ॥
चिदानन्द की राजधानी, अमर तेरी जग मे कहानी ॥ टेक ॥

उत्पाद-व्यय अरू ध्रौव्य स्वरुप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप ॥
स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग मे कहानी ॥ १ ॥

नित्य-अनित्य अरू एक-अनेक, वस्तु कथंचित भेद-अभेद ॥
अनेकान्त रूपा बखानी, अमर तेरी जग मे कहानी ॥ २ ॥

भाव शुभाशुभ बन्ध स्वरुप, शुद्ध चिदानन्दमय मुक्तिरुप ॥
मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग मे कहानी ॥ ३ ॥

चिदानन्द चैतन्य आनन्द धाम, ज्ञान स्वभावी निजातम राम ॥
स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग मे कहानी ॥ ४ ॥

५६. ध्रुव-ध्रुव

ये शाश्वत सुख का प्याला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ टेक ॥
मै अखण्ड चित् पिण्ड शुद्ध हूँ, गुण अनन्त घन पिण्ड बुद्ध हूँ ॥
ध्रुव की फेरो माला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ १ ॥

मगलमय है मगलकारी, सत् चित् आनन्द का धारी ॥
ध्रुव का ही उजियारा, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ २ ॥

ध्रुव का रस तो ज्ञानी पीवे, जन्म-मरण के दु ख मिटावे ॥
ध्रुव का धाम निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ ३ ॥

ध्रुव की धूनि मुनि रमावे, ध्रुव के आनन्द मे रम जावे ॥
ध्रुव का स्वाद निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ ४ ॥

ध्रुव का शरणा जो कोई आवे, मोह शत्रु को मार भगावे ॥
ध्रुव का पन्थ निराला, कोई पियेगा अनुभव वाला ॥ ५ ॥

ध्रुव के रस मे हम रम जावे, अपूर्व अवसर कब यह पावे ॥
ध्रुव का जो मतवाला, वो पियेगा अनुभव वाला ॥ ६ ॥

५७. चेत रे चेतन

ओ प्यारे परदेशी पन्छी जिस दिन तू उड जायेगा ।
तेरा प्यारा पिजरा पीछे यहाँ जलाया जायेगा ॥ टेक ॥

जिस पिजरे को सदा सभी ने पाला-पोसा प्यार से ।
खूब खिलाया खूब पिलाया, हरदम रखा सभार के ॥
तेरे होते—होते नीचे इसे सुलाया जायेगा ।
ओ प्यारे परदेशी पछी, जिस दिन तू उड जायेगा ॥ १ ॥

देखे बिना तरसती आँखे, रहना चाहती साथ मे।
तेरे बिना न खाती खाना, तू ही था हर बात मे॥
तुझको पूछे विना ही सारा काम चलाया जायेगा।
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड जायेगा॥ २॥

रोयेगे थोडे दिन तक, ये भूलेगे फिर बाद मे।
ज्यादा से ज्यादा इतना कुछ करवा देगे याद मे॥
हलवा पुडी खाकर तेरा श्राद्ध मनाया जायेगा।
ओ प्यारे परदेशी पन्छी जिस दिन तू उड जायेगा॥ ३॥

तुझे पता है क्या कुछ होता फिर क्यो नही सोचता।
मूरख वह दिन भी आवेगा, पडा रहेगा सोचता॥
जन्म अमोलक खोकर हीरा पीछे तू पछतायेगा।
ओ प्यारे परदेशी पन्छी, जिस दिन तू उड जायेगा॥ ४॥

अलिंगन ग्रहण के बीस बोल

(प्रवचन सार गाथा १७२)

दोहा

बदन श्री महावीर को, साधा आत्म स्वरुप।
इन्द्रियातीत अखण्ड अरु, अद्भूत आनन्दरुप॥
नमस्कार जिन वचन को, दर्शाया आत्म स्वरुप।
शुद्धोपयोग प्रकाश से, जाना अन्तर रुप॥
परमरुप निज आत्म का, देहादिक से पार।
चेतन चिह्न ग्राह्य जो, पर लिगो से पार॥

हरिगीत

अद्भूत आत्म स्वरुप को, प्रभु कुन्दकुन्द प्रकाशता।
अमृत स्वामी हृदय खोलकर, परमामृत बरसावता॥

स्वानुभूति मे आता रे वह, आतम आनन्द मय अहो।
मतिजन सुनकर सार उसका, शुद्ध समकित कोलहो॥

है चेतना गुण, रुप गध, रस, शब्द व्यक्ति न जीव को।
अरु लिंग ग्रहण नहीं तथा, सस्थान भी उसको है नही॥

नही रुप कोई जीव मे, इससे न दिखता नेत्र से।
रस भी नही है जीव को, अतः न दीखे जीभ से॥
जीव शब्दवत नही अरे, इससे न दीखे कान से।
नही स्पर्श जीव मे कोई इससे, नहि ग्रहण है हस्त से॥

रे गध जीव मे है नही, इससे न आवे नाक मे।
है इन्द्रियो से पार वह, आवे न इन्द्रिय ज्ञान मे॥

असख्य प्रदेशी आत्म है, सस्थान को निश्चित नही।
निज चेतना से शोभता बस, ये ही लक्षण है सही॥
निज चेनना का अन्य किसी के साथ सम्बन्ध है नही।
वस द्रव्य-गुण पर्यय स्वरुपे, सोभता निज मे रही॥

अब वीस बोलो को सुनो, अलिग ग्रहण आतमा।
इन जानने का फल ये होगा, स्वानुभूति निजात्म मे॥

ज्ञायक आतमराम है वह, नही जानता इन्द्रियो से॥
वह तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, कैसे जाने इन्द्रियो से॥ १॥

इन्द्रिय वश जो ज्ञान है, वह आत्म को नही कभी ग्रहे॥
है इन्द्रियो से पार जीव, वह अक्ष प्रतक्ष कैसे बने॥ २॥
इन्द्रियों के चिह्न से, अनुमान हो नही आत्म का॥
अनुमान इन्द्रिय द्वार से तो, मात्र रुपी पदार्थ का॥ ३॥

सवेद्यरुप निजातमा, अनुमान से भी पार है॥
अनुमान मात्र से नही कोई, जान सकता जीव को॥ ४॥

प्रत्यक्ष ग्राही आतमा, पर को भले वह जानता॥
पर मात्र अनुमान से नही, प्रत्यक्ष पूर्वक जानता॥ ५॥

प्रत्यक्ष ज्ञाता जीव है, वहा लिग का क्या काम है ॥
नही लिग द्वारा जानता, प्रत्यक्ष ज्ञायक जीव है ॥ ६ ॥

उपयोग स्वाधीन आत्म का स्वयमेव जाने ज्ञेय को ॥
आलम्बन नही अन्य का, इससे ग्रहण नही लिग का ॥ ७ ॥

उपयोग ही निज लिग है, स्वय ही लिग स्वरुप हे ॥
लाता नही वह वाह्य से, अत न लिग ग्रहण है ॥ ८ ॥

उपयोग लक्षण आत्म का, नही कोई उसको हर सके ॥
अहार्य ज्ञानी आतमा, बस ये ही सत्य स्वरुप है ॥ ९ ॥

ज्यो सूर्य को न ग्रहण, त्यो न ग्रहण जानो जीव को ॥
उपयोग मे न मलिनता, शुद्धोपयोगी जीव है ॥ १० ॥

जो लिगरुप उपयोग है, वह कर्म को ग्रहता नही ॥
इस रीत कर्म अबद्ध जीव को, जानना इस सूत्र से ॥ ११ ॥

रे इन्द्रियो से विषय भोग भी, जीव को होते नही ॥
इससे न भोक्ता भोग का, यह जानना निश्चय सही ॥ १२ ॥

मन इन्द्रिय रुप को लिग से, नही जीवन है इस जीव का ।
इससे न शुक्रार्तव ग्रहे, ऐसा अग्राही जीव है ॥ १३ ॥

किसी शरीर के लिग को रे, आतम कभी ग्रहता नही ॥
लौकिक साधन रुप नहीं, ऐसा अग्राही जीव है ॥ १४ ॥

लिग रुप किनी साधनो से, न लोक व्यापी जीव है ॥
नही सर्वव्यापी जीव है, यह सत्य साबित होत है ॥ १५ ॥

नही ग्रहण कोई वेद का, स्त्री पुरुषादि भाव का ॥
इससे न कोई लिंग, जिसको, अलिग ग्राही जीव है ॥ १६ ॥

लिग कहते धर्म चिह्नो, बाह्य जो साधुपना ॥
नही ग्रहण उनका जीव मे, वे चेतना से बाह्य है ॥ १७ ॥

'ये गुण' ऐसे बोध से नही, ग्रहण होता जीव का ॥
गुण भेद से लक्षित नही, बस शुद्ध द्रव्य ही जीव है ॥ १८ ॥

पर्याय के भी बोध से नही, ग्रहण होता जीव का ॥
पयर्य भेद से लक्षित नही, वस शुद्धद्रव्य ही जीव है ॥ १९ ॥
'यह द्रव्य' ऐसे लक्षण से नही ग्रहण सच्चे जीव का ॥
'पर्याय शुद्ध है जीव स्वय, भेद हीन यह जानना ॥ २० ॥
है चेतना अद्भूत अहो ! निज स्वरुप मे व्याप रही ।
इन्द्रियो से पार हो निज स्वरुप को देख रही ॥
प्रभु कुन्दकुन्द अमृत स्वामी के, चरणो मे नमन कर रही ।
आनन्द करती मस्त हो, वह मोक्ष को साध रही ॥

[आत्म धर्म गुजराती अक ३८२]

— o —

मृत्यु-महोत्सव

वीतराग तुम दो मुझे, मृत्यु मार्ग मे शुद्ध—
औपधि वोधि समाधि को, वनू न जव तक मुक्त ॥१॥
मल कृमि-कुल से पूर्णक्षत, अस्थि पिजर देह ।
तू सुज्ञान ! मूर्छित वृथा, नाश-समय तज स्नेह ॥२॥
मृत्यु उछाह प्रसग पर चतुर डरे किस हेत ।
है स्वरुप स्थिर जा रहा तन पलटन के हेत ॥३॥
पूज्य परम गुरु कह गए, मृत्यु समय भय त्याग ।
मिले सहज इसके सुखद, सुकृत कर्म फल चाख ॥४॥
सहे ताप दुख गर्भ मे, हो तन पिजर वन्द ।
लख महत्व हितु मृत्यु का, हरे कर्म के फन्द ॥५॥
करे दूर आत्मज्ञ ही, सर्व देह कृत दुख ।
मृत्यु सुमित्र प्रसाद से, पावे सम्पति सुख ॥६॥
मृत्यु महौषधि प्राप्त कर, निज हित दे जो टाल ।
रचे रहे भव कीच मे, नहि कर सके सभाल ॥७॥

सर्व जीर्णता मिट, मिले, तन नूतन बन शुद्ध ।
साता कारण मृत्यु है, हर्ष समय क्यो क्रुद्ध ? ॥८॥
सुख–दु ख जाने जिय स्वय, सदा देह गत आप ।
जाय स्वय परलोक मे, किसे मृत्यु भय ताप ॥६॥
जिसका चित ससार मे, उसे मृत्यु भय जान ।
ज्ञान–विराग जहा बसे, मरण हर्ष का स्थान ॥१०॥
निज सुकृत फल भोगने, तन पति पर गति जाय ।
भौतिक तन किम रोकने, का प्रपँच कर पाय ॥११॥
मृत्युकाल मे व्याधि वश, हो दु ख उदयाधीन ।
देह मोह यदि नष्ट हो, दे शिव सुख स्वाधीन ॥१२॥
मृत्यु ताप भव-तप्त को, दीखे अमृत-पान ।
पका कुंभ जल भर हरे, तृषा, दाह दे प्राण ॥१३॥
व्रत-पालन के कष्ट बहु, सहकर हो फल प्राप्त ।
वह फल सब सुख साध्य यदि, मृत्यु समय समाधि ॥१४॥
हो नारक तिर्यच यदि, आर्त्त, मरण बिन शात ।
धर्म ध्यान अनशन सहित, दे सुरलोक नितात ॥१५॥
व्रत-पालन तप आचरण, शास्त्र पठन नित होय ।
सफल ज्ञान यदि मृत्यु भी सावधान रह होय ॥१६॥
हो सेवन परिचय बहुत, अरति अनादर पाय ।
क्यो डर ! जर्जर घट विघट, झट नूतन बनजाय ॥१७॥
रह सचेत यदि मरण, फल, निरत स्वर्ग के भोग ।
फिर विराग बन वह स्वय, तन तज ले शिव लोक ॥१८॥
हो स्थिर विमल समाधि मे, मथो इष्ट उपदेश ।
मृत्यु महोत्सव तब बने यही वीर सदेश ॥
भूलें-शोधन शिव-पथ पाने हेतु, हुआ है यह अनुवाद ।
शब्द भाव के भान बिना, बस पूज्यपाद के पकडे पाद ॥

— ० —

मिथ्यात्व को अभाव करने का अमूल्य उपाय

उठना-बैठने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही
खाना-पीने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
नहाने-धोने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
मजन-कुल्ले का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
बोलने-चुप रहने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही
कर्म उदय-क्षय का-मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही
क्षयोपशम-उपशम का— ,, ,, ,, ,, ,, ,,
कार्य करने-कराने का— ,, ,, ,, ,, ,, ,,
मन-वचन-वाणी का— ,, ,, ,, ,, ,, ,,
हलका-भारी आदि का— ,, ,, ,, ,, ,, ,,
खट्टे-मीठे आदि का-मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बध नही
सुगंध-दुर्गन्ध का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बध नही,
काला-पीला आदि का— ,, ,, ,, ,, ,, ,,
चान्दी-सोने का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
हीरे-जवाहरात का—मुझ ज्ञानदर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बध नही,
मकान-दुकान का-मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही
देव-गुरू का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
पुत्र-पुत्रियो का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही
माँ-बाप का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
पति-पत्नी का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
मोह-रागद्वेप का-मुझ ज्ञान दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही
द्रव्य-नोकर्म का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही
भाव कर्मो का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
हार्ट अटैक का—मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
ब्लैड कैन्सर का-मुझ ज्ञान-दर्शन उपयोगमयी जीव तत्व से सर्वथा सम्बन्ध नही,
रुपया होने न होने का— ,, ,, ,, ,, ,, ,,

आठवां अधिकार – बच्चो के लिए
(बाल पोथी के माध्यम से)

प्र० १–मै कौन हूं ?
उत्तर–मै जीव हूँ।
प्र० २–मुझमे क्या है ?
उत्तर–मुझमे ज्ञान है।
प्र० ३–हम किसकी सन्तान हैं ?
उत्तर–हम वीर प्रभु की सतान है।
प्र० ४–तुम्हे क्या पढना अच्छा लगता है ?
उत्तर–हमे जिन सिद्धात पढना अच्छा लगता है।
प्र० ५–तुम बड़े होकर क्या करोगे ?
उत्तर–हम बडे होकर वीर विद्वान बनेगे।
प्र० ६–तुम जीव हो या शरीर ?
उत्तर–मै जीव हूँ
प्र० ७–ज्ञान जीव मे होता है या शरीर में ?
उत्तर–ज्ञान जीव मे होता है।
प्र० ८–जीव और शरीर मे क्या अन्तर है ?
उत्तर–(१) जीव, जीव है, शरीर अजीव है।
(२) जीव मे ज्ञान है, शरीर मे ज्ञान नही है।
(३) जीव अपने ज्ञान से सबको जानता है, शरीर किसी को नही जानता है।
प्र० ९–जीव और शरीर एक है या भिन्न ?
उत्तर–जीव और शरीर भिन्न हैं।
प्र० १०–तुम किससे जानते हो ?
उत्तर–मैं ज्ञान से जानता हूँ।
प्र० ११–इस आँख के बिना देखा जा सकता है ?
उत्तर–हाँ, इस आँख के बिना देखा जा सकता है।

प्र० १२–शरीर किसको जानता है ?

उत्तर–शरीर किसी को नही जानता है।

प्र० १३–तुम कौनसा द्रव्य हो जीव या अजीव ?

उत्तर–मैं जीव द्रव्य हूँ

प्र० १४–तुममे कौन सा गुण है ?

उत्तर–मुझमे ज्ञान गुण है।

प्र० १५–जानना किसकी पर्याय (कार्य) है ?

उत्तर–जानना मेरी पर्याय (कार्य) है।

प्र० १६–जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य मे क्या अन्तर है ?

उत्तर–(१) जीव द्रव्य मे ज्ञान गुण है अजीव द्रव्य मे ज्ञान गुण नही है।

(२) जीव द्रव्य जानता है अजीव द्रव्य जानता नही है।

प्र० १७–शरीर कौन है ?

उत्तर–शरीर अजीव द्रव्य है।

प्र० १८ तुम कौन हो ?

उत्तर–मैं जीव द्रव्य हूँ।

प्र० १९–जीव शरीर के काम करता है ?

उत्तर–जीव शरीर के काम नही करता है।

प्र० २०–जीव शरीर को जानता है ?

उत्तर–हाँ जीव शरीर को जानता है।

प्र० २१–शरीर में ज्ञान होता है ?

उत्तर–नही, शरीर मे ज्ञान नही होता है।

प्र० २२–सुखी होने के लिए तुम क्या करोगे ?

उत्तर–सुखी होने के लिए हम अपने को पहिचानेंगे।

प्र० २३–अपने को पहिचानने से क्या होगा ?

उत्तर–धर्म (सुख) होगा है।

प्र० २४–आत्मा को पहिचाने बिना सुख होता है या नही ?

उत्तर–आत्मा को पहिचाने बिना सुख नही होता है।

प्र० २५–पैसे से सुख मिलता है या नही ?

उत्तर–पैसे से सुख नही मिलता है।

प्र० २६–अपने को न पहिचाने तो जीव को क्या हो ?

उत्तर–जीव को दु ख हो।

प्र० २७–धर्म (सुख) जीव मे होता है या शरीर मे ?

उत्त ‘–धर्म जीव मे होता है।

प्र० २८–धर्म द्रव्य है या पर्याय ?

उत्तर–धर्म पर्याय (कार्य) है।

प्र० २९–धर्म किसकी पर्याय है ?

उत्तर–धम जीव द्रव्य की पर्याय है।

प्र० ३०–तुम किस प्रकार धर्म करोगे ?

उत्तर–ज्ञान से धर्म होता है अत मै ज्ञान से धर्म करूँगा।

प्र० ३१–धर्म किसमे होता है ?

उत्तर–जीव मे धर्म होता है।

प्र० ३२–धर्म किससे होता है ?

उत्तर–धर्म ज्ञान से होता है।

प्र० ३३–धर्म किसे कहते है ?

उत्तर–आत्मा की समझ को धर्म कहते है।

प्र० ३४–भगवान होना हो तो क्या करना ?

उत्तर–भगवान होना हो तो आत्मा (अपने) को समझना।

प्र० ३५—भगवान को क्या होता है और क्या नहीं होता ?

उत्तर—भगवान को पूरा ज्ञान होता है और थोडा भी राग नही होता ।

प्र० ३६—भगवान कुछ खाते हैं ?

उत्तर—भगवान कुछ नहीं खाते।

प्र० ३७—अरिहंत और सिद्ध में क्या अन्तर है ?

उत्तर—अरिहत के शरीर होता है सिद्ध के शरीर नही होता।

प्र० ३८—भगवान महावीर इस समय सिद्ध है या अरहंत ?

उत्तर—भगवान महावीर इस समय सिद्ध हैं।

प्र० ३९—इस समय अरहत हो ऐसे भगवान का क्या नाम है ?

उत्तर—सीमन्धर भगवान इस समय अर्हंत है।

प्र० ४०—नमस्कार मंत्र शुद्ध तथा सुन्दर अक्षरो मे लिखो ?

उत्तर—णमो अरिहताण,
णमो सिद्धाण, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व साहूण॥

प्र० ४१—जगल मे कौन ध्यान मे बैठे थे ?

उत्तर—जगल मे एक मुनि ध्यान मे बैठे थे।

प्र० ४२—अपने गुरु कौन हैं ?

उत्तर—मुनि हमारे गुरू है।

प्र० ४३ गुरु के पाठ मे एक आचार्य का नाम लिखा है वे कौन हैं ?

उत्तर—आचार्य कुन्दकुन्द जी

प्र० ४४—एक महान शास्त्र का नाम बताओ ?

उत्तर—समयसार एक महान शास्त्र है।

प्र० ४५—शास्त्र हमें क्या समझाते है ?

उत्तर—शास्त्र आत्मा को समझाते है।

प्र० ४६—ज्ञान शास्त्र मे होता है या जीव में ?

उत्तर—जीव मे ज्ञान होता है शास्त्र मे नही।

प्र० ४७—तुमने कभी समयसार शास्त्र को हाथ मे लेकर देखा है ?

उत्तर—हाँ, देखा है।

प्र० ४८—शास्त्र किसे कहते हैं ? और कुशास्त्र किसे कहते है ?

उत्तर—जिसकी रचना ज्ञानी करते है और जिससे आत्मा की पहिचान होती है उसे शास्त्र कहते है जिसे अज्ञानी बनाये वे कुशास्त्र है।

प्र० ४९—समयसार की रचना किसने की ?

उत्तर—अचार्य कुन्द कुन्द जी ने।

प्र० ५०—अपनी धार्मिक माता कौन है ?

उत्तर—अपनी धार्मिक माता जिनवाणी है।

प्र० ५१—आत्मा की सच्ची श्रद्धा को क्या कहते है ?

उत्तर—आत्मा की सच्ची श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहते है।

प्र० ५२—सम्यग्दर्शन हो तो उसे क्या मिलता है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन हो तो उसे अवश्य मोक्ष मिलता है।

प्र० ५३—धर्म का मूल क्या है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है।

प्र० ५४—जीव संसार मे क्यो भटक रहा है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन के बिना जीव ससार मे भटक रहा है।

प्र० ५५—सबसे पहला धर्म कौनसा है ?

उत्तर—सच्चा ज्ञान ही सबसे पहला धर्म है।

प्र० ५६—सबसे बड़ा पाप क्या है ?

उत्तर—अज्ञान ही सबसे बडा पाप है।

प्र० ५७—सम्यग्ज्ञान किसे कहते है ?

उत्तर—सच्ची समझ को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

प्र० ५८—सम्यग्ज्ञान से अपना आत्मा कैसे समझ मे आता है ?

उत्तर—आत्मा ज्ञान वाला है, आत्मा शरीर से अलग है, जीव को राग होता है वह उसका गुण नही है। सम्यग्ज्ञान से अपना आत्मा ही है ऐसा समझ मे आता है।

प्र० ५९—जिसे सच्चा चारित्र हो उसे क्या कहते हैं ?

उत्तर—जिसे सच्चा चारित्र हो उसे मुनि कहते है।

प्र० ६०— कौन सी तीन वस्तुओ की एकता करने से मोक्षमार्ग होता है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यग्चारित्र की एकता करने से मोक्षमार्ग होता है।

प्र० ६१—आत्मा को पहिचाने बिना चारित्र का पालन करे तो मोक्ष होता है कि नही ?

उत्तर—आत्मा को पहिचाने बिना चारित्र होता ही नही।

प्र० ६२—सच्चा चारित्र और मुनि दशा किसे हो सकती है ?

उत्तर—जो आत्मा को पहिचाने उसके ही सच्चा चारित्र और मुनि दशा हो सकती है।

प्र० ६३—जैन किसे कहते है ?

उत्तर—आत्मा को पहिचान कर जो अज्ञान को जीते उसे जैन कहते है या

आत्मा के वीतराग भाव से जो राग–द्वेप को जीते उसे जैन कहते है।

प्र० ६४–जिसने राग-द्वेष को दूर कर दिया उसे क्या कहते हैं ?

उत्तर–जिसने राग द्वेप को दूर कर दिया उसे जिनदेव कहते है।

प्र० ६५—जिनदेव कैसे हैं ?

उत्तर–जिनदेव ही सच्चे भगवान है।

प्र० ६६—एक था राजा वह किसलिए रो पड़ा ?

उत्तर–मुनिराज ने कहा– 'हे राजन ! शिकार करने से पाप होता है, पाप से जीव नरक मे जाता है वहाँ वह बहुत दुःखी होता है।' यह सुन कर राजा रो पडा।

प्र० ६७—सुखी होने के लिए मुनि ने राजा को क्या उपाय बतलाया ?

उत्तर—मुनिराज ने कहा– 'हे राजन सुख तेरे आत्मा मे ही है। तू शिकार करना छोड दे और आत्मा की पहिचान कर, इससे तू सुखी होगा।

प्र० ६८—जीव दो प्रकार के है—वे कौन-कौन से ?

उत्तर—जीव दो प्रकार के है एक मुक्त दूसरे ससारी।

प्र० ६९—स्वर्ग के जीव ससारी है या मुक्त ?

उत्तर–स्वर्ग के जीव ससारी है।

प्र० ७०—जीव कब तक संसार मे भटकता है ?

उत्तर–आत्मा को न पहचाने तब तक जीव ससार मे भटकता है।

प्र० ७१—मुक्त होने के लिए जीव को क्या करना चाहिए ?

उत्तर–मुक्त होने के लिएजीव को आत्मा की पहिचान करना चाहिए।

प्र० ७२—कर्म जीव है य अजीव ?

उत्तर–कर्म अजीव है।

प्र० ७३—जीव मे कर्म है ?

उत्तर–जीव मे कर्म नही है।

प्र० ७४—जीव किससे दु खी होता है-अज्ञान से या कर्म से ?

उत्तर–जीव अज्ञान से दु खी होता है।

प्र० ७५—महावीर ने क्या किया कि जिससे वे भगवान हुए ?

उत्तर–उन्होने आत्मा की पहिचान की और राग-द्वेष को दूर किया। इसी से वे भगवान हुए।

प्र० ७६—महावीर भगवान का जन्म दिन कौन सा है ? और उनकी माता जी का नाम क्या ?

उत्तर–महावीर भगवान का जन्म दिन चैत्र सुदी १३ (तेरस) है। उनकी माता जी का नाम त्रिशला देवी था।

प्र० ७७—पूर्वभव का ज्ञान होने पर भगवान महावीर ने क्या किया ?

उत्तर–पूर्व भव का ज्ञान होते ही उनको बहुत वैराग्य जागृत हुआ, जिससे वे दीक्षा लेकर मुनि हो गये।

प्र० ७८—मुनि होने के बाद महावीर क्या करते थे ?

उत्तर–मुनि होने के बाद महावीर आत्मा का ध्यान करते थे।

प्र० ७९—भगवान महावीर का उपदेश सुनने के लिए कौन-कौन आया ?

उत्तर–भगवान का उपदेश सुनने के लिए जीवो के झुण्ड के झुण्ड आये। स्वर्ग के देव आये और बडे-बडे राजा आये। आठ वर्ष के बालक भी आये। जगल के सिह आये, चीते आये, हाथी आये, बदर आये, बडे-बडे सर्प आये, और छोटे-छोटे मेढक भी आये और उन्होने आत्मा को समझा।

प्र० ८०—महावीर भगवान कहाँ से मोक्ष गये ?

उत्तर–महावीर भगवान पावापुरी से मोक्ष गये।

प्र० ८१—इस समय महावीर भगवान अरहंत है या सिद्ध ?

उत्तर-इस समय महावीर भगवान सिद्ध है।

प्र० ८२—महावीर भगवान इस समय कहाँ रहते होगे ?

उत्तर-इस समय महावीर भगवान मोक्ष मे रहते है।

प्र० ८३—सवेरे जल्दी उठकर तुम क्या करोगे ?

उत्तर-सवेरे जल्दी उठकर हम आत्मा का विचार करेगे।

प्र० ८४—अपने को प्रतिदिन क्या-क्या करना चाहिए ?

उत्तर-आत्मा का विचार करना, प्रभु का स्मरण करना और नमस्कार मत्र बोलना, फिर स्वच्छ वस्त्र पहिन कर जिन मदिर मे जाना। जिन मदिर जाकर भगवान के दर्शन करना। इसके बाद शास्त्र जी को वदन करना और उनका पठन करना, फिर गुरू जी के दर्शन करना उनका उपदेश सुनना और सुनकर विचार करना। इतना प्रतिदिन अपने को करना चाहिए।

प्र० ८५-एक माता अपने बालक को अच्छी शिक्षायें देती है, उसमे सबसे पहिले क्या कहती है ?

उत्तर-आत्मदेव को कभी न भूलना।

प्र० ८६-क्या अपने को रात्रि भोजन करना चाहिए ?

उत्तर-अपने को रात्रि भोजन नही करना चाहिए।

प्र० ८७-तुम प्रतिदिन क्या करोगे ?

उत्तर-आत्मा का विचार, प्रभु का स्मरण, नमोकार मत्र का बोलना, स्वच्छ वस्त्र पहिन कर जिन मदिर जाना, जिन मदिर जाकर भगवान के दर्शन करना, शास्त्र जी को वदन करना, उनका पठन करना, गुरु के दर्शन करना, उनका उपदेश सुनना, सुनकर विचार करना और शात व सतोषी रहना, इतना कार्य हम प्रतिदिन करेगे।

प्र० ८८–तुम कभी क्या नहीं करोगे ?

उत्तर–(१) हम आतमदेव, सिद्ध प्रभु और गुरु की स्तुति करना कभी नही भूलेगे ।

(२) शास्त्र जहाँ तहाँ कभी नही रखेगे ।

(३) हिसा, झूठ, चोरी और रात्रि भोजन कभी नही करेगे ।

(४) कभी धर्म और दया नही छोडेगे ।

(५) कभी क्रोध, कपट, हट, लालच, भय, प्रमाद और निंदा नही करेगे ।

(६) कभी जुआ नही खेलेगे ।

(७) कभी दोप नही छिपावेगे ।

प्र० ८९–आत्म भावना भाने से क्या मिलता है ?

उत्तर–आतम भावना के भाने से आतम स्वरूप की प्राप्ति होती है ।

प्र० ९०–'सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी अविनाशी' कौन है ?

उत्तर–सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी अविनाशी मै हूँ ।

प्र० ९१–हमारे देव कौन है ?

उत्तर–हमारे देव श्री अरहत भगवान है ।

प्र० ९२–देह और जीव मे अमर कौन है ?

उत्तर–जीव अमर है ।

प्र० ९३–"वंदन हमारा" में तुम किस-किस को वंदन करते हो ?

उत्तर–"वदन हमारा" मे प्रभु जी व गुरु जी अर्थात् अरहत, सिद्ध और सब मुनिराजो को तथा धर्म शास्त्र, सब ज्ञानी, चैतन्य देव को तथा आतम स्वभाव को वदन करते है ।

प्र० ९४–एक बालक क्या देखना चाहता है ?

उत्तर–आतम देव कैसा है, और क्या करता है, एक बालक यह देखना चाहता है ।

प्र० ९५–आत्मा आख से दिखाई देता है या नहीं ?

उत्तर—आत्मा ऑख से नही दिखाई देता है।

प्र० ९६—आत्मा किससे दिखाई देता है ?

उत्तर—आत्मा ज्ञान से दिखाई देता है।

प्र० ९७–तुम्हे किसका दर्शन करना है ?

उत्तर—मुझे प्रभु का दर्शन करना है।
मुझे आत्मा का दर्शन करना है॥

प्र० ९८–तुम्हे किसकी सेवा करनी है ?

उत्तर—मुझे ज्ञानी की सेवा करनी है।

प्र० ९९–तुम्हे क्या करना अच्छा लगता है ?

उत्तर—मुझे सच्ची समझ करना, शास्त्र का पठन करना, सच्चा वैराग्य करना, मुनि का सग करना और मोक्ष मे जाना अच्छा लगता है।

प्र० १००–तुझे किससे छूटना है ?

उत्तर–मुझे मोह से छूटना है।

प्र० १०१–तुम्हे झट-पट कहाॅ जाना है ?

उत्तर–मुझे झट-पट मोक्ष मे जाना है।

प्र० १०२–पाठ १६ मे जैन झण्डे में चार वाक्य लिखे है वे कौन से है ?

उत्तर–(१) वत्थु सहावो धम्मो।
(२) दसण मूलो धम्मो।
(३) अहिसा परमो धर्म ।
(४) जैन जयतु शासनम्।

प्र० १०३—'वीर प्रभू की हम सतान' यह गीत सुनाओ ?

उत्तर–वीर प्रभु की हम सन्तान।
धारे जिन सिद्धात महान।
समझे पढने मे कल्याण।
गावे गुरुवर का गुणगान ॥ वीर० ॥
पढकर बने वीर विद्वान।
पावे निश्चय आतम ज्ञान।
गुरु उपकार हृदय मे आन।
उनको नमे सहित सम्मान ॥ वीर० ॥

प्र० १०४–तुम्हारे देव कौन हैं ?

उत्तर–अरहत मेरा देव है।

प्र० १०५—अरिहंत देव कैसे है ?

उत्तर–अरहत देव सच्चे वीतरागी है।

प्र० १०६—वे हमको क्या दिखाते हैं ?

उत्तर–वे हमको मुक्ति मार्ग दिखाते है।

प्र० १०७—मुक्ति मार्ग कैसा है ?

उत्तर—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और वीतराग चारित्ररुप मुक्ति मार्ग है।

प्र० १०८—तुम किसके समान हो ?

उत्तर–मै अरहत के समान शुद्धात्मा हूँ।

प्र० १०९—अरहंत बनने के लिए किसको जानना चाहिए ?

उत्तर–अरहत बनने के लिए अरहत जैसा अपना आत्मा जानना चाहिए।

प्र० ११०—पंच परमेष्ठी के वंदन की कविता बोलो ?

उत्तर– करू नमन मै अरहत देव को,
करू नमन मैं सिद्ध भगवत को,
करू नमन मै (आचार्य) देव को,
करू नमन मै उपाध्याय देव को,

करू नमन मै सर्व साधु को,
पच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो।

प्र० १११—पच परमेष्ठी कौन है ?

उत्तर–अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पच परमेष्ठी है।

प्र० ११२–तुम्हे क्या होना अच्छा लगता है ?

उत्तर–हमे अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु होना अच्छा लगता है।

प्र० ११३–राजा होना अच्छा लगता है कि भगवान होना अच्छा लगता है ?

उत्तर—हमे भगवान होना अच्छा लगता है।

प्र० ११४—पंच परमेष्ठी किससे होते हैं ?

उत्तर—वीतराग विज्ञान के द्वारा पच परमेष्ठी होते है।

प्र० ११५–पच परमेष्ठी किसका उपदेश देते हैं ?

उत्तर—पच परमेष्ठी वीतराग विज्ञान का उपदेश देते है।

प्र० ११६–अपने को सबसे प्रिय कौन है ?

उत्तर–पच परमेष्ठी अपने को सबसे प्रिय है।

प्र० ११७–तुम सुबह और शाम को कौन सी स्तुति करते हो ?

उत्तर—करू नमन मैं अरहत देव को,
पच परमेष्ठी प्रभु तुम मेरे इष्ट हो।
करू नमन मै सिद्ध भगवत को,
पच परमेष्ठी प्रभु तुम मेरे इष्ट हो।
करू नमन मै आचार्य देव को,
पच परमेष्ठी प्रभु तुम मेरे इष्ट हो।
करू नमन मैं उपाध्याय देव को,
पच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो।
करू नमन मै सर्व साधु को,
पच परमेष्ठी प्रभु मेरे तुम इष्ट हो।

प्र० ११८–एक माता के तीन पुत्र थे उनके नाम क्या हैं?

उत्तर–एक माता के तीन पुत्र थे उनके नाम ये–मंगल कुमार, उत्तम कुमार, शरण कुमार।

प्र० ११९–चार मंगल हैं वे कौन हैं?

उत्तर–अरिहन्त भगवान, सिद्ध भगवान, साधु व रत्नत्रय धर्म ये चार मंगल हैं।

प्र० १२०–लोक में उत्तम चार वस्तु कौन सी हैं?

उत्तर–अरिहन्त भगवान, सिद्ध भगवान, साधु व रत्नत्रय धर्म ये चार उत्तम हैं।

प्र० १२१–जीव को शरण रूप कौन है?

उत्तर–जीव को शरण रूप चार वस्तु हैं–

(१) अरिहन्त भगवान (२) सिद्ध भगवान

(३) साधु (४) रत्नत्रय धर्म।

प्र० १२२–जीव क्या करे तो मंगल होता है?

उत्तर–जीव आत्म ज्ञान और वीतरागता प्रगट करे तो मंगल होता है।

प्र० १२३–चत्तारि मंगल का पाठ बोलो?

उत्तर–चत्तारि मंगलं, अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवली पण्णत्तो धम्मो मंगलम्।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्ता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

प्र० १२४–तीर्थंकर किसको कहते हैं?

उत्तर–वीतराग सर्वज्ञ होकर जो धर्म तीर्थ का उपदेश देते हैं, समवशरण आदि विभूति से सहित होते हैं और जिनको तीर्थंकर

नामकर्म नाम का महा पुण्य का उदय होता है उन्हे तीर्थकर कहते है।

प्र० १२५--भरत चक्रवर्ती किसके पुत्र थे ?

उत्तर—भरत चक्रवर्ती राजा ऋषभ देव के पुत्र थे।

प्र० १२६–ऋषभ देव तीर्थकर कहाँ जन्मे ?

उत्तर—ऋषभदेव तीर्थकर अयोध्या नगरी मे जन्मे थे ?

प्र० १२७–अयोध्या अपना तीर्थ है वह किसलिए ?

उत्तर—तीर्थकर होने वाले बालक ऋषभ का जन्म अयोध्या मे हुआ था इसलिए अयोध्या हमारा महान तीर्थ है ?

प्र० १२८–राजगृही में विपुलाचल पर धर्म का उपदेश किसने दिया ?

उत्तर—राजगृही मे विपुलाचल पर धर्म का उपदेश भगवान महावीर ने दिया था।

प्र० १२९–तीर्थकर भगवान ने कौनसा मार्ग दिखाया ?

उत्तर–तीर्थकर भगवान ने मोक्ष का मार्ग दिखाया है।

प्र० १३०–मोक्ष का मार्ग क्या है ?

उत्तर—अपने आत्मा को पहिचान कर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को प्रकट करना ही मोक्ष का मार्ग है।

प्र० १३१–जैन धर्म क्या है ?

उत्तर–अपने आत्मा को पहिचान कर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को प्रगट करना ही मोक्ष का मार्ग है उसी को जैन धर्म कहते है।

प्र० १३२–राग को जैन धर्म कहते है या वीतराग भाव को ?

उत्तर–वीत राग भाव को जैन धर्म कहते है।

प्र० १३३–चौबीस तीर्थकरो के नाम बोलो ?

उत्तर— १- ऋषभ देव ३- सभव नाथ
२- अजीत नाथ ४- अभिनन्दन

५-	सुमति नाथ	१५-	धर्म नाथ
६-	पद्म प्रभ	१६-	शान्ति नाथ
७-	सुपार्श्व नाथ	१७-	कुन्थु नाथ
८-	चन्द्र प्रभ	१८-	अरह नाथ
९-	पुष्प दन्त	१९-	मल्लि नाथ
१०-	शीतल नाथ	२०-	मुनि सुव्रत
११-	श्रेयास नाथ	२१-	नमि नाथ
१२-	वासु पूज्य	२२-	नमि नाथ
१३-	विमलनाथ	२३-	पार्श्व नाथ
१४-	अनत नाथ	२४-	महावीर

प्र० १३४–चौबीस भगवान की मूर्ति कहाँ है ?

उत्तर—भारत मे बम्बई, जयपुर चन्देरी सम्मेदशिखर, श्रवण बेलगोल, मूडबद्रि आदि अनेक स्थानो पर हमारे इन चौबीसो तीर्थंकरो की मूर्तिया विराजमान है ।

प्र० १३५–चौबीस तीर्थंकरो के चिह्न बताओ ?

उत्तर—

१-	बैल	१३-	शूकर
२-	हाथी	१४-	सेही
३-	घोडा	१५-	वज्र
४-	बदर	१६-	हिरण
५-	चकवा	१७-	बकरा
६-	पद्म	१८-	मछली
७-	स्वतिक	१९-	कुभ
८-	चन्द्र	२०-	कछुआ
९-	मगर	२१-	कमल
१०-	कल्पवृक्ष	२२-	शख
११-	गेडा	२३-	सर्प
१२-	भैसा	२४-	सिह

प्र० १३६–चन्द्र, कल्पवृक्ष, गेंडा और सिह के चिन्ह से कौन से तीर्थंकर पहिचान में आते है ?

उत्तर–चन्द्र से आठवे चन्द्र प्रभ, कल्पवृक्ष से दशवे शीतल नाथ, गेडा से ग्यारहवे श्रेयासनाथ, और सिह से चौबीसवे महावीर पहिचान मे आते है।

प्र० १३७–अपने तीर्थंकरो का जीवन कैसा होता है ?

उत्तर–अपने सभी तीर्थकरो का जीवन वीतरागी होता है जो बहुत ऊँचा जीवन है।

प्र० १३८–ऊ चा जीवन कैसा होता है ?

उत्तर–ऊँचा जीवन वीतरागी होता है।

प्र० १३९–धर्म की भावना किससे जागृत होती है ?

उत्तर–धर्म की भावना तीर्थकरो के जीवन चरित्र पढने से होती है।

प्र० १४०–आत्मा किस लक्षण से जाना जाता है ?

उत्तर–आत्मा चैतन्य लक्षण से जाना जाता है।

प्र० १४१–तीर्थंकर भगवान के द्वारा बताया हुआ धर्म आज भी अपने को कौन समझाते है ?

उत्तर–तीर्थंकर भगवान के द्वारा बताया हुआ धर्म आज भी अपने को ज्ञानी-धर्मात्मा समझाते है।

प्र० १४२–चौबीस तीर्थंकर किस देश मे जन्में ?

उत्तर–सभी तीर्थंकर भगवन्तो का जन्म भारत देश मे ही होता है।

प्र० १४३–ऋषभ देव के आत्मा ने सम्यक्त्व कब प्राप्त किया ?

उत्तर–ऋषभ देव का जीव जब आहार दान के फल से भोग भूमि मे मनुष्य हुआ तब एक बार आकाशगामी प्रीतिकर नामक

मुनिराज ने वहाँ जाकर उपदेश देकर आत्मस्वरूप समझाया। जिसे समझ कर भगवान के जीव ने उसी समय सम्यग्दर्शन प्रगट किया।

प्र० १४४–ऋषभ देव के जीव ने पिछले ८वें भव में मुनि को आहार दान दिया था उसे देखकर चार तिर्यंच खुशी हुये वे कौन थे?

उत्तर—वे चार तिर्यंच नेवला, सिंह, सूअर और बंदर थे।

प्र० १४५ – ऋषभ देव को वैराग्य कब हुआ?

उत्तर–एक बार चैत्र वदी नवमी के दिन जन्मोत्सव में नीला नाम की देवी की नृत्य करते-करते मृत्यु हो गयी। देह की ऐसी क्षण भंगुरता देखकर उन्हें संसार से वैराग्य हो गया।

प्र० १४६—उन्हें केवल ज्ञान कहाँ हुआ?

उत्तर—उन्हें केवलज्ञान प्रयाग क्षेत्र में हुआ।

प्र० १४७—वर्षी तप किसे कहते हैं? वह किसने किया?

उत्तर–मुनि होकर ऋषभदेव ने बहुत आत्म ध्यान किया, छह माह तक तो वे आत्म ध्यान में ही स्थिर खड़े रहे।

इसके बाद भी सात मास तक ऋषभ मुनिराज ने उपवास ही किए, क्योंकि मुनि को किस विधि से आहार दिया जाता है यह किसी को मालूम न था। इस प्रकार एक वर्ष से ज्यादा काल भोजन के बिना बीत चुका परन्तु ऋषभ मुनि को कोई कष्ट न था वे तो आत्म-ध्यान करते थे और आनंद के अनुभव में मग्न रहते थे। इसी को वर्षी तप कहते हैं।

प्र० १४८—वर्षी तप का पारना किसने कराया?

उत्तर–वर्षी तप का पारना राजकुमार श्रेयास ने कराया।

प्र० १४९—भरत क्षेत्र में मोक्ष का दरवाजा किसने खोला?

उत्तर—भरत क्षेत्र में मोक्ष का दरवाजा भगवान ऋषभ देव ने खोला।

प्र० १५०–ऋषभ देव कहाँ से मोक्ष गये ?

उत्तर- भगवान ऋषभ देव कैलाश पर्वत से मोक्ष गये।

प्र० १५१–भरत चक्रवर्ती के १०० राजकुमार गेंद खेलते-खेलते क्या विचार कर रहे थे ?

उत्तर–वे गेंद खेलते हुए ऐसा विचार कर रहे थे कि अरे, मोह रूपी लाठी की मार खा-खा कर गेंद की तरह यह जीव संसार की चारों गति में बहुत घूमा। अब तो आत्म साधना पूर्ण करके जल्दी इस संसार से छूटेंगे। हमारे ऋषभ दादा तो केवलज्ञानी तीर्थंकर हैं। पिताजी भी इस भव मे मोक्ष पाने वाले है और हमे भी इसी भव मे मुक्ति होकर भगवान बनना है।

प्र० १५२–गेंद खेलने में जो मजा आता है यह सच्चा सुख है कि राग है ?

उत्तर–गेंद खेलने मे जो मजा आता है वह राग है।

प्र० १५३–जड़ में सुख होता है ?

उत्तर–जड मे सुख नही होता है।

प्र० १५४–सुख किसमें होता है ?

उत्तर–सुख जीव मे होता है।

प्र० १५५–जगत मे दो प्रकार की वस्तु है वह कौन सी ?

उत्तर–एक ज्ञान सहित दूसरी ज्ञान रहित।

प्र० १५६–जीव किसको कहते है ?

उत्तर–जिस वस्तु मे ज्ञान हो उसे जीव कहते है।

प्र० १५७–अजीव किसको कहते है ?

उत्तर–जिस वस्तु मे ज्ञान न हो उसे अजीव कहते है।

प्र० १५८–क्या अजीव वस्तु मे भी गुण होते है ?

उत्तर–हाँ क्योकि प्रत्येक वस्तु गुणो का समूह होता है।

प्र० १५६—वस्तु किसको कहते है ?

उत्तर—गुणो के समूह को वस्तु कहते है।

प्र० १६०—सौ राजकुमारो को घुडसवारो ने क्या समाचार दिए ?

उत्तर—सौ राजकुमारो को घुडसवारो ने समाचार दिया कि हस्तिनापुर के राजा जयकुमार ने ऋषभदेव प्रभु के पास दीक्षा ले ली है। और वे भगवान के गणधर हुए है पहिले वे भरत चक्रवर्ती के सेनापति थे। वैराग्य होने पर अपने मात्र छह साल के कुवर को राजतिलक करके वे मुनि हो गये। चक्रवर्ती का प्रधान पद छोडकर अब वे तीर्थकर भगवान के प्रधान बन गये।

प्र० १६१—ऋषभ देव का दूसरा नाम क्या था इनके अलावा और कौन-कौनसे तीर्थकरो के एक से अधिक नाम है ?

उत्तर—भगवान ऋषभ देव का दूसरा नाम आदिनाथ है इनके अलावा नवे पुष्प दन्त का सुविधि नाथ तथा चौवीसवे तीर्थकर के ५ नाम है-१ वीर २ अतिवीर ३ महावीर ४ सन्मति ५ वर्द्धमान।

प्र० १६२—जीव ससार मे क्यो भटकता है ?

उत्तर—जीव-अजीव की पहिचान के बिना जीव संसार मे भटकता है।

प्र० १६३—जीव-अजीव की पहिचान से क्या होता है ?

उत्तर—जीव-अजीव की पहिचान से ससार भ्रमण का दुख मिटता है और मोक्ष सुख मिलता है।

प्र० १६४—घुडसवार के पास से जयकुमार की दीक्षा के समाचार सुनकर राजकुमारो ने क्या किया ?

उत्तर—घुडसवार के मुँह से जयकुमार की दीक्षा के समाचार सुनते ही सब राजकुमारो को आश्चर्य हुआ और मन मे भी ससार से वैराग्य हो गया। अहो! उनका जीवन धन्य है ऐसा कहकर उनके

प्रति नमस्कार किया और वे सब अपने-अपने मन मे दीक्षा लेने का विचार करने लगे। दीक्षा के लिए वे सब भगवान ऋषभ देव के समवशरण मे पहुँचे। भगवान को नमस्कार किया। जयकुमार मुनिराज को भी नमस्कार किया और दीक्षा लेकर वे सब मुनि हो गये।

प्र० १६५—ऋषभ देव के दरबार मे जाते समय राजकुमार क्या गाते थे ?

उत्तर–चलो प्रभु के दरवार, चलो दादा के दरबार।
प्रभु की वाणी सुनेगे, मुनि दशा हम धारेगे।
रत्नत्रय को पावेगे, केवलज्ञान प्रगटायेगे।
ससार से हम छूटेगे, सिद्ध स्वय बन जायेगे।
चलो दादा के दरबार, चलो प्रभु के दरवार।

प्र० १६६ जिनकुमार और राजकुमार की कथा से तुमको कौनसी शिक्षा मिली ?

उत्तर–जिनकुमार और राजकुमार की कथा से हमको यह शिक्षा मिलती है कि किसी भी परिस्थिति मे भगवान का दर्शन नही छोडना चाहिये क्योकि हम जिनवर की सन्तान है। हमे प्रतिदिन देव दर्शन गुरु सेवा व शास्त्र स्वाध्याय करना चाहिए।

प्र० १६७—चक्रवर्ती राजा से भी बडे कौन है ?

उत्तर–चक्रवर्ती राजा से भी बडे जिनेन्द्र देव है।

प्र० १६८—भगवान की पूजा का पद बोलो ?

उत्तर– जल परम उज्जवल गध अक्षत,
पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निरमल फल विविध,
बहु जनम के पातक हरूँ॥
इह भाँति अर्घ चढाय नित,
भव करत शिव पक्ति मचू।

अरहंत श्रुत सिद्धांत गुरु,
निरग्रंथ नित पूजा रचूं ।।
वसु विधि अर्घ सजोय के, अति उत्साह मन लीन ।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ।।

प्र० १६९—भगवान की कोई स्तुति बोलो ?

उत्तर—तुभ्य नम त्रिभुवनार्ति हराय नाथ,
तुभ्य नम क्षितितलामल भूपणाय ।
तुभ्य नम त्रिजगत परमेश्वराय,
तुभ्य नम जिन ! भवो दधि शोपणाय ।।

प्र० १७०—अर्घ मे कौन सी आठ वस्तुयें होती हैं ?

उत्तर—अर्घ में जल, चदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल ये आठ वस्तुये होती हैं ।

प्र० १७१—गंधोदक किसे कहते हैं ?

उत्तर—तीर्थंकर बालक के (जन्म कल्याणक के समय) अभिपेक का जल, यत्र अभिपेक का जल तथा जिन प्रनिमा के प्रक्षाल का जल गधोदक कहलाता है ।

प्र० १७२—'मोक्ष मार्गस्य नेतार' यह स्तुति बोलो ?

उत्तर— मोक्ष मार्गस्य नेतार, भेत्तार कर्म भूभृताम् ।
ज्ञातर विश्व तत्वाना, वदे तद् गुण लब्धये ।।

प्र० १७३—यह स्तुति किसने बनायी ?

उत्तर—यह स्तुति समन्तभद्र स्वामी ने बनायी ।

प्र० १७४—मोक्ष मार्ग का नेता कौन है ?

उत्तर—मोक्ष मार्ग के नेता अरहत भगवान हैं ।

प्र० १७५—हम भगवान को वदन किस लिए करते है ?

उत्तर—भगवान जैसे गुणो की प्राप्ति के लिए हम भगवान को वदन करते है ।

प्र० १७६–राजा के पास जाने में राजकुमार को देरी क्यो हुई ?

उत्तर–राजकुमार अपने मित्र के साथ जिनेन्द्र देव के दर्शन करने गया था। इस कारण राजा के पास जाने मे देर हुई।

प्र० १७७ – क्या राजा ने उनको कुछ सजा दी ?

उत्तर–नही।

प्र० १७८–राजा ने कुमारो को क्या इनाम दिया ?

उत्तर–राजा ने प्रसन्न होकर कुमारो को स्वर्ण हार दिये।

प्र० १७९–कुमारो ने उस इनाम का क्या किया ?

उत्तर–कुमारो ने राजा से भावना व्यक्त की कि स्वर्ण हार हमको देने के बदले मे इसका स्वर्ण कलश बनवाकर आप जिन मदिर के ऊपर चढावे।

प्र० १८०–तुम्हारे गॉव मे राजा और भगवान आये तो तुम पहिले किसके पास जाओगे ?

उत्तर–भगवान के पास।

प्र०—साधर्मी के प्रति अपने को क्या करना चाहिए ?

उत्तर–साधर्मी भाई बहिनो के प्रति अपने को बहुत वात्सल्य-प्रेम रखना चाहिए। उन्हे किसी प्रकार का दु ख हो तो वह दूर करके उनका धार्मिक उत्साह बढाना चाहिए और उन्हे हर प्रकार की सुविधा देनी चाहिए।

प्र० १८२–कैसे कार्य से दूर रहना चाहिए ?

उत्तर—हिसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, दुराचार और तीव्र ममता आदि पापो से दूर रहना चाहिए। अभक्ष्य और जुआ खेलना आदि व्यसन से भी दूर रहना चाहिए।

प्र० १८३–अच्छा जीवन बनाने के लिए क्या याद रखना चाहिए ?

उत्तर—(१) मै जैन धर्म का बच्चा हूँ ।
(२) मै अहिसक जीवन जीता हूँ ।
(३) मै दु ख न किसी को देता हूँ ।
(४) मै अभक्ष कभी नही खाता हूँ ।
(५) मै मन्दिर प्रतिदिन जाता हूँ ।
(६) मै प्रभु का दर्शन करता हूँ ।
(७) मै साधर्मी से प्रेम करूँ ।
(८) मै धर्म का अभ्यास करूँ ।
(९) मै आतम साधक वीर बनू ।
(१०) महावीर प्रभु सा सिद्ध बनू ।

प्र० १८४—चार गति कौन सी है ?

उत्तर—(१) मनुष्य गति (२) नरक गति
(३) देव गति (४) तिर्यच गति

प्र० १८५ —चार गति के सिवाय पाँचवी गति कौन सी है ?

उत्तर—पचम गति अर्थात् मोक्ष गति ।

प्र० १८६—कौनसी गति से मोक्ष पा सकते है ?

उत्तर—मनुष्य गति से मोक्ष पा सकते है ।

प्र० १८७-चार गति मे मनुष्य गति उत्तम क्यो ?

उत्तर—चार गति मे मनुष्य गति इसलिए उत्तम मानी गई है कि इससे जीव अपने सभी गुण प्रगट करके भगवान बन सकता है, और मोक्ष भी पा सकता है ।

प्र० १८८—मनुष्य होकर क्या करने से मोक्ष होता है ?

उत्तर—मनुष्य होकर आत्म ज्ञान करने से जरूर मोक्ष होता है ।

प्र० १८९ मोक्ष सुख पाने के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर—मोक्ष सुख पाने के लिए आत्म ज्ञान करना चाहिए ।

प्र० १९०—अपने जैन धर्म मे कौन से महापुरुष हुए ?

उत्तर—अपने जैन धर्म मे ऋषभ देव से महावीर तक २४ तीर्थंकर, भरत, बाहुवली राम, कुन्द कुन्द आदि अनेक महापुरुष हुए।

प्र० १६१–जैन धर्म क्या देता है ?

उत्तर–जैन धर्म आत्म ज्ञान रत्नत्रय और मोक्ष का सुख देता है।

प्र० १६२–धर्म का मूल क्या है ?

उत्तर—धर्म का मूल सम्यक्त्व है।

प्र० १६३–तुम्हारा प्यारा धर्म कौनसा है ?

उत्तर—हमारा प्यारा धर्म जैन धर्म है।

प्र० १६४–जैन धर्म का गीत सुनाओ ?

उत्तर— धर्म मेरा धर्म मेरा धर्म मेरा रे।
प्यारा प्यारा लागे जैन धर्म मेरा रे॥
ऋषभ हुए वीर हुए धर्म मेरा रे।
बलवान बाहुवली से वे धर्म मेरा रे॥
भरत हुए राम हुए धर्म मेरा रे।
कुन्द कुन्द जैसे सत धर्म मेरा रे॥
सती चदना अंजना हुई धर्म मेरा रे।
हुई ब्राह्मी राजुल माता धर्म मेरा रे॥
सिह सेवे बाघ सेवे धर्म मेरा रे।
हाथी बानर सर्प सेवे धर्म मेरा रे॥
आतमा का ज्ञान देता धर्म मेरा रे।
रत्नत्रय का दान देता धर्म मेरा रे॥
सम्यक्त्व जिसका मूल वह धर्म मेरा रे।
सुख देता मोक्ष देता धर्म मेरा रे॥
धर्म मेरा धर्म मेरा धर्म मेरा रे।
प्यारा प्यारा लागे जैन धर्म मेरा रे॥

प्र० १९५–मुमुक्ष जीव को किसकी भावना हुई ?

उत्तर–मुमुक्ष जीव को दुःख मिटाकर आत्मा का हित व सुख प्राप्त करने की भावना हुई।

प्र० १९६–मुमुक्ष ने वन मे जाकर मोक्ष का मार्ग किससे पूछा ?

उत्तर–मुमुक्ष ने वन मे जाकर मोक्ष का मार्ग मुनिराज से पूछा।

प्र० १९७–मुनिराज ने मोक्ष का मार्ग क्या बताया ?

उत्तर–मुनिराज ने बताया कि–

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग ।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की एकता ही मोक्ष का मार्ग है।

प्र० १९८–हम किसकी सतान है ?

उत्तर–हम वीर प्रभु की सतान है।

प्र० १९९–वीर प्रभु की सतान कैसे-कैसे उत्तम कार्यो को करने के लिए तैयार है ?

उत्तर– वीर प्रभु की हम सतान, है तैयार है तैयार।
जिन शासन की सेवा करने, है तैयार है तैयार।
सिद्ध पद का स्वराज लेने, है तैयार है तैयार।
अरहत प्रभु की सेवा करने, है तैयार है तैयार।
ज्ञानी गुरु की सेवा करने, है तैयार है तैयार।
तीर्थ धाम की यात्रा करने, है तयार है तैयार।
जिन सिद्धान्त का पठन करने, है तैयार है तैयार।
जिन शासन को जीवन देने, है तैयार है तैयार।
सम्यग्दर्शन प्राप्त करने, है तैयार है तैयार।
आत्म ज्ञान की ज्योति जगाने, है तैयार है तैयार।
साधु दशा का सेवन करने, है तैयार है तैयार।
मोह शस्त्रु को जीत लेने, है तैयार है तैयार।

वीतरागी निर्मोही होने, है तैयार है तैयार।
आत्म ध्यान की धूम मचाने, है तैयार है तैयार।
ज्ञायक का पुरुषार्थ करने, है तैयार है तैयार।
वीर मार्ग मे दौड लगाने, है तैयार है तयार।
मोक्ष का दरवाजा खोलने, है तैयार है तैयार।
ससार सागर पार उतरने, है तैयार है तैयार।
सिद्ध प्रभु के साथ रहने, है तैयार है तैयार।

प्र० २००--जैन धर्म की प्रभावना करने के लिए हम क्या करेगे ?

उत्तर--जैन धर्म की प्रभावना करने के लिए हम देव व गुरु की तीर्थधाम की यात्रा, जिन सिद्धान्त का पठन, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की प्राप्ति व आत्मध्यान आदि कार्य करेगे।

— ० —

शीघ्र मोक्षदायनी अपूर्व देशना

(नित्य मनन योग्य)

निर्मल ध्यानरूढ हो, कर्म कलंक नशाय ।
हुए सिद्ध परमात्मा वन्दत हूं जिनराय ॥१ ॥

इच्छुक जो निज मुक्ति का, भवभय से डरचित ।
उन्ही भव्य सम्बोध हित, रचा काव्य इकचित्त ॥३ ॥

परमात्मा को जानकर, त्याग करे परभाव ।
वह आतमा पण्डित खरा, प्रगट लहे भवपार ॥८ ॥

गृह कार्य करते हुए, हेयाहेय का ज्ञान ।
ध्यावे सदा जिनेश पद, 'शीघ्र' लहे निर्वाण ॥१८॥

शुद्ध प्रदेश पूर्ण है, लोकाकाश प्रमाण ।
सो आतम जानो सदा, लहो 'शीघ्र' निर्वाण ॥२३॥

निश्चय लोक प्रमाण है, तनु प्रमाण व्यवहार ।
ऐसा आतम अनुभवो, शीघ्र लहो भवपार ॥२४॥

जो शुद्धात्तम अनुभवे, व्रत-सयम संयुक्त ।
जिनवर भाषे जीव वह, 'शीघ्र' होय शिवयुक्त ॥३०॥

शेष अचेतन सर्व है, जीव सचेतन सार ।
मुनिवर जिनको जानके, 'शीघ्र' हुये भवपार ॥३६॥

शुद्धात्तम यदि अनुभवो, तज कर सब व्यवहार ।
जिन परमातम यह कहे, 'शीघ्र' होय भवपार ॥३७॥

ज्यों रमता मन विषय मे, ज्यो जो आतम लीन ।
मिले 'शीघ्र' निर्वाण-पद, धरे न देह नवीन ॥५०॥

नर्कवास सम जर्जरित, जानो मलिन शरीर ।
करि शुद्धातम भावना, 'शीघ्र' लहो भवतीर ॥५१॥

जीव-पुद्गल दोऊ भिन्न है, भिन्न सकल व्यवहार ।
तज पुद्गल, ग्रह जीव तो, 'शीघ्र' लहे भवपार ॥५५॥

देहादिक को पर गिने, ज्यो शून्य आकाश ॥
लहे 'शीघ्र' पर परब्रह्म को, केवल करे प्रकाश ॥५८॥

मुनिजन या कोई गृही, जो रहे आतम लीन ।
'शीघ्र' सिद्धि सुख को लहे, कहते यह प्रभु जिन ॥६५॥

गृह-परिवार मम है नही, है सुख दुख की खान ।
यो ज्ञानी चिन्तन करि, 'शीघ्र' करे भव हान ॥६७॥

यदि जीव तू है ऐकला, तो तज सब परभाव ।
ध्यावो आतम ज्ञानमय, 'शीघ्र' मोक्ष सुख पाव ॥७०॥

एकाकी इन्द्रिय रहित, करि योग त्रय शुद्ध ।
निज आतम को जानकर, 'शीघ्र' लहो शिवसुख ॥८६॥

रमे जो आत्म स्वरुप मे, तज कर सब व्यवहार ।
सम्यक्दृष्टि जीव वह, 'शीघ्र' होय भवपार ॥८९॥

जो सम्यक्त्व प्रधान बुध, वही त्रिलोक प्रधान ।
पावे केवलज्ञान 'झट' शाश्वत सौख्य निधान ॥९०॥

शम सुख मे लवलीन जो, करते निज अभ्यास ।
करके निश्चय कर्म क्षय; लहे 'शीघ्र' शिववास ॥९३॥

आत्मा ही अरहन्त है, निश्चय से सिद्ध जान ।
आचरज, उवझाय अरु, निश्चय साधु समान ॥१०४॥

नियम सार स्तवन

नारक नही, तिर्यच-मानव-देव पर्यय मै नही।
कर्ता न, कारयिता नही, कर्तानुमन्ता मै नही॥ ७७॥
मै मार्गणा के स्थान नहि, गुणस्थान-जीवस्थान नहि।
कर्ता न कारयिता नही, कर्तानुमन्ता भी नही॥ ७८॥
बालक नही मै, वृद्ध नहि, नहि युवक तिन कारण नही।
कर्ता न कारयिता नही, कर्तानुमन्ता भी नही॥ ७९॥
मै राग नहि मै द्वप नहि, नहि मोह तिन कारण नही।
कर्ता न कारयिता नही, कर्तानुमन्ता मै नही॥ ८०॥
मै क्रोध नहि, मै मान नहि, माया नहि मै लोभ नहि।
कर्ता न कारयिता नही, कर्तानुमोदक मै नही॥ ८१॥
भावी शुभाशुभ छोडकर तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे॥ ९५॥
कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मै हूँ वही, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को॥ ९६॥
निज भाव को छोडे नही किंचित ग्रहे परभाव नहि।
देखे व जाने मै वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही॥ ९७॥
जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बन्धविन आत्मा।
मै हूँ वही, भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ॥ ९८॥
मै त्याग ममता निर्ममत्व स्वरूप मे स्थिति कर रहा।
अवलम्ब मेरा आत्मा अवशेष वारण कर रहा॥ ९९॥
मम ज्ञान मे है आत्मा दर्शन चरित मे आतमा।
है और प्रत्याख्यान सवर योग मे भी आतमा॥ १००॥
मरता अकेला जीव एव जन्म एकाकी करे।
पाता अकेला ही मरण अरू मुक्ति एकाकी करे॥ १०१॥
दृग्ज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र-आत्मा मम अरे।
अरू शेष सब सयोग लक्षित भाव मुझ से है परे॥ १०२॥

जो कोइ भी दुच्चरित मेरा सर्व त्रय विधि से तजूँ।
अरू त्रिविध सामायिक चरित सब, निर्विकल्प आचरूँ ॥ १०३ ॥
समता मुझे सब जीव प्रति वैर न किसी के प्रति रहा।
मै छोड आशा सर्वत धारण समाधि कर रहा ॥ १०४ ॥
जो शूर एव दान्त है, अकषाय उद्यमवान है।
भव भीरू है, होता उसे ही सुखद प्रत्याख्यान है ॥ १०५ ॥
यो जीव कर्म विभेद अभ्यासी रहे जो नित्य ही।
है सयमी जन नियत प्रत्याख्यान-धारण क्षम वही ॥ १०६ ॥
सावध-विरत त्रिगुप्तिमय अरू पिहित इद्रिन्य जो रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १२' ॥
स्थावर तथा त्रस सर्व जीव समूह प्रति समता लहे।
स्थायि समायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १२६ ॥
सयम नियत-तप मे अहो आत्मा समीप जिसे रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १२७ ॥
नहि राग अथवा द्वेष से जो सयमी विकृति लहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १२८ ॥
रे आर्त्त-रौद्र दुध्यान का नित ही जिसे वर्जन रहे।
स्थायी सामायिक है उसे यो केवली शासन कहे ॥ १२९ ॥
जो पुण्य-पाप विभावभावो का सदा वर्जन करे।
स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १३० ॥
जो नित्य वर्जे हास्य अरू रति अरति शोक विरत रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, य केवली शासन कहे ॥ १३१ ॥
जो नित्य वर्जे भय जुगुप्सा सर्व वेद समूह रे।
स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १३२ ॥
जो नित्य उत्तम धर्म-शुक्ल सुध्यान मे ही रत रहे।
स्थायी सामायिक है उसे, यो केवली शासन कहे ॥ १३३ ॥

— ० —

समयसार स्तवन

ध्रुव अचल अरु अनुपमगति, पाये हुये सब सिद्ध को।
मैं वंद श्रुतकेवली कथित, कहू समय प्राभृत को कहो॥ १॥
नहि अप्रमत्त प्रमत्त नहि, जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वो हि है॥ ६॥

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सुदृष्टि निश्चय होय है॥ ११॥

भूतार्थ से जाने अजीव जीव, पुण्य पापरु निर्जरा।
आस्रव संवर बन्ध मुक्ति, येहि समकित जानना॥ १३॥

अनबद्धस्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्म को।
अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जानजो॥ १४॥

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान दृग हू यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणु मात्र नही अरे॥ ३८॥

मै एक शुद्ध ममत्व हीनरु, ज्ञान दर्शन पूर्ण हू।
इसमे रहू स्थित लीन इसमे, शीघ्र ये सब क्षय करू॥ ७३॥

शुभ-अशुभ से जो रोककर, निजआत्म को आत्महि से।
दर्शन अवरु ज्ञानहि ठहर, पर द्रव्य इच्छा परिहरे॥ १८७॥

जो सर्व संगविमुक्त ध्याके, आत्म मे आत्माहि को।
नहि कर्म अरु नो कर्म, चेतक चेतता एकत्व को॥ १८८॥

वह आत्मध्याता, ज्ञानदर्शनमय आनन्दमयी हुआ।
बस अल्पकाल जु कर्म से परिमोक्ष पावे आत्म का॥ १८९॥

इसमे सदा रतिवंत बन, इसमे सदा संतुष्ट रे।
इससे ही बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥ २०६॥

छेदन करो जिव बध का तुम नियत निज-निज चिह्न से।
प्रज्ञा-छैनी से छेदते दोनो पृथक हो जाय है॥ २९४॥